

# भीली लोकमाताएँ

दशपुर जनपद के  
भील जनजाति की सहचर देवियाँ

डॉ. पूरन सहगल

# भीली लोकमाताएँ

दशपुर जनपद के  
भील जनजाति की सहचर देवियाँ

डॉ. पूरन सहगल

सम्पादक  
डॉ. कपिल तिवारी

सहायक सम्पादक  
अशोक मिश्र



आदिवासी लोक कला एवं तुलसी साहित्य अकादेमी  
मध्यप्रदेश संस्कृति परिषद्  
भोपाल का प्रकाशन

- प्रकाशक** – निदेशक  
आदिवासी लोक कला एवं तुलसी साहित्य अकादेमी  
मध्यप्रदेश संस्कृति परिषद्  
मुल्ला रमूजी संस्कृति भवन,  
आधार तल, बाणगंगा, भोपाल  
मध्यप्रदेश-462003 फोन-2551878, 2760668  
www.mpculture.in  
E-mail:mplokkala@rediffmail.com
- प्रकाशन** – वर्ष 2009
- मूल्य** – 50/- (रुपये पचास केवल)
- स्वत्वाधिकार** – आदिवासी लोक कला एवं तुलसी साहित्य अकादेमी  
मध्यप्रदेश संस्कृति परिषद्
- मुद्रण** – शासकीय केन्द्रीय मुद्रणालय, भोपाल
- आवरण** – एक-शीतला माता, चार-सावन माता  
भीली चित्रांकन, श्रीमती भूरीबाई

- पुस्तिका से संबंधित समस्त विवादों का न्यायालयीन कार्यक्षेत्र भोपाल होगा।
- पुस्तक में छपी सामग्री के किसी भी माध्यम द्वारा उपयोग के पूर्व अकादेमी से अनुमति लेना आवश्यक होगी।
- पुस्तिका में प्रकाशित समस्त सामग्री संकलनकर्ता, लेखक की अपनी है, आवश्यक नहीं है कि अकादेमी इससे सहमत हो।

## अनुक्रम

|  |
|--|
| आँख मंडावण / डॉ. महेन्द्र भानावत / 7         |
| लोक साहित्य का सुफल / बालकवि बैरागी / 12     |
| अतीत की विरद गाथाएँ / पं. मोतीलाल शर्मा / 15 |
| अपनी बात / डॉ. पूरन सहगल / 16                |
| मनासा की लोकमाताएँ / 21                      |
| नीमच की लोकमाताएँ / 66                       |
| जावद की लोकमाताएँ / 80                       |
| भानपुरा की गढ़ माताएँ एवं नागर माता / 133    |
| घसोई की लोकमाताएँ / 138                      |
| ढाबला की लोकमाताएँ / 149                     |
| संजीत की लोकमाताएँ / 154                     |
| मन्दसौर की लोकमाताएँ / 161                   |
| गंगाधर की लोकमाताएँ / 166                    |
| लोक आस्था द्वारा स्थापित लोकमाताएँ / 176     |

## आँख मंडावण

डॉ. पूरन सहगल लोक साहित्य के गहन अध्येता एवं ऊर्जावान लेखक हैं। दशपुर जनपद में पिछले चार दशकों से लोक विधा के क्षेत्र में उन्होंने जो हंसवान कार्य किया, उसके फलस्वरूप जो अनमोल रक्त मुक्ता दिये उनसे शब्द संसार के पारखी भली प्रकार परिचित हैं।

लोक साहित्य की विरासत जनपदीय अथवा आंचलिक लोक की समृद्धि एवं खुशहाल ज़िन्दगानी में हैं। इस ज़िन्दगानी का जो हास-परिहास, मंगल-दंगल, टोटक-टूटक, कसक-थसक, रोवण-धोवण, मौज-मस्ती और कबीराना-रसखाना अन्दाज़ रहा है; उसका पहली बार रूप, रस, गंध, स्वाद और स्पर्श आज़ादी के बाद मिला। इसके लिए पूरन सहगल जैसे साधियों के हम ऋणी हैं, जिन्होंने अपने-अपने अंचलों में लोक के उन तहखानों की तलाश करते हुए सब ओर से उनके गवाक्ष खोल दिये। ऐसे खोजक रत्नों में दशपुर के सहगल की तरह निमाड़ के वसंत निरगुणे और बुन्देलखण्ड के डॉ. नर्मदा प्रसाद गुप्त स्मरणीय हैं। और भी नाम हैं- डॉ. श्याम परमार, रामनारायण उपाध्याय, देवीलाल सामर, जगदीशचन्द्र माथुर, कोमल कोठारी, रामनारायण अग्रवाल - ये हमारे बड़े थे, जिन्होंने अपना पूरा जीवन ही लोक साहित्य के संवर्द्धन, संरक्षण और सत्प्रयोजन में लगा दिया। मेरे जैसे कई लोग हैं, जो इनसे प्रेरणा पाकर इस क्षेत्र में कुछ करने को उद्यत हुए। और भी नाम हैं- मालती शर्मा-पूना, डॉ. विद्या बिन्दु सिंह-लखनऊ, डॉ. उषा वर्मा-पटना, प्रफुल्ल कुमार सिंह मौन-नेपाल, जो वर्षों से अपने-अपने क्षेत्रों में

लोक के साहित्यिक-सांस्कृतिक एवं कला चैतन्य को उपरांकन देने का शोभनीय कर्म करने में अत्यन्त सादगी के साथ शान्त चित्त हैं।

प्रस्तुत कृति डॉ. सहगल की वर्षों की अनवरत् खोज चिन्तना है। दशपुर जनपद राजस्थान के चित्तौड़ से लेकर गागरोन की सीमा तक फैले अरावली पठार थामे है। उधर दक्षिण में रतलाम तक की सीमा का स्पर्श लिए है।

लोकमाताओं अर्थात् लोकदेवियों का प्रभाव सर्वत्र व्याप्त है। संग्रह की सभी देवियाँ लोक मान्य, मान-बहुमान प्राप्त कर लोक का आलोक बनी हुई हैं। लोक में शक्ति स्वरूपा देवियों की संख्या, उनके स्मृति स्थल, उनकी मान्यता के दायरे, उनके सम्बन्ध में प्रचलित अवधारणाएँ, गीति-कथाएँ, कथा-वार्ताएँ, पूजा-मनौती प्रसंग लोक देवी-देवताओं की तुलना में कहीं अधिक हैं। इन देवियों ने स्व-हित को त्याग-परमार्थ एवं लोक कल्याण के लिए अपना सर्वस्व समर्पण कर दिया। सत्य एवं सतीत्व की रक्षा के लिए ये सिंहनी-सा शूरापन लिए सबको भस्म करती हुई अन्त में लोक की भस्मी बन गई। कमज़ोर की ज़ोर बन राजाओं एवं जागीरदारों का इन्होंने जबर्दस्त विरोध किया। इनकी प्रण-निष्ठा, संघर्ष, साहस, वीरता, जुझारूपन, सत्य वचनिका, निडरता, शस्त्र निपुणता, युद्ध कौशल जैसे गुणों ने साधारण नारी से इन्हें विशिष्ट वैशिष्ट्य प्रदान किया और ये लोक में पूजनीय बनती हुई देवत्व के रूप में आदरित हुई। आदिवासी भीलों में प्रचलित गवरी नृत्य की गाथा भारत में आये उल्लेख के अनुसार नौ लाख देवियों का क्रीड़ास्थल प्रसिद्ध रणक्षेत्र हल्दीघाटी के पास का बड़ल्या (वटवृक्ष) है। इसे सबसे पहले देवियाँ पाताल से लाई थी। बड़ल्या हींदवा के नाम से प्रसिद्ध यह वृक्ष पूर्व में बारह बीघा क्षेत्र में फैला हुआ था। थाली जितने बड़े उसके पत्ते थे, तब पत्ते-पत्ते पर सिन्दूर लगा हुआ था। इसे सृष्टि का प्रथम वृक्ष कहा जाता है। इसी के पास मोलेला गाँव अवस्थित है, जहाँ लोक देवी-देवताओं की मिट्टी की मूर्तें (प्रतिमाएँ) बनायी जाती हैं। यहीं से सारी प्रतिमाएँ विशेष विधि-विधान पूर्वक दूर-सुदूर तक के प्रान्तों-गाँवों में ले जाई जाकर वहाँ के देवों में स्थापित की जाती हैं। राजस्थान में 'डग-डग देवी, पग-पग देव'

कहावत प्रचलित है। मध्यप्रदेश, राजस्थान तथा गुजरात मिले-जुले प्रान्त हैं। इनकी लोक जीवनधारा मिलती-जुलती है। इस दृष्टि से भी डॉ. पूरन सहगल का यह अध्ययन बड़ा मूल्यवान है।

यह सर्वथा महत्त्वपूर्ण साक्ष्य है कि डॉ. सहगल ने जिन देवियों का अध्ययन किया, वे सबकी सब भील-कन्याएँ थीं। भीलों का वर्चस्व किसी समय बड़ा जबर्दस्त था। इनके स्वतंत्र राज्य थे। इनकी अपनी सत्ता थी, जिसके आगे अच्छे-अच्छे रणवाज ख़ाँ पानी भरते थे। ये वे ही भील हैं, जिनके साथ महाराणा प्रताप ने अपना दुःख भरा जीवन काटा और जिनसे सर्वाधिक विश्वास, शौर्य, साहस और सम्बल प्राप्त किया।

डॉ. पूरन सहगल से मेरा सम्पर्क पिछले 30 वर्ष से है। मुझे अच्छी तरह ज्ञात है जब वे स्वतंत्रता सेनानी डूंगजी-जवारजी पर काम कर रहे थे, तब उन्होंने एक ऐसे दोहे के लिए न जाने कितने-कितने गायक कलाकारों, कथक्कों, कला रसिकों, विद्वानों, विज्ञों से सम्पर्क कर 1180 पंक्तियों की विस्मृत पूरी गाथा खोज निकाली, तब उन्हें लगा जैसे किसी अनजान स्थल की खुदाई से उन्हें कोई पूरी पुरातात्विक समृद्ध सम्पत्ति ही हाथ लग गई है। डॉ. सहगल जो भी कार्य हाथ में लेते हैं, उसे पूरे चरित्र के साथ, कसम के साथ, निष्ठा और समर्पण भाव से सम्पादित करते हैं। किसी भी कार्य के लिए वे बड़े धैर्य और परिश्रम में डूबे मिलते हैं। पाँच-पचास व्यक्तियों से जब तक वे पत्राचार-पूछताछ नहीं कर लेते, उनके वैचारिक मन्तव्य नहीं जान लेते, खोज की पगडण्डियों का पथ नहीं बुहार लेते, तब तक वे निश्चिन्त नहीं होते हैं और बेचैन बने रहते हैं। कई बार एक-एक शब्द की शक्ति और सामर्थ्य की प्राप्ति के लिए वे कई पुस्तकें टटोलते हुए मिलते हैं। विद्वानों की जानकारी के लिए भटकते हैं। उनसे व्यक्तिशः भेंट करने या फिर फोन पर संवाद के लिए मचलते-तड़फते हैं और जब उन्हें पूर्ण सन्तुष्टि मिल जाती है, तब ही वे उस कार्य को पूरा करते हैं। उनकी इस जिज्ञासा वृत्ति और तड़फ-वृत्ति से मैंने भी बहुत कुछ सीखा है।

लोकदेवियों के अध्ययन के लिए इस क्षेत्र में स्थापित जागृत-सुप्त लोकमाताओं के मन्दिरों-देवरों पर डॉ. पूरन सहगल ने अनेक बार धोक दी।

गाँव-गाँव, ढाणी-ढाणी जाकर इन्होंने लोक आस्था के लोक देवी-देवताओं की खोज की। उनके पुजारियों-भोपों और लोक मर्मज्ञ आयुवृद्ध लोगों से जानकारियाँ एकत्र कीं। इन्हें एक बार नहीं, अनेक बार ऐसी विकट यात्राएँ करना पड़ीं। इसके प्रतिफल में इन्होंने लोकमाताओं की दस यश गाथाएँ एकत्र कर लीं। इनके मुख्य कार्य के लिए ये विरद गाथाएँ प्रथम चरण सिद्ध हुईं। इन लोक गाथाओं में इस जनपद का इतिहास, संस्कृति, भूगोल, लोक परम्पराएँ, लोक विश्वास और लोकाचार के अनेक महत्त्वपूर्ण सूत्र निहित हैं, जो साहित्यकारों और इतिहासकारों के लिए मार्गदर्शक सिद्ध होंगे। इन गाथाओं और विरद बखाणों को डॉ. पूरन जी ने पृथक से 'मालवा लोक साहित्य' में उपलब्ध विरद बखाण और गाथा साहित्य नाम से प्रकाशित किया है। इनकी अब तक संग्रहित लोक गाथाओं पर विक्रम विश्वविद्यालय पृथक से शोध करवा रहा है। ऐसे अनेक शोध-द्वार डॉ. पूरन जी ने अपने शोध परिश्रम से खोले हैं।

जिन लोकमाताओं पर डॉ. पूरन जी ने शोधकार्य किया है, वे सभी किसी न किसी समय इसी लोक में जीवित रहीं। उन्होंने अपने आत्मबल और सत्यनिष्ठा से सत्य एवं सतीत्व की रक्षा के लिए संघर्ष करते हुए अपने प्राणों तक का बलिदान कर दिया। वे सभी महान नारियाँ अपने उन्हीं सत्कार्यों के कारण लोक पूज्य हो गईं। लोक उन्हें 'लोकमाता' के रूप में पूजता है। उन लोकमाताओं की संघर्ष कथाओं को खोज निकालना, रेत को रगड़कर पानी निकाल लेने जैसा असम्भव कार्य है। डॉ. सहगल ने इस असम्भव को सम्भव किया है। इस दृष्टि से यह कृति डॉ. पूरन जी की महत्त्वपूर्ण कृति है, जिसका मूल्यांकन कर पाना बहुत कठिन है। लोकमाताएँ अर्थात् अवतारी देवियों को एक स्थान पर स्थापित कर डॉ. पूरन जी ने अद्भुत कार्य किया है। अब तक तो 'सप्त मातृकाओं' की पूजा एक पटल पर होती थी। डॉ. पूरन जी ने 150 देवियों को एक पटल पर सुप्रतिष्ठित कर एक अद्भुत कार्य किया है। अन्य लोग भी प्रेरित होकर अपने क्षेत्र को टटोलेंगे। ऐसा विस्तृत कार्य अब तक मालवी लोक भाषा और लोक साहित्य में ही नहीं, अन्य किसी लोकधारा में किया गया हो, मेरी जानकारी में नहीं

## लोक साहित्य का सुफल

है। डॉ. सहगल का सबसे बड़ा गुण विज्ञानों से सम्पर्क बनाये रखने का है। जो जिस क्षेत्र में काम कर रहा होता है, अपने अनुकूल उस क्षेत्र के विद्वान के साथ जुड़कर वे अति प्रसन्न होते हैं। उससे बराबर बातचीत या फिर पत्र द्वारा संवाद बनाकर मार्गदर्शन लेते-देते हैं। लोकमय हो इस तरह काम करने का गुर कोई डॉ. पूरन जी से सीखे।

मैंने उनकी कृति को पढ़ा है। इसमें उनकी लोक रुचि और श्रम की सात्त्विक सुगन्ध का आनन्द भी मैंने लिया है। यह सुगन्ध पूरे मालवा और मेवाड़ तक नहीं, बल्कि पूरे उस लोक तक में सुवासित हो, ऐसी ही कामना है।

ये लोककथाएँ आदिवासी लोक संस्कृति के अमूल्य एवं गौरवशाली दस्तावेज हैं। इन कथाओं में चमत्कार है तो लोकरंजन भी है। संघर्ष है तो सात्त्विक सन्देश भी है। ये लोककथाएँ हमें हमारी महान सांस्कृतिक धरोहर से परिचित कराती हैं। जिसमें नारी का दुर्गा और कालिका का साहस है तो लक्ष्मी-सरस्वती का सात्त्विक भाव भी। इनमें जुझारू होने का साहस है तो जीने की ललक भी है। इनमें प्रेम, घृणा, संयोग, वियोग, लोक कल्याण, सतीत्व सुरक्षा, वीरतत्व, दान, बलिदान सभी कुछ है। इनमें आदिवासी भील संस्कृति 'सत्ता और सत्यनिष्ठा' का लेखा-जोखा भी है, तो राजाओं-जागीरदारों के विलासी जीवन का आकलन भी है। ये कथाएँ पठनीय और संग्रहणीय हैं। डॉ. पूरन में अपने आत्मबल और लोक समर्पण भाव के बलबूते अपनी आयु सीमा को पीछे धकेलकर आगे बढ़ने का जो साहस है, वह सभी वर्ग के शोधार्थियों के लिए प्रेरणास्पद है। वे इसी धाकड़पन से सुविचारित एवं सुविज्ञ लोकविज्ञ के रूप में हमें उपलब्ध रहें। आशा है, यह कृति लोक साहित्य एवं लोक संस्कृति के भण्डार में कई नये तथ्य उद्घाटित करेगी और आने वाली पीढ़ियों के लिए अधिक लोकोपयोगी होगी।

उदयपुर

-डॉ. महेन्द्र भानावत

जन्म से डॉ. पूरन अविभाजित भारत के उस हिस्से से हैं, जो आज भारत में नहीं होकर पाकिस्तान में है। इनकी मातृभाषा न तो हिन्दी थी और न ही मालवी। पूरन का परिवार समय के थपेड़े खाता विभाजन की लहरों के साथ बहता-बहता अन्ततः मनासा में आकर बस गया।

सारा शिक्षण 'हिन्दी' में होने के बावजूद डॉ. पूरन सहगल ने मालवा और मालवी को गहरे से अपना लिया। पूरन की मालवी में उन सभी बोलियों का समावेश है, जो इस अंचल में बोली जाती हैं। मेवाड़ी, हाड़ोती, सौंधवाड़ी, दशपुर जनपद की सीमांचल की बोलियाँ हैं। यहाँ की मालवी पर स्वाभाविक रूप से इन बोलियों का प्रभाव है। दशौरी मालवी के आँगन में इन सबका शुभागमन है। यह दशौरी मालवी डॉ. पूरन की मालवी है। अपने किशोर-काल से जो भी शब्द जहाँ से मिला, उसे ले लिया और उसका प्रयोगधर्मी उपयोग किया। इस प्रकार कहा जा सकता है कि डॉ. पूरन दशौरी या दसौरी मालवी के प्रतिनिधि कलमकार है।

पूरन एक धार्मिक व्यक्ति है। धर्मान्ध नहीं। उसकी सोच, सहज, सात्त्विक और सुस्पष्ट है। वह जानता है कि उसका बोला, कहा और लिखा आज नहीं तो कल छपेगा, पढ़ा जायेगा और शोधार्थियों के काम आयेगा। वह मुँहफट नहीं है। निस्संकोच है। एक विशेष दायित्व बोध है, जो उसे कसता जा रहा है। जहाँ तक मुझे याद है 'संत पीपा की कृतियों का संकलन-सम्पादन' पूरन का शोध विषय रहा। उसी द्वार से पूरन ने मालवी लोक

साहित्य में प्रवेश किया। डॉ. चितामणि उपाध्याय का स्वाभाविक प्रभाव डॉ. पूरन पर पड़ा। दादा इसके शोधगुरु थे।

डॉ. पूरन संत पीपा के पदों को ढूँढ़ने-खोजने में इस प्रकार संलग्न हुआ कि मालवी लोक साहित्य से बाहर निकलने का उसका मन ही नहीं हुआ। इसे मालवी की मिठास कहा जाये या फिर पूरन की लोक रुचि, यह तय कर पाना कठिन ही है। मालवी लोक साहित्य के भीतर पूरन को अकूत खजाना होने का आभास ही इसे बार-बार गहरी गोत लगाने के लिए प्रेरित करता है। डॉ. पूरन कभी डूंगजी-जवारजी के पद ढूँढ़ लाता है तो कभी संत वाणी, कभी चन्द्रसखी के पद तो कभी सुन्दर के दोहे। रीते हाथ तो वह कभी लौटा ही नहीं।

लोकमाताओं और उनकी अन्तर्कथाओं का काम पूरन ने बहुत श्रम से किया है। दशपुर जनपद के लोक तीर्थों पर जाना और उनकी कथाएँ ढूँढ़ना बहुत कठिन कार्य था। इस कार्य में उसे तीन बरस लग गये। यदि यही कार्य वह पूरे समग्र मालवा पर करता तो शायद इसकी उम्र ही बीत जाती। इन लोककथाओं में केवल लोकरंजन ही नहीं है। इनमें लोक संस्कृति के वे समस्त सूत्र-मंत्र भी हैं, जिन पर भारतीय संस्कृति टिकी हुई है। विशेषकर आदिवासी लोक संस्कृति की यश गाथाएँ इन अन्तर्कथाओं में निहित हैं। यह शोधकार्य डॉ. पूरन ने क्रमबद्ध चरण-चरण किया है। पहले चरण में पूरे अंचल के गाँव-गाँव घूमकर लोक आस्था के शक्तिपीठों को चिह्नित किया। दूसरे चरण में लोकमाताओं के देवों-मन्दिरों का वर्णन एकत्र किया तथा तीसरे चरण में उनकी अन्तर्कथाओं को खोजा। इसी के साथ पूरन ने कुछ विरदें, बखाण और गाथाएँ भी संकलित कीं। ये विरद गाथाएँ ही उन अन्तर्कथाओं को प्रमाणिकता देने में सहायक हुईं। डॉ. पूरन ने अपनी यात्राओं और उपलब्धियों का जिक्र प्रत्येक बार मुझसे किया। मुझे बार-बार लगता था, इस बार पूरन उलझ गया है, लेकिन वह सुलझ-सुलझाकर हमारे सामने है। एकदम ताजा दम, सुरख रूह होकर। यह उसकी संकल्प-शक्ति का ही नतीजा है।

डॉ. पूरन की पुस्तक 'मालवी लोक साहित्य के विरद बखाण और

गाथा साहित्य' इन अन्तर्कथाओं और लोकमाताओं के यश खोजने-बखानने में सहायक हुईं। वस्तुतः डॉ. पूरन की यह पुस्तक परस्पर पूरक हैं। पाठकों और शोधार्थियों को इन दोनों पुस्तकों को एक साथ इसी क्रम से पढ़ना चाहिए।

लोक साहित्य को ढूँढ़ लाना तो कठिन है ही, उसे सुलेखित कर लेना और भी कठिन है। सारा का सारा वाचिक लोक साहित्य गाँवों, ढाणियों और डेरों-कबीलों में बिखरा पड़ा है। उसे शब्द-शब्द बटोरना होता है, समझ सोचकर सहेजना होता है, कथाक्रम निर्धारित करना होता है, सांस्कृतिक सन्दर्भों का मिलान करना होता है। इस कार्य में पूरन को महारत हासिल है। यह सब उसने अपने अनुभव और विषय मर्मज्ञ विद्वानों के मार्गदर्शन से प्राप्त किया। अपनी विनम्रता, निर्दम्भता और जिज्ञासा के कारण वे सर्वप्रिय हैं।

पूरन अपने साथ अपने निवास नगर 'मनासा' का नाम लेकर यायावरी करता है। यह तत्त्व उसे एक विशेष श्रेणी में रखता है। डॉ. पूरन की पहचान किसी धर्म, जाति या समाज से नहीं है। उसे अपने रचना धर्म-कर्म और साहित्य धर्म तथा लोक मर्म से ही पहचाना जाता है। यही उसकी पहचान है। वह लोक साहित्य के लिए इसी प्रकार समर्पित होकर शोधरत्न बना रहे, ऐसी ही मेरी मनोकामना है। पूरन की इस नवप्रकाशित पुस्तक पर हम सब उसे बधाई दें। ऐसा सुकृत उसने किया है। मेरी बधाई।

मनासा

-बालकवि बैरागी

प्रस्तुत पुस्तक डॉ. पूरन सहगल की श्रम तपस्या की सुकीर्ति है। डॉ. सहगल ने लगभग तीन वर्षों के अथक परिश्रम से यह महत्त्वपूर्ण कार्य सम्पन्न करके यह सिद्ध कर दिया है कि यदि मनुष्य का संकल्प दृढ़ हो और दिशा सही हो, तब उसमें न तो आयु बाधा बन सकती है और न अर्थ। तमाम असुविधाओं एवं बाधाओं के होते हुए भी डॉ. सहगल पूरे अरावली पठार को चित्तौड़ से गागरोन अर्थात् मेवाड़ी सीमा से लगाकर हाड़ौती सीमा तक चप्पा-चप्पा, गाँव-गाँव, ढाणी-ढाणी, मन्दिर-देवों तक पहुँचे, वहाँ के वयोवृद्ध लोगों से मिले और देवों व मन्दिरों की जानकारी के अतिरिक्त उनकी अन्तर्कथाओं को भी ढूँढ़ लाए। सचमुच यह कार्य अत्यन्त अद्भुत है। दस शोधार्थियों की टीम का कार्य अकेले डॉ. पूरन सहगल ने पूरा कर दिखाया है। इसमें उन्होंने अपना समूचा श्रम, अर्थ और समय लगा दिया। आदिवासी लोक इतिहास की दृष्टि से यह शोध कार्य अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है। इस शोध से कई शोध सम्भावनाएँ प्रबल हुई हैं। विशेष रूप से इस अंचल में आदिवासी समाज में गौरवशाली अतीत एवं दयनीय वर्तमान पर समाज और शोधार्थी का ध्यान आकर्षित हो पायेगा। इस महत्त्वपूर्ण शोधग्रन्थ के प्रकाशन से अनेक शोध सम्भावनाओं को तो बल मिलेगा ही, आदिवासी समाज के इतिहास पर भी प्रकाश डाला जा सकेगा और इतिहास के एक अँधेरे युग पर से समय की गर्द की परतें हटाई जा सकेंगी। दशपुर अंचल के आदिवासी समुदाय की इन गौरव गाथाओं को प्रणाम...!

नीमच

-पं. मोतीलाल शर्मा

दशपुर जनपद का अरावली पठार किसी समय आदिवासी भील समुदाय का सत्ता क्षेत्र रहा है। इस पठार तथा नीचे तलहटी के विस्तृत क्षेत्र में भीलों के छोटे-छोटे ठिकाने थे। रामपुरा, भामपुरा (भानपुरा), शामपुरा (शामगढ़), आमद, बूज, हिंगलाज, दाँतोली, वाराजी, साडा, सरवानिया, कनेरा आदि मुख्य ठिकाने थे। ये राजा कहलाते थे।

ऐसे ही कई और भी ठिकाने थे जिनके अधीन कुछ छोटे भील सामन्त होते थे। इनमें परस्पर कभी कोई बड़ा विवाद नहीं हुआ। प्रतिवर्ष अलग-अलग तिथियों में ये ठिकानेदार इकट्ठे होते थे। वर्ष भर के विवाद आपसी बातचीत से निपटा लिये जाते थे। ऐसा भीलों की विरदों से भी ज्ञात होता है।

*हाँचो जमे जमावड़ो, भेला वे सब भिल्ल सिरदार।*

*झगड़ा टूटे राणां मटै, सगपण सदे हज़ार ॥*

*नाता गोता हद सदे, नत थावर दिवार ॥*

(भील विरदावली, पद 45-46, डॉ. पूरन सहगल)

इसी प्रकार सब हिल-मिलकर सारे झगड़ निपटाते थे। इस विरदावली में यह भी कहा गया है-

*संकोदोरो केदावरो, अंतारी आमद सुखधाम।*

*साँकरयो बूज राँपरो, भानपुर सालर मानो ग्राम ॥*



खास ठिकाणा हे भीलां का, ई दस तीरथ धाम।

छोटा गाम हजारणा, मोटा छप्पन नाम ॥

(भील विरदावली, पद 40-41, डॉ. पूरन सहगल)

दस ठिकाने मुख्य थे। यही स्थान भील समुदाय के तीर्थ भी थे। जो इनसे छोटे थे। गाँव तो हज़ारों थे। विरदावली में एक जगह कहा है- 'आड़ा अवला ठेट तलक, ज्याँ देखूँ त्याँ भील'। (वही, पद-12)

अरावली पर सब तरफ भीलों के ठिकाने थे। कई ठिकानों ने अपने गढ़े भी बना रखे थे। गढ़ा अर्थात् परकोटा। पूरे अरावली पर मैंने आदिवासी बहुल क्षेत्र का सर्वे किया। पूरे क्षेत्र में अनेक तीर्थस्थल अथवा देवस्थल हैं। ये सभी देवस्थल या देवरे भील पुजारियों द्वारा पूजित हैं। किसी समय ये देवरे भील समुदाय के आस्था के केन्द्र थे। आज ये सार्वजनिक आस्था केन्द्र हैं। मैंने अपने सर्वे में 130 मातृ शक्तिपीठ चिह्नित किये और उनके प्रति लोकजीवन में विश्वास ज्ञात करने का प्रयत्न किया। ये समस्त शक्तिपीठ अरावली की गागरोनी सीमा (झालावाड़) से लगाकर पश्चिम में चित्तौड़ की मेवाड़ी सीमा तक विस्तार क्षेत्र में स्थापित हैं। इस क्षेत्र को दशपुर जनपद कहा जाता रहा है।

ये सभी लोकमाताएँ अपने जीवनकाल में भी मान्य हुईं। जिस प्रकार लोकनायक रामदेवजी, तेजाजी, पाबूजी, डूंगजी, देवनारायण जूणजी आदि अपने सत्कार्यों के फलस्वरूप लोकदेवता के रूप में पूजित हुए। उनके गाँव-गाँव, देवरे - मन्दिर बने और उनकी यश गाथाएँ बखानी गयीं। उसी प्रकार ये लोकमाताएँ भी अपने जीवनकाल के सत्कार्यों के कारण लोक-पूज्य हुईं। इन्होंने सत्य और सतीत्व की रक्षा के लिए अपने प्राणों का उत्सर्ग किया। बहुत सम्भव है इन लोक-सतियों की भी विरदें बखानी गई हों, किन्तु वे लोककण्ठों पर लम्बे समय तक जीवित नहीं रह सकीं।

मैंने इन लोकमाताओं को खोजने का कार्य प्रारम्भ किया। काम बहुत कठिन था। इन माताओं के पण्डे-पुजारी तक कोई जानकारी नहीं दे पाते। लगातार सम्पर्कों के बाद इन कथाओं (जिन्हें हम शौर्यगाथा कहें तो अधिक संगत होगा) का संकलन हो पाया। मेरे पास अपने इस शोधकार्य में तीन

कार्य थे- लोकमाताओं की अन्तर्कथाएँ, दशपुर जनपद में उपलब्ध विरद बखाण एवं गाथा साहित्य और आदिवासी लोक संस्कृति में 'मिथक'। लगभग तीन वर्षों के सतत् श्रम का फल जितना मिला, वह सन्तोषप्रद रहा। इस शोध में चि. संजय शर्मा-नीमच, श्री बंशीलाल परमार-सुवासरा, श्री मोहनलालजी 'विकल'-रूणीजा, श्री प्रभुलाल भट्ट-रामपुरा का योगदान यदि न मिला होता तो यह शोध मेरे लिए एक सपना ही बना रहता।

श्रीयुक्त बालकवि बैरागी, डॉ. महेन्द्र भानावत, श्री पं. मोतीलाल शर्मा-नीमच, डॉ. भगवतीलाल राजपुरोहित, डॉ. शैलेन्द्र शर्मा, डॉ. शिव चौरसिया-उज्जैन, डॉ. प्रद्युम्न भट्ट, श्री प्यारेलालजी रांगोठा, श्री देवीसिंहजी परमार-'देव' भानपुरा जैसे कृपावन्तों का पृष्ठबल न मिलता, तब भी मैं यह शोध बीच में ही रोक देता।

इस सम्पूर्ण शोधकार्य में जो मुख्य और महत्वपूर्ण बात उभरकर आई, उससे यह ज्ञात हो सका कि ये सभी लोकमाताएँ अपने जीवनकाल में भील कन्याएँ थीं। वे वीरांगनाएँ होकर युद्धकला में प्रवीण थीं। इस संग्रह में 110 लोकमाताओं की अन्तर्कथाएँ इस क्षेत्र की भील-सत्ता का यश बखान करने वाली महत्वपूर्ण गाथाएँ हैं। 'गाथा' कहने पर सम्भवतः लोक साहित्य के विद्वान थोड़ा-सा एतराज करें। उन सभी विद्वानों से मैं अत्यन्त विनम्रतापूर्वक कहना चाहूँगा कि लोक साहित्य की सदानीरा कल-कल प्रवाहिनी सरिता को किसी परिभाषा वाले बाँध से बाधित कर पाना बहुत कठिन है। जहाँ यश बखान है, वहाँ गाथा का वास है। गाथा का उद्गम कथा है। लोककथा गेय होकर गाथा का रूप धारण करती है तथा यही गाथा पुनः लोक प्रचलित होकर कथा भी बन जाती है। यह तो एक चक्र है। इसकी गति सतत् एवं निर्बाध है। बहुत सम्भव है कि पूर्व में ये सभी कथाएँ गेय गाथाएँ ही हों और भूलते-बिसरते इनका कथा-रूप ही बच पाया हो। वस्तुतः कथा ही गाथा की गंगोतरी मानी गई है। गंगोतरी जीवित है। यह भी सुखद प्रसंग ही है। कथा ही गाथा का मुख्य आधार होता है। ये लोककथाएँ जहाँ लोकरंजक हैं, वहीं इनमें भील समुदाय की वीरांगनाओं का शौर्य भी ठाठें मारता हुआ प्रतीत होता है।

इसी संग्रह में 40 लोकदेवियाँ हैं, जिन्हें लोक ने समय-समय पर रोग-शोक निवारणार्थ स्थापित किया। वे लोकमाताएँ हमारे पर्व-त्यौहार और अन्य अवसरों पर सर्वपूज्य हैं। उनका महत्त्व लोकजीवन में आज भी जस का तस है। सब सर्वपूज्य हैं। इस विज्ञान-युग में भी उनके प्रति आस्था निरन्तर है। लोकमाताओं के साथ ही आठ लोक-भैरव भी इस संग्रह में समायोजित हैं। इन लोक भैरवों का महत्त्व लोकमाताओं से जुड़ा है।

वर्ष 2009  
मनासा, मध्यप्रदेश

-डॉ. पूरन सहगल



## मनासा की लोकमाताएँ

दशपुर जनपद में मनासा एक ऐसा कस्बा है, जिसका कोई ऐतिहासिक दर्जा नहीं रहा। मूलतः यह गाँव आदिवासी समुदाय की बसाहट रहा है। वर्तमान नगर के दक्षिण में स्थित पीर रूण्डी से वर्तमान रामनगर तक पश्चिम-पूर्व में मीणा समुदाय की गहन आबादी थी। यह समुदाय राजस्थान के मेवाड़ क्षेत्र से आठवीं शताब्दी में मान मौरी के हाथों से चित्तौड़ (चित्रकुट) छिन जाने और वहाँ गुहिल बप्पा रावल का अधिकार हो जाने के पश्चात् इधर आकर बसा। नीमच की बसाहट भी इसी मीणा समुदाय की ही है। जो समुदाय वर्तमान बड़ा तालाब या पीर रूण्डी क्षेत्र में बसा, उसे उन्होंने नया नहीं बसाया, बल्कि वहाँ पहले से ही आदिवासी बस्ती थी। यह बस्ती बड़ा तालाब क्षेत्र में रामपुरिया और छोटी तलाई क्षेत्र की रूण्डी तक रामनगर कहलाती थी। बीच-बीच में छुटपुट बस्ती यहाँ थी।

इन दोनों बस्तियों से दक्षिण की ओर दूर जालीनेर और अचलपुरा, शेषपुरा आदि बस्तियाँ भी भील समुदायों की थीं। इस प्रकार यह समूचा क्षेत्र भील तथा मीणों का संघ था। बाद में किन्हीं कारणों से मीणों का समुदाय इधर-उधर फैल गया और रामपुरिया और रामनगर दोनों गाँव बे-चिराग हो गये। कुछ मीणा परिवार वर्तमान 'जूनासाथ' में आकर बसे। मीणों की यह बस्ती 'मीणासाथ' कहलाती थी। 'मीणासाथ' का अर्थ हुआ 'मीणा बस्ती'। मीणासाथ ही आगे चलकर 'थ' वर्ण के लोप के कारण 'मीणासा' और

'मणासा' होकर 'मनासा' हुआ। यह आबादी बाद में जूनासाथ कहलायी, क्योंकि उस आबादी का विस्तार अन्य जातियों के आकर बसने के कारण होता गया। वर्तमान चार भुजा मन्दिर मीणा समाज का ही मन्दिर है। इस पूरी घाटी पर मीणों के परिवार बसते थे। आज जहाँ अन्नपूर्णा मन्दिर है। यह पूरा विस्तृत भूभाग चारभुजा मन्दिर की व्यवस्था हेतु मीणा समाज द्वारा तत्कालीन पुजारी के नाम मन्दिर की ज़ागीर के रूप में दान में दिया गया था। मीणों के बाद यहाँ साहूकार वर्ग आना शुरू हुए।

पूर्व मीणासाथ से नीचे कपड़ा मार्केट में शाह साहूकारों का मोहल्ला या पोल है। यही शाह (शाहजी) पदवी वाले माहेश्वरी साहूकार यहाँ पर 'हाजी' कहलाये। 'श' वर्ण का मालवी और मेवाड़ी में 'ह' उच्चारण सहज प्रक्रिया है। इसी कारण 'शाहजी' - साजी हो गये, 'ह' का लोप हो गया। यह पोल आज 'साजियों की पोल' कहलाती है। पोल का भी शुद्ध उच्चारण 'पोर' जो पुरा का पर्याय है, भाषाई प्रक्रिया से बन गया। 'पोर' का अर्थ परकोटे और दरवाज़ों वाली बस्ती होता है। भीलों का वर्ग वर्तमान भील बस्ती में बस गया।

वस्तुतः यहाँ जूनासाथ से लगा पूरा पृष्ठ क्षेत्र भीलों की बड़ी बस्ती थी, जो आज एक मोहल्ला बन गया। इस मार्ग को भील गली कहा जाता है। यह मार्ग नीमच झालावाड़ मुख्य मार्ग तहसील के पास से नीचे उत्तर की ओर आगे जाकर मीणासाथ या जूनासाथ से जा मिलता है। वस्तुतः भील समुदाय व मीणा समुदाय एक ही वर्ग के माने जाते रहे हैं।

भीलों और मीणों ने मिलकर वर्तमान जोगणियाँ रूण्डी पर एक ओटले पर अपनी-अपनी माताओं की स्थापना की। यह देवरा दोनों समुदायों के परस्पर भाईचारे का प्रतीक है। वैसे यहाँ प्रमुखता मीणा समुदाय की जोगणियाँ माता की ही मानी जाती है। पूर्वकाल में दोनों समुदाय के लोग यहाँ अपनी-अपनी माताओं की पूजा करते थे। बाद में भील समुदाय ने अपनी माता का स्थान अपनी बस्ती में स्थापित कर लिया। इन माताजी को लालबाई-फूलबाई कहा जाता है।

## जोगणियाँ माता

जोगणियाँ माता का देवरा जोगणिया रूण्डी पर है। यह मीणा समाज की इष्ट देवी हैं। सम्भवतः मनासा में मीणा समुदाय की बसाहट के साथ ही इस देवी की स्थापना की गई होगी। वर्ष में एक बार यहाँ पर मेला पड़ता है। लोग यहाँ कौड़ियों का खेल खेलते हैं। यह एक प्रकार का जुआ ही है। पूर्व में इस स्थान की पूजा भील और मीणों करते थे, किन्तु आजकल यह पूजा मनासा के नाथों के पास है। नवरात्रि में यहाँ बलि दी जाती है। लोग नवरात्रों के अलावा भी मन्नत-मनौती की पूर्ति होने पर बलि चढ़ाते हैं।

कुछ वर्षों से यहाँ हनुमानजी व शिव मन्दिर की स्थापना हो गई है। कोई न कोई साधु यदा-कदा यहाँ रहता है। इस कारण अब दिशा बलि अर्थात् जोगणियाँ माता के नाम से अन्यत्र बलि दी जाती है। जोगणियाँ माता के साथ ही भीलों की देवी भी स्थित हैं। तीसरी देवी वागरी समाज की बतायी जाती हैं, लेकिन दोनों समाजों का यहाँ अब कोई वर्चस्व नहीं है।

यह स्थान अब सार्वजनिक हो गया है। नगर के अन्य समाजों के आस्तिकगण भी जोगणियाँ माता के दर्शन करने आते हैं। चूँकि यह माता इस नगर की अधिष्ठात्री देवी हैं, इस कारण इसे 'मनासा माता' कहें, तब और भी उपयुक्त होगा।

## लालबाई-फूलबाई माता

यह माता वर्तमान में भील मोहल्ले में स्थित हैं। किसी समय यह भील मोहल्ला एक भील गाँव जैसा था। जूनासाथ से दक्षिण में तहसील कार्यालय का भीतरी भाग एवं उधर पश्चिम में अस्पताल मार्ग तक भील परिवारों के लगभग 200 घरों की बसाहट थी। फिर इस बस्ती में कुछ मीणों भी आ बसे। मीणों की मुख्य बसाहट मीणासाथ (जूनासाथ) में ही थी। यह बस्ती चार भुजा मन्दिर तक व पूरी घाटी पर थी। उस समय मनासा की बसाहट इतनी ही थी। गाँव के मध्य में लोकमाता का यही एक देवस्थान है। प्रति रविवार यहाँ चौकी होती है। वर्तमान में माता के पुजारी फकीरचन्द भील हैं। यह

अपने परिवार सहित नीमच चला गया। दोनों नवरात्रों में यह यहाँ देवरे पर आता है। भाव अब इसके लड़के को आता है।

पुजारी के लड़के रामलाल के अलावा रमेश व बंशीलाल को भी भाव आता है। नवरात्रों में जवारें बोये जाते हैं। आखिरी दिन भाव आते हैं। बलि भी होती हैं। मुख्य रूप से यह माता भेंसासरी हैं। माता का मूल स्थान रूण्डी पर जोगणियाँ माता के बायीं ओर विराजित है। वहाँ की जोत से यह स्थान जागृत किया गया। लगभग 200 वर्ष पहले यह माताजी रूण्डी की जोत से जागृत हुई। फिर लालू बा भील और वक्ताजी भील तेजगढ़ मनासा से लालबाई-फूलबाई माता की जोत लाए और यहाँ स्थापित की। तब से यह स्थान लालबाई-फूलबाई माता के नाम से जाना जाता है।

लालबाई-फूलबाई मुख्य रूप से चर्मरोगों की लोकदेवी हैं। शरीर पर सफेद लाल चकते और दाफड़ हो जाने पर यह माता ठीक करती हैं। पूर्व में यहाँ भाव भेंसासरी का आता था। आज भी आता है। निकट ही भैरवजी का भी स्थान है। उनका भी भाव आता है। कहते हैं- भैरव स्वयं के पीने के लिए खाली बोटलें मदिरा की स्वयं के प्रभाव से भर देते थे। भोग लगने के बाद शेष बची दारू प्रसाद रूप में सबको बाँटता था। अब उतने बड़े साधक भोपे नहीं रहे।

## वागरियों की कालका माता

जोगणियाँ रूण्डी पर स्थापित जोगणियाँ के निकट स्थापित तीसरी मूर्ति (दाहिनी ओर) वागरियों की माता हैं। यह बहुत प्राचीन स्थापना नहीं है। दोनों माताओं के बाद की स्थापना है। किसी समय वागरी समाज नवरात्रों में अथवा मन्नत मनौती पर अपनी देवी को पूजने यहाँ आता था, अब नहीं आता। वर्तमान में चुन्नीलाल वागरी को इस माता का भाव आता है।

## नारसी ( नारसिंगी माता )

यह मन्दिर भी मनासा का प्राचीन मातृ-स्थान है। जब भील और मीणों रामपुरिया और रामनगर को बेचिराग करके वर्तमान भील मोहल्ले में

और मीणासाथ (जूनासाथ) में आ बसे और अपने-अपने देवस्थान भी अपने मोहल्लों में स्थापित कर लिये, तब एक सम्पूर्ण भील-मीणा गाँव बस गया।

भीलों ने अपनी देवी अपने मोहल्ले में बसायी और वहाँ पूजने लगे। वहाँ का वह देवरा, गाँव का प्रमुख देवरा बन गया। मीणों ने एक माता घाटी पर बड़ के नीचे स्थापित की। वह धाम अधिक नहीं चला। मनासा गाँव आसपास के भीलों का केन्द्रीय गाँव बन गया। यहाँ का बाज़ार भले ही छोटा था, किन्तु अन्य गाँवों में तो बाज़ार की सुविधा बिल्कुल ही नहीं थी।

आसपास के समस्त भील समुदाय ने मनासा के उत्तरी-पूर्वी भाग में नारसी (नारसिंगी) माता का चबूतरा बनाया। नारसिंगी माता का यह धाम खूब चला और आसपास के सकल समाज के लिए यह लोकमाता आस्था का तीर्थ बनती गई।

वर्तमान नारसी माता के पीछे होल्कर स्टेट का तबेला था। यहाँ घोड़े बाँधे जाते थे। कहते हैं- किसी एक तबेलेदार ने नारसीमाता के ओटले के आसपास ही अपने घोड़े बाँध दिये और घोड़ों की लीद की ढेरी लगवा दी। नारसीमाता ने उसे सपना देकर समझाया कि- 'तू मेरे स्थान को गंदा मत कर और चबूतरे के आसपास घोड़े भी मत बाँध'। तबेलेदार ने इस सपने को कोरा वहम समझा और अपनी मूर्खता पर डटा रहा। अगली रात को पलंग सहित तबेले से बाहर जा गिरा। उसके पूरे शरीर पर दाफड़ (खाज युक्त लाल चकोतरे) उभर आये। यही हालत उसके घोड़ों की भी हुई। सबेरा होने पर जब लोगों ने उसकी हालत देखी, तो सबने माता का कोप जानकर उसे समझाया कि वह तत्काल माता की शरण में जाये और अपनी गलती की माफी माँगे। माता अपने भील भोपे के शरीर में भाव रूप में प्रकट हुई और तबेलेदार से कहा- वह मनासा के दोनों लालबाई-फूलबाई देवरों पर जाये और दोनों माताओं के धूप ध्यान की भभूत को अपने शरीर पर मलकर वहाँ के नम्मण से स्नान करे। वे दोनों स्थान भी मेरे ही हैं, मेरा ही स्वरूप हैं।

तबेलेदार ने माता की आज्ञा के अनुसार आचरण किया और तत्काल ठीक हो गया। उसके घोड़े भी ठीक हो गये। उसने स्वयं माता के आसपास

की सफाई की। माता का चबूतरा पक्का बनवाया। तबेले और माता के ओटले के बीच दीवार खिंचवायी। बाद में अहिल्या माता ने माता के नाम की ज़ागीर निकाली।

आदिकाल से भील समाज ही माता की सेवा करता चला आ रहा था। भीलों के पलायन और पराभव के बाद ख्यालीरामजी जटिया को माता का भाव आता था। वह माता की पूजा भी करता था और माता की विरद भी गाता था। ख्यालीरामजी जटिया की मृत्यु के पश्चात् श्री जयरामजी तेली-मनासा को माता का भाव आता है। पूर्व में यहाँ बलि होती थी। मन्दिर में दारू की धार भी चढ़ती थी।

आजकल मनासा का बैरागी परिवार माता की पूजा करता है। वर्तमान पुजारी दयालदास बैरागी ने बताया कि अब यहाँ बलि नहीं होती। माता के नाम से मन्नत-मनौती वाले इनके नाम से दिशा बलि करते हैं, ऐसा बताया जाता है। वर्तमान मन्दिर मनासा के सकल समाज के सहयोग से बनाया गया। सकल समाज यहाँ की पूजा भी करता है। नवरात्रों में जब सब देवी-देवताओं की सवारियाँ निकलती हैं, तब सब दिशाओं से यहाँ इकट्ठी होती हैं, फिर एक साथ आगे बढ़ती हैं। नारसीमाता सकल मनासा की लोकमाता के रूप में सम्पूज्य हैं।

### लालबाई-फूलबाई ( काछीपुरा )

मनासा का काछी समाज मनासा में बसने से पहले पीतपुर में बसता था। किन्हीं कारणों से पीतपुर बेचिराग हुआ और सभी काछी समाज वर्तमान मोहल्ले में आ बसा। पीतपुर आज भी राजस्व में नामांकित है एवं वहाँ का वसूली पटेल मांगीलाल काछी जमंदरिया आज भी उस क्षेत्र की जमीनों की तोजी वसूलता है। अब तक उसके दादाजी स्व. रतन बा पीतपुर के वसूली पटेल थे। जब काछी समाज मनासा में आकर बसा, तब उनके साथ पीतपुर के कुछ भील परिवार भी आकर उसी क्षेत्र में बसे। यह भील समूह किसी समय गोठड़ा राजस्थान से पीतपुर आकर बसा था। जब भील परिवार मनासा में काछियों के साथ उसी मोहल्ले के बल्कि छोटे-से गाँव के रूप में

आ बसे, तब उन्होंने अपनी कुल माता लालबाई-फूलबाई का चबूतरा पीतपुर से लाकर यहाँ स्थापित किया। कालान्तर में एक-एक करके भील समाज रोजी-रोटी के लिए अन्यत्र चला गया। एक परिवार यहाँ रहा, जो खेती-मजदूरी करके अपना गुजर-बसर करता था और माताजी की सेवा भी करता था। उसका समाज में खूब मान-पान था। उसे माताजी का भाव भी आता था। मनासा में आज भी नवरात्रों में प्रथम भाव इसी देवरे में आता है। निकट श्मशान के काल भैरव की सवारी पहले यहाँ आती है और यहीं आकर प्रकट होती है। भील पुजारी की मृत्यु के पश्चात् अब पीतपुर का वसूली पटेल रतन बा का पोता मांगीलाल जमंदरिया काछी माता की पूजा करता है तथा व्यवस्था भी सँभालता है। काछी समाज में छपेरिया गोत्र के परिवार इस लोकमाता की विशेष रूप से पूजते हैं।

यह माता प्रमुख रूप से चर्मरोगों के निवारण वाली माता मानी जाती है। मूल रूप से इसका स्थान तेजगढ़ की झर से था। भील मोहल्ले में स्थित लालबाई-फूलबाई माता की जोत भी तेजगढ़ से ही लाई गई थी। ये माताएँ भेंसासरी की ही शक्ति स्वरूपा मानी जाती हैं। यह माता डाकनियों का सुधारा भी करती है।

### चोर बड़ले की माता

मनासा नीमच मार्ग पर बंजारा बस्ती सावन कुण्ड से पहले सड़क से दक्षिणी भाग में एक विशाल वट था। यह वट अब उतना घना नहीं रहा। उस वट के नीचे एक देवी का स्थान है। इस देवी का स्वरूप ज्ञात नहीं है। इसे चोरों की देवी माना जाता है। इस चोर बड़ले की विपरीत दिशा उत्तर में थोड़ी दूर सावन कुण्ड और सावन के बीच एक गाँव था, जिसमें पारदी जाति के लोग निवास करते थे। पारदियों का प्रत्यक्ष व्यवसाय जंगल में से पक्षियों का शिकार करना और उन्हें बेचकर अपना गुजर-बसर करना है। इस जाति का अप्रत्यक्ष काम चोरी करना है। यह स्थान तत्कालीन होल्कर राज्य और सिंधिया राज्य की सीमा पर होने से चोरी करने के पश्चात् एक राज्य से दूसरे राज्य में छुप जाते थे। चोर बड़ले की माता इन्हीं पारदियों की

माता थी, किन्तु इस क्षेत्र के सभी चोर यहाँ आकर मन्नत लेते थे। लगभग प्रति दिन बकरे की बलि होती थी। मुर्गों की बलि की तो गिनती ही नहीं थी। शराब से माता का स्नान होता था।

### बीजासन माता

दुर्गपुरा, मनासा तहसील का एक छोटा-सा गाँव है। यह गाँव बंजारा बहुल है। वैसे यहाँ अन्य जातियाँ भी रहती हैं। किसी समय यह गाँव जमुनिया के शक्तावतों की ज़ागीर में आता था। यह गाँव दो हिस्सों में बसा है। एक मगरे पर तथा दूसरा भाग तलहटी में बणी गाँव के मार्ग पर। यही बस्ती पुरानी भी है। मगरे पर बस्ती बाद की है। यहाँ सब घर (मगरे पर) बंजारा समुदाय के हैं। नीचे तलहटी में भी बंजारों के घर हैं। बीजासन माता का थानक मगरे पर उत्तर-पूर्व भाग में कच्चे चबूतरे पर है। यहाँ पिण्डी की पूजा होती है। माता का मूल थानक मालखेड़ा में है। वहाँ पर पहले चौहान कुल के बंजारा समाज में श्री मेघाजी चव्हाण बीजासन माता की पूजा करते थे। उन्हें भाव भी आता था।

वर्तमान में अमरसिंह दायमा को भाव आता है। वही माता की पूजा करता है। अमरसिंह के दादा निस्संतान थे। दादी ने माता बीजासन की मनौती ली कि- मेरे संतान होगी तो मेरा वंश तेरी सेवा करेगा। दादी मालखेड़ा में माता के थानक पर बबूल के काँटों पर तब तक नाचती रही, जब तक वह बेहोश नहीं हो गई और गिर नहीं पड़ी। बेहोशी की हालत में माता टूटमान हुई और परचा दिया। वरदान स्वरूप उनको पुत्र प्राप्ति हुई। पुत्र का नाम खेता रखा गया। वस्तुतः यह बीजासन शंखोद्धार की 'खेतरमाता' का अंश है। खेतरमाता की दात के कारण पुत्र का नाम खेता रखा गया।

खेताजी माता को बीजासन रूप में बदाकर उनकी जोत दुर्गपुरा लाये और यहाँ माता का देवरा स्थापित किया। खेताजी को भाव आना शुरू हुआ तो उधर उनके मामा मेघा चौहान को भाव आना बन्द हो गया।

माता की पूजा करने व मनौती लेने तीस-तीस कोस तक से दुखिया लोग यहाँ आते हैं। माता सबकी सुनती हैं और दोरम काटकर मन की मुराद



पूरी करती हैं। यह बीजासन माता पशुओं की रखवाली करती हैं। नजर, भूत-प्रेत बाधा दूर करती है। संतान की दाती हैं। बच्चा और जच्चा की रक्षा करती हैं। दुःख होने पर माता के नाम की ताँत डालने से दुःख दूर हो जाते हैं। ताँत चौथे दिन थानक पर स्वयं आकर उतारना (वड़ी करना) पड़ती है। भूल-चूक होने पर माता याद दिलाती हैं। परचा सपने में देती है। फिर भी लापरवाही करने पर दण्ड देती हैं।

बलि होती है, बकरा-मुर्गा चढ़ता है। शराब की धार लगती है। बलि माँस थानक पर ही पकाकर प्रसाद रूप में सबको खिलाते हैं। पाँच किलो आटे की बाटियाँ बनाना पड़ती है। बलि बकरे का सिर-पाँव व आँत ओझड़ी भोपा को लगती है।

तीस वर्ष तक मेघाजी को भाव आया, तीस वर्ष तक खेताजी को तथा लगभग बीस वर्ष से अमरसिंह को भाव आता है। माता अपना थानक पक्का नहीं बनाने देती। वह कच्चे चबूतरे पर खेजड़ी के नीचे प्रसन्न हैं।

### आँतरी माता

आँतरी माता मनासा तहसील का गाँव है। यह गाँव मनासा से लगभग 25 किलोमीटर पूर्व में स्थित है। जनपद की रेतम नदी पुरानी आँतरी से पश्चिम में तथा वर्तमान गाँव के पूर्व में बहती है। इसी रेतम नदी के पूर्वी तट पर आँतरी माता का प्रसिद्ध प्राचीन मन्दिर है। मन्दिर की 42 सीढ़ियाँ हैं। रेतम का पानी वर्षा ऋतु में कई बार मन्दिर को चारों ओर से घेर लेता है, तब नावों से माता के दर्शन करने जाना पड़ता है। रामपुरा में चन्द्रावत राजपूतों की यह कुलदेवी हैं। आमद और रामपुरा फतह करने के पूर्व चित्तौड़ से निर्वासित सेवाजी चन्द्रावत अपने भाइयों सहित यहाँ मुकामी हुए। यदि यह कहा जाये कि मालव प्रवेश के बाद आँतरी ही चन्द्रावतों की प्रथम अशोषित गादी थी। आश्चर्य यह है कि मालवा के चन्द्रावत राजपूतों की सामाजिक पहचान 'आमदिया' है, जबकि उनकी मूल गादी व बड़ी गादी रामपुरा थी। आंत्री को भी चन्द्रावतों के नाम से न जानकर माताजी के नाम से जाना जाता है। चन्द्रावत आँतरी माता को अपनी आदि-इष्टदेवी 'चुण्डावन' के रूप में

पूजते हैं। आदिवासी इन्हें भेंसासरी रूप में पूजते हैं तथा चारण इन्हें भगवती भवानी के रूप में पूजते हैं। सर्व साधारण इन्हें आँतरी माता के रूप में पूजता है- 'जा की रही भावना (आस्था) जैसी, प्रभु (माता) मूरत देखी तिन तैसी।'

दशपुर जनपद की लोकमाताओं के लिए एक विरद विशेष रूप से बखानी जाती है। समस्या यह है कि विरदें जितनी भी हैं, एक दूसरे में गड्डु-मड्डु हो गयी हैं। अलग-अलग विरद बखानों में से छोट लेना और क्रम देना बहुत कठिन और असाध्य कार्य है। वैसे भी माताओं की गणना को क्रम देना भी धृष्टता ही है। एक विरद के अनुसार आँतरी को 'आदधाम' कहा गया है। अर्थात् सबसे पुराना व आदि शक्तिपीठ आँतरी को माना जाता है।

*आद धाम आँतरी, मोड़ी तखत मंडाण।*

*मसरौली मेहमा घणी, महुए मात परवाण॥*

*भादवा जोत ज्वालकी, सतियाँ रो सत जाण।*

*साँगाखेड़ा आवरी, दूदाखेड़ी सकराण॥*

*भँवराँ रो भाले उटे, चामुण्डा रो उटे निसाण।*

*भेंसासरि रे ताप रो, किरणबद्ध करूँ बखाण॥*

*आवराँ, आसापुरी दूभर ज्वाल भाणपर की आण।*

*पतूखी मात सतवंती, सतियाँरी ओलखाण॥*

*भाट, राव, भोपा, भणत, चारण चतर सुजाण।*

*विरद वखानी बारठाँ, ऊँची वाणी ताँण॥*

यह कह पाना कठिन है कि विरद में कुल इतने ही पद हैं अथवा यह किसी बड़ी विरद का अंश है। इस क्षेत्र में आँतरी माता सबसे पुरानी बस्तियों में से एक है। यह पूरा क्षेत्र किसी समय आदिवासी बहुल क्षेत्र रहा है। जब चन्द्रावत लोग आँतरी में आये, तब भी यहाँ आदिवासी समुदायों का बाहुल्य था। रामपुरा पर रामा भील का शासन था। आँतरी रामाभील की सबसे सम्पन्न तहसील थी। आँतरी माता का स्थान तब भी यहाँ था, इसी स्थान पर था। यद्यपि यह मन्दिरनुमा न होकर खुला स्थान था। हो सकता है माता के ऊपर छाया हो। आदिवासी समुदाय इसे भेंसासरी माता के नाम से

जानते थे और स्वयं रामा भील यहाँ दर्शन करने आता था।

आँतरी माता के साथ तीन लोककथाएँ ( इतिहास सम्मत भी ) प्रचलित हैं। प्रथम के अनुसार अंबली नाम की एक भील कन्या माता की स्वरूपिणी बालिका थी। उसमें माताजी का वास था। वह उस समय के माता के पुजारी की कन्या थी। अंबली प्रभात में माताजी के ओटले पहुँच जाती थी। रेतम के दोह में माताजी के साथ स्नान करती। फिर माता को पाटकर-पधराकर उनका श्रृंगार करती-पूजा करती और फिर सूरज की पहली किरण के साथ घर लौट आती। दिन भर जंगल में अपनी गायें चराती और दिन ढले गायें लेकर माता के दरबार में आकर माता की संध्या पूजा करती, फिर गायें लेकर घर चली जाती - यह उसकी दिनचर्या थी।

आँतरी में ही एक मेघा तांत्रिक था। वह भी भील ही था। वस्तुतः आँतरी तांत्रिकों का शक्तिपीठ है। यहाँ बैठकर तंत्र साधना में सफलता प्राप्त होती है। साँगाखेड़ा मांत्रिक शक्तिपीठ है। उसे शंकोतरी महाराज ने स्थापित किया। मेघा भील बहुत ही दुष्ट प्रवृत्ति का था। वह अंबली से विवाह करना चाहता था। अंबली ने उसे कई बार भरे समाज में दुत्कार दिया था। एक दिन जब अंबली जंगल में गायें चरा रही थी, तब मेघा ने उसे घेर लिया। वह उसका हठात् अपहरण करना चाहता था।

अंबली निहत्थी थी। मेघा का मुकाबला कैसे करती? यदि उसके पास खड्ग होता, तब तो मेघा जैसे पाँच भैंसासुरों को भी वह नहीं मानती। उसने भागना ही उचित समझा। वह सीधी माता के ओटले की ओर भागी। नवरात्रि के दिन थे। उसका पिता और कई भील माता के मन्दिर में होंगे, फिर वहाँ पर बलि खड्ग भी रखा होगा। एक बार खड्ग हाथ में आये, फिर तो इस भैंसासुर का वध किये बिना चैन नहीं लूँगी। आगे हिरणी की तरह कुलाँचे भरती अंबली, पीछे मदान्ध भैंसे जैसा झाड़ियाँ रौंदता-भागता अंबली का पीछा करता मेघा तांत्रिक तथा मेघा के पीछे दौड़ लगाती अंबली की गायें। अंबली एक साथ दो-दो सीढ़ियाँ लाँघकर माता के ओटले पर जा पहुँची। उसने पहुँचते ही माता का खड्ग अपने हाथ में उठा लिया। उसे माथे से छुआया, सीढ़ियों की ओर मुँह करके खड़ी हो गई। उसकी आँखों

से झालें फूट रही थीं। नथुनों से फुँफकार फूट रही थी। अंबली माता के भाव स्वरूप में आ गई थी। तभी मेघा भी ओटले पर आ धमका। उसके भी हाथ में खड्ग था। वह खड्ग उलारकर अंबली पर झपटा ही था कि अंबली ने एक छलाँग लगाकर अपना खड्ग चला दिया। खड्ग का वार अचूक था। मेघा का सिर भैंसासुरी के चरणों में जा गिरा। शरीर खड़ा का खड़ा रह गया। अंबली ने खड्ग फेंककर माता का त्रिशूल उठाया और मेघा की छाती में घुसेड़ दिया। मेघा की बिना सिर की लोथ ओटले पर धड़ाम से जा गिरी।

अंबली के भैंसासुरी जैसे विकराल रूप को देखकर सब घबरा गये। वहाँ उपस्थित लोग कुछ समझें, तब तक तो मेघा का वध हो चुका था। अंबली मेघा की छाती पर त्रिशूल रखे और एक पैर उसकी गर्दन पर रखे, विकराल रूप में खड़ी थी। थोड़ी ही देर में वह खुद ही शान्त हुई और त्रिशूल फेंककर माता के चरणों में गिर पड़ी। सब लोग उसके उठने की प्रतीक्षा कर रहे थे।

उसके पास जाने की किसी की हिम्मत नहीं हो रही थी। जब बहुत देर हो गई, तब उसे उठाया गया। अंबली का शरीर एक ओर लुढ़क गया। शक्ति-शक्ति में विलीन हो गई। शरीर पड़ा रह गया। तब से माता को 'अंबली माता' कहा जाने लगा। उसने मेघा तांत्रिक के आतंक से सबको मुक्ति दिलाई थी। माता का यश प्रताप बढ़ गया। सबने जाना कि अंबली भैंसासुरी का वरदान थी। दुष्ट दलन के बाद जोत-जोत में मिल गई। अंबली माता के रूप में माता की ख्याति सर्वत्र फैल गयी। आँतरी क्षेत्र तांत्रिकों का साधना केन्द्र रहा है। नाथों का प्रभाव भी वहाँ बहुत रहा। आँतरी में स्थित 'नाथ की मढ़ी' किसी समय तंत्र साधकों का क्षेत्र रहा है। लोकजीवन में कहा भी गया है-

*मंत्र धाम साँगाखेड़ा, तंत्र धाम आँतरी।*

*जंत्र धाम गोरजा, पूरी-पूरी खातरी ॥*

भील ठाकुरों की सत्ता का प्रभाव पूरे अरावली पठार पर था। चित्तौड़ की मेवाड़ी सीमा से झालावाड़ गागरोन की हाड़ोती सीमा तक तथा नीचे रेतम-चम्बल के क्षेत्र में शामगढ़-गरोठ का सौंधवाड़ा क्षेत्र एवं इधर प्रतापगढ़



व छोटी सादड़ी की सीमा तक भीलों के क्षत्रप थे। उनके देवस्थान सर्वत्र स्थापित हैं।

मालवा के इस दशपुर क्षेत्र में चन्द्रावतों का आगमन विक्रमी पन्द्रहवीं शताब्दी में हुआ। आँतरी के पश्चात् सेवाजी ने माण्डू के सुल्तान हुशंगशाह के सहयोग से देवा मोरी से आमद छीनकर अपना कब्जा स्थापित किया। उसके बाद रामाभील से युद्ध जीतकर रामपुरा पर अधिकार कर लिया। इस युद्ध में मिली पराजय के पश्चात् भील समुदाय का पराभव हो गया। चन्द्रावतों ने अपने राज्य का विस्तार किया। आँतरी को उन्होंने अपनी 'आद गादी' मानकर वहाँ अपनी कुलदेवी 'चुण्डावन' की स्थापना कर दी। अंबली माता के मूल स्थान को बिना तोड़े चन्द्रावतों ने वहीं अपनी कुलदेवी की वह मूर्ति, जो छाजूजी ने उन्हें चित्तौड़ निर्वासन के समय दी थी, उसे अंबली माता या भेंसासुरी की पूर्व स्थित माता के पास स्थापित कर दिया। इस प्रकार चन्द्रावतों ने भेंसरी की पूर्व मूर्ति के प्रति पूरा सम्मान व आस्था प्रकट की।

आज भी मन्दिर में स्थित दर्शन में दिखने वाली आदि-देवी भेंसासुरी के बगल में जो श्याम पत्थर की मूर्ति स्थित है, वही चन्द्रावतों की कुलदेवी चुण्डावन हैं। वैसे भील जन भी भेंसासुरी को ही पूजते हैं तथा चित्तौड़ के सिसौदिया कुल के चन्द्रावत भी भेंसासुरी को ही पूजते हैं। युद्ध एवं यात्रा में सदा इष्ट देवी-देवता की छोटी प्रतिमा, जो मूल इष्ट की प्रतिकृति होती है, को साथ रखा जाता था। उसी की पूजा होती थी। इसे चलित मूर्ति कहा जाता है। चन्द्रावतों के पास भी अपनी कुलदेवी की वैसी ही प्रतिमा थी। उसे उन्होंने आँतरी माता की मूल मूर्ति के निकट स्थापित कर दिया। इससे माता की मूल मूर्ति का सम्मान बना रहा। आदिवासी समाज की आस्था भी आहत नहीं हुई।

सेवाजी की दूसरी पीढ़ी में सज्जनसिंह जी ने पूर्व कच्चे मन्दिर का पुनर्निर्माण करवाया तथा उसे वर्तमान स्वरूप दिया। रेतम नदी के दोह को गहरा करवाकर वहाँ बावड़ी बनवायी। मन्दिर के निर्माण में पूर्व के कुछ खण्डहर मन्दिरों के पत्थरों का उपयोग किये जाने से कई लोग इसे जैन मन्दिर मान लेते हैं। पुराने किलों और मन्दिर में अनेक स्थानों पर इस प्रकार

पुराने मन्दिरों की और खण्डित मूर्तियों एवं शिलाखण्डों का उपयोग किया गया है। मन्दिर स्थल का निर्माण व विस्तार बाद में भी कई बार मरम्मत के लिए होता रहा होगा। मन्दिर निर्माण के पश्चात् माताजी की पूजा का अधिकार आदिवासी परिवारों से ले लिया गया। आँतरी माता के इन स्वरूपों के साथ-साथ एक कथा और भी है। उसका बखान नहीं किया गया, तो वर्णन अधूरा रह जायेगा।

### लोकमाता भवानी चारणी

रामपुरा राज्य के राज चारण की ज़ागीर थी - दुधलाई। दुधलाई अर्थात् दूध तलाई। आज जो खण्डहरनुमा महल दुधलाई में खड़ा है, उसी महल के दक्षिणी भाग में एक विशाल, किन्तु पक्की पालों-घाटों वाला एक तालाब था। उसके निर्मल पानी के कारण उसे दूध तलाव कहा जाता था। उसके नाम से ही गाँव का नाम दूधतलाई हुआ, जो कालान्तर में दुधलाई हो गया। यहाँ के चारण मेहारिया कुल के चारण थे।

राज चारण पूरणदान सिंह को आँतरी माता का इष्ट था। वह प्रतिदिन दुधलाई से आँतरी माता के दर्शन करने जाता था। एक दिन प्रभात में चुण्डावन माता ने उसे साक्षात् दर्शन दिये और वरदान माँगने को कहा। प्रभात में माता का स्वरूप कन्या का रहता है। पूरणदान सिंह ने जब माता का कन्या रूप देखा तो वह गद्गद् हो उठा, उसने माता से विनती की कि- 'माँ यदि आप मुझ पर प्रसन्न हैं, तो आप मेरी कन्या के रूप में मेरे घर में जन्म लें जिससे मैं आपको गोद में खिला सकूँ और मेरा वंश कुल धन्य हो जाये'। माँ ने मुस्कराकर पूरणदान सिंह की अर्ज स्वीकार की। समयानुसार पूरणदान सिंह के घर माता ने अवतार लिया। एक रूपवती कन्या पाकर चारण परिवार धन्य हो गया। सब कन्या को पूज्य भाव से जानने लगे। चारण तो वैसे भी माता के आराधक होते हैं। उनके परिवारों में अनेक देवियाँ प्रकट हुई हैं।

देशनोक की करणी माता भी चारणी ही थी, जो बाद में बीकानेर की कुलदेवी मान्य हुई। बरामा की कछेलन गोत्रज चन्द्रसखी भी चारणी ही थी,

जो प्रसिद्ध कृष्णभक्त हुई और कई पदों की रचना की। पूरणदान सिंह प्रति सोमवार कन्या को लेकर आँतरी माता के मन्दिर जाता था। उन दिनों रामपुरा गादी पर ठाकुर गोपालसिंह जी बिराजते थे। उनके पुत्र रतनसिंह अपने समय के वीरों में श्रेष्ठ थे। उन्हें आँतरी माता का इष्ट था। वे भी प्रतिदिन माता के दर्शन करने आते थे। एक दिन दोपहर तक वे ध्यानमग्न माँ के दरबार में बैठे रहे। अचानक शंखनाद हुआ, घण्टी-घड़ियाल, झालर बज उठे। कुँवर रतनसिंह का ध्यान भंग हुआ। कुँवर ने आँखें खोल दीं।

सिर उठाकर सामने देखा तो माँ चुण्डावन प्रत्यक्ष रूप से सामने खड़ी थीं। ऐसा रूप लावण्य कुँवर रतनसिंह ने पहले कभी नहीं देखा था। वे माता के रूप सौन्दर्य पर मोहित हो गये। इसी बीच माता ने कहा- 'कुँवर, मैं तुझपर प्रसन्न हूँ, वरदान माँगो।' कुँवर तो सुधबुध ही भूल बैठा था। माता का दोपहर वाला युवा स्वरूप उसे लुभा गया कि वह समस्त मर्यादाओं को भी भुला बैठा, बोला- 'मुझे तो आप जैसी सुन्दर स्त्री चाहिए।' माता ने कहा- 'मूर्ख है तू। मुझसे सुन्दर तो मैं ही हो सकती हूँ। तूने भी क्या वरदान माँगा? तू कहीं का राज माँगता तो मैं तुझे दे देती। यह माँग तेरे योग्य नहीं है। एक बार और विचार ले। फिर माँग।'।

रतनसिंह तो मोहपाश में बँधा था, उसने हठ नहीं छोड़ी, तब माँ ने उसे समझाया- 'चारण पूरणदान सिंह की कन्या मेरा अवतारी स्वरूप है, वह प्रति सोमवार मेरे दरबार में आती है। तू उससे यहीं भेंट करना, लेकिन उसकी इच्छा के विरुद्ध कोई आचरण मत करना।'

चारण कन्या भवानी की कुँवर रतनसिंह से भेंट हुई। वे प्रतिदिन मन्दिर में मिलने लगे। शस्त्र अभ्यास करने लगे। शिकार करने लगे। भवानी रतनसिंह से अनेक बार शस्त्र प्रतियोगिता कर चुकी थी। प्रत्येक बार जीत भवानी की ही होती थी। अश्वारोहण और शिकार में भी वह अग्रणी ही थी। धनुर्विद्या में तो वह अपने समय की श्रेष्ठ धनुर्धर थी। उसकी एक स्त्री सेना भी थी। भील युवतियों को उसने संगठित कर रखा था।

एक बार शेर के शिकार के लिये बाँधे गये अलग-अलग मचान पर रतनसिंह और भवानी बैठे थे। हाकेदारों ने शेर को घेरकर दोनों मचानों के

बीच पहुँचा दिया। रतनसिंह कुछ सोचे, तब तक भवानी अपने मचान से कूदी और पहले ही वार में शेर का सिर ठीक वैसे ही उड़ा दिया जैसे अंबली ने मेघा तांत्रिक का उड़ाया था।

भवानी तलवार नहीं खड्ग धारण करती थी। शेर का सिर उठाकर वह अपने घोड़े पर बैठी और हवा हो गई। रतनसिंह भी अपने घोड़े से उसके पीछे भागा। रतनसिंह ने भवानी को शेर का सिर उठाये सीढ़ियाँ चलते दूर से देखा, फिर मन्दिर में प्रवेश करते भी देखा। लेकिन जब वह मन्दिर में पहुँचा, तब उसने देखा कि शेर का सिर माता के चरणों में रखा है, खून से लथपथ खड्ग भी वहीं रखा है, किन्तु भवानी वहाँ नहीं थी। रतनसिंह औचक हो गया। बाहर निकलकर देखा तो वह परिक्रमा से निकलती हुई मुस्करा रही थी। ऐसी थी वह चारणी भवानी। वास्तव में भवानी-भवानी ही थी।

बाद में गादी के विवाद के कारण रतनसिंह औरंगजेब की शरण में चला गया और इस्लाम धर्म स्वीकार कर लिया, तब भवानी रतनसिंह की विरोधी हो गयी। कई बार दोनों में द्वन्द्व हुआ। अन्तिम बार राव रतनसिंह उर्फ इस्लाम खान ने भवानी को दुधलाई के महल में घेर लिया। तब भी दोनों में खड्ग युद्ध हुआ, किन्तु भवानी उस समय एक वस्त्र धारण किये भगवती की आराधना कर रही थी। द्वन्द्व युद्ध में वस्त्र छूट गया, तब भवानी लगभग नग्न अवस्था में झरोखे से तालाब में कूदकर रतनसिंह के घोड़े पर बैठकर भाग निकली। बाहर अँधेरा था, अँधेरे ने उसकी लाज ढँक ली। उस घटना के बाद वह कभी नहीं दिखी। राव रतन भी घायल हो गया था। बाद में राव रतन युद्ध में मारा गया। वर्तमान महागढ़ में ठा. अमरसिंह जी के कुँए की पड़ैती पर उसका दाह संस्कार किया गया। तब वहाँ जंगल था। दाह संस्कार में उपस्थित लोगों ने देखा कि भवानी पूरे सोलह श्रृंगार किये घोड़े पर सवार वहाँ पहुँची और प्रज्वलित चिता में प्रवेश कर गई। लोगों ने यह भी देखा कि चिता में से एक ज्योति बाहर निकली और आँतरी की ओर बढ़ गयी। कहते हैं- वह जोत माता की मूरत में समा गयी। फिर एक बार जोत में जोत मिल गयी।

आँतरी माता के तीनों अवतार आज भी लोकजीवन में श्रद्धा के साथ बखाने जाते हैं। पूरे जनपद में नहीं राजस्थान के दूरस्थ अंचलों में भी दर्शनार्थी माता के दर्शन करने आते हैं। मन्नत मानते हैं, मनौती चढ़ाते हैं। मनौती में बकरे की बलि प्रधान है। माता के समक्ष प्रतिवर्ष कुछ लोग अपनी जिह्वा तक चढ़ा देते हैं। सात दिन में जिह्वा वापस जस की तस हो जाती है। मकर संक्रान्ति से लगाकर पन्द्रह दिनों का विशाल मेला यहाँ प्रतिवर्ष लगता है।

आँतरी माता का यह तीर्थ अति प्राचीन है। यहाँ जो भी दुखिया अर्ज लाता है, माता उसके दोरम-सोरम निवारण करती है, जो जिस रीति से माता भवानी को पूजता है, माता उसे स्वीकारती हैं। यह लोकमाताओं का 'आदि धाम' लोक आस्था का प्रमुख तीर्थ है।

### लोकमाता बुधली

मनासा तहसील का कंजाड़ा पठार। यह क्षेत्र किसी समय हूण बहुल क्षेत्र रहा, समानान्तर में भील बहुल भी। पूरा अरावली पठार भील सत्ता का केन्द्र रहा है। कंजाड़ा के निकट ही वराह मन्दिर है। इस गाँव को 'वाराजी' कहा जाता है।

वराह मन्दिर के कारण ही इसे 'वाराजी' कहा जाता है। भारत में उपलब्ध वराह प्रतिमाओं में वराह की यह प्रतिमा विशेषगण्य प्रतिमा है। यह प्रतिमा कब और किसने 'वाराजी' में स्थापित की, इसका कोई प्रामाणिक उल्लेख नहीं मिलता। इतना कहा जा सकता है कि इसे सम्भवतः परमार-काल में यहाँ स्थापित किया गया हो।

इसकी पूजा आदिकाल से भील समाज ही करता रहा है। यह गाँव किसी समय भील बाघा की सत्ता में था। वह पठार के इक्कीस गाँवों का मुखिया था। बाघा अपने समय का वीर और साहसी योद्धा था। वह स्वयं वाराजी (वराहजी) की पूजा करता था। वर्तमान वाराजी के मन्दिर के पूर्व में जो नदी बहती है, इसके तट पर वाराजी मन्दिर के निकट एक चबूतरा माताजी का भी है। इसे भेंसासुरी माता कहा जाता है।

पूर्व समय में यह शिलापट्ट पर उकेरी गई महिषमर्दिनी की मूर्ति थी। वह मूर्ति अब नहीं है। वहाँ पिण्डी स्थापित है। यह माता भील आस्था की प्रतीक है। आज इस माता की पूजा प्रतिदिन न होकर व्रत-त्यौहार पर होती है। वाराजी मन्दिर की पूजा भी अब बैरागी परिवार करता है।

बाघा भील की एक कन्या थी। उसका नाम बुधली था। बुधली अपने समय की सबसे सुन्दर और साहसी कन्या थी। उसकी सुन्दरता और वीरता का बखान पूरे अरावली पठार पर था। उसका मुख्य हथियार 'दाव' या 'डाव' था। दाव एक प्रकार का खड्ग होता है, जो महिषमर्दिनी का मुख्य हथियार (खड्ग) माना जाता है। हथियार चलाना उसे बचपन में ही उसकी माँ ने और फिर उसके पिता बाघा ने सिखाया था।

तीर-कामठा चलाने में भी वह प्रवीण थी। अपना दाव और तीर-कामठा लेकर वह अपनी अन्य साथियों के साथ दिन भर में पूरा पठार वन घूम आती थी। शिकार उसके सामने आकर बच नहीं सकता था। बाघ को तो वह सम्मुख होकर मारती थी। सखियाँ उसे वीजरी कहती थीं।

वाराजी के निकट एक ठिकाना था दंतलाई। वहाँ का राजपूत सरदार भी अपने समय का माना हुआ वीर योद्धा था। पठार पर उसकी ज़ागीर एक सम्पन्न ज़ागीर मानी जाती थी। उसके महल बहुत ही सुन्दर और मजबूत थे। दंतलाई सरदार ने बुधली की सुन्दरता का बखान सुना तो उसे देखने का मोह वह छोड़ नहीं सका। भले ही बुधली का रंग साँवला था, किन्तु था साँचे ढला। सुडौल और कसीला। कन्धे पर तीर-कामठा, कमर में कटार और हाथ में डाव।

बुधली का ऐसा रूप देखकर दंतलाई सरदार ने बुधली से विवाह करने का निर्णय कर लिया। उसे यह भी पता था कि उसका पिता बाघा भीलों का मुखिया है। बिना उसकी मर्जी के बुधली से विवाह कर पाना कठिन था। ज़ोर-जबरदस्ती से तो पूरा भील समुदाय विद्रोह कर देगा। सरदार ने अपने कामदार द्वारा बाघा के पास अपना प्रस्ताव भेजा।

बाघा ने कहा कि अपने विवाह का निर्णय तो स्वयं बुधली ही लेगी। यही हमारे समाज की परम्परा है। बाघा जानता था कि ठिकानेदार को पत्नी

नहीं रखल चाहिए। उसे बुधली पर भी भरोसा था कि वह कभी भी ठिकानेदार के प्रस्ताव को नहीं मानेगी। यही हुआ। बुधली ने साफ-साफ कह दिया कि 'मैं तो जब भी विवाह करूँगी, भील युवक से ही करूँगी'।

मैं अपना साथी तलाश रही हूँ, जिस दिन मिल जायेगा, बता दूँगी। बुधली के उत्तर से बाघा का मन सन्तुष्ट हो गया, मगर उसके मन में भय भी बैठ गया। उसने बुधली को तो सावधान कर दिया। स्वयं भी सचेत रहने लगा।

ठिकानेदार तो तय कर चुका कि वह बुधली को अपने महल में लाकर ही रहेगा, चाहे जो भी हो जाये। एक दिन जब वह अपने दस-बारह साथियों सहित शिकार पर था, तब उसने बुधली को देख लिया। वह किसी शिकार पर घात लगाये बैठी थी। उस दिन वह अकेली ही थी। दंतलाई ठिकानेदार को यह मौका ठीक लगा। उसने अपने साथियों सहित बुधली को घेर लिया।

अरावली का बियाबान जंगल, अकेली बुधली, उसके चारों ओर दस घुड़सवार। ठिकानेदार ने कहा- 'बुधली, तुम चुपचाप मेरे घोड़े पर बैठ जाओ, वरना हम तुम्हें जबदस्ती उठवा लेंगे'। ठिकानेदार की ऐसी चुनौती सुनकर बुधली क्रोध से धधक उठी। जंगल में बुधली को घेरना एक बाघिन को घेरना था। उसने अपना तीर-कामठा धरती पर रखा और दाव सँभालकर सचेत हो गयी।

बुधली ने बिना कोई उत्तर दिये और बिना ठाकुर के आदमियों के वार की प्रतीक्षा किये, अपने दाव का पहला वार दंतलाई ठाकुर पर कर दिया। ठाकुर को तो इस हमले की कल्पना तक नहीं थी। पहला ही वार ऐसा करारा पड़ा कि ठाकुर घायल होकर घोड़े से नीचे जा गिरा। उसके साथी सँभलें-सँभलें तब तक तो बाघिन बनी बुधली का दाव चक्री बन चुका था।

ठाकुर को घायल होकर नीचे गिरा देखकर उसके साथी घोड़ों से कूद पड़े, लेकिन बुधली के दाव ने उन्हें ठाकुर तक पहुँचने से पहले ही घायल कर दिया। अकेली बुधली, दस सरदार, बुधली तो कालिका बन

चुकी थी। थोड़ी ही देर में सभी सरदार धरती पर आ रहे। किसी का हाथ गायब था तो किसी का सिर। किसी का कन्धा फट गया था तो किसी का सीना। अपने साथियों की दुर्दशा देखकर दंतलाई ठाकुर घोड़े पर बैठकर भाग गया।

घायल बुधली जैसे-तैसे वाराजी पहुँची। बाघा को जैसे ही दंतलाई ठाकुर के दुष्कृत्य का समाचार बुधली ने दिया, उसकी आँखें अँगारा बन गयीं। ठाकुर को सँभलने का मौका वह नहीं देना चाहता था। उसने ढोल बजवा दिया।

देखते ही देखते चारों ओर से हथियार बन्द भीलों के टोले वाराजी आ पहुँचे। भीलों ने दंतलाई पर हमला बोल दिया। गढ़ी में तो अधिक सैनिक थे नहीं। मौका पड़ने पर इलाके के भील ही ज़ागीरदार के सैनिक बनकर युद्ध पर जाते थे। गढ़ी के चारों ओर दूर-दूर तक भीलों का सैलाब उमड़ रहा था। देखते-देखते गढ़ी की दीवारें तोड़ी जाने लगीं। दरवाज़ा तोड़ने में भीलों ने पूरी ताकत लगा दी। गढ़ी के भीतर से किसी प्रकार के प्रतिकार के संकेत नहीं मिल रहे थे। ठाकुर घायल था, थोड़े-बहुत सैनिक और सरदार अपनी जान लेकर भीतर दुबके थे। जैसे-जैसे गढ़ी की दीवारें टूटने लगीं, गढ़ी के भीतर हलचल बढ़ने लगी। भील भीतर घुस पड़े। बुधली दीवार फाँदकर गढ़ी के भीतर कूद पड़ी। उसके हाथ में दाव था। जो भी उसके सामने पड़ जाता था, वह उसके दाव का शिकार बनता जा रहा था। वह भीतर महलों की ओर बढ़ती गई। उसका शिकार दंतलाई ठिकानेदार भीतर महलों में ही था। बुधली ने ठाकुर को ढूँढ़ लिया।

ठाकुर भले ही घायल था, मगर था तो वह भी वीर। कुछ सैनिक उसकी सुरक्षा के लिए उसके साथ थे। महलों के जनानखाने की रक्षा करना आवश्यक था। सब वहीं तैनात थे। किसी को कल्पना भी नहीं थी कि घायल बुधली मार-काट करती महलों तक आ पहुँचेगी। गढ़ी कोई अधिक बड़ी तो थी नहीं। फिर बाघिन बनी बुधली तो मरने-मारने पर उतारू थी। भीलनी की सबसे बड़ी सम्पत्ति उसकी आबरू होती है। भील की खेती छिन जाये, घर छिन जाये, रोटी छिन जाये लेकिन तब तक तो वह चिन्ता

नहीं करेगा। भील अभावों में जीने के आदी होते हैं। आबरू पर यदि आँच आने लगे तो फिर वह मरने-मारने को तैयार हो जाते हैं।

दंतलाई ठाकुर या उसके रक्षक सैनिक सँभलें-सँभलें तक तो बुधली ने लपककर ठाकुर पर दाव का वार कर दिया। एक झटका और दो बटका। ठाकुर का सिर धड़ से अलग जा गिरा। उसने सिर को झपटकर उठाया और वापस भागी। तब तक गढ़ी को धराशायी किया जा चुका था। महल को भी खण्डित कर दिया गया था। कोई नहीं था, जो उत्तेजित भीलों को रोक पाता। सब मारे जा चुके थे।

बुधली ज़ागीरदार का सिर लेकर वाराजी के मन्दिर पहुँची। उसने सिर भगवान वराह के चरणों में रख दिया और माथा टेक दिया। तब तक कुछ लोग बुधली के पीछे-पीछे वाराजी तक पहुँच गये। उन्होंने वहाँ का दृश्य देखा। बुधली को उठाना चाहा, लेकिन वह तो मर चुकी थी। उसने अपनी बेईज्जती करने की कोशिश करने वाले ठाकुर को दण्ड दे दिया था।

सबने बुधली की देह वहाँ से उठाई और मन्दिर से थोड़ी दूरी पर उसका दाह संस्कार कर दिया। वही बुधली वाराजी की लोकमाता कहलायी। भेंसासुरी के रूप में पूज्य हुई। ओटला बनाकर मूर्ति स्थापित की गयी। बुधली माता का मन्दिर पहले वर्तमान चारभुजा मन्दिर स्थल पर था। चारभुजा भगवान को वहाँ पधराकर माता स्वयं जंगल में जा विराजीं और 'मार की माता' या 'मालकी माता' कहलायीं। दंतलाई की गढ़ी नष्ट हो गई। अब तो उसके खण्डहर तक नष्ट होने आये हैं। बुधली भी भेंसासुरी के रूप में पूज्य हो गई। वाराजी का मन्दिर इस पूरी घटना की साक्षी में आज भी सुरक्षित है। वस्तुतः बुधली तो अपने कुलदेवता वराहजी में समाहित हो गई थी। वराह की पूजा अर्थात् बुधली की पूजा। सब कुछ बीत गया, शेष रह गयी यह लोककथा। यह भी धीरे-धीरे भूल-भुलैयाँ में खो रही है। इस कथा ने सदा भील युवतियों को अपनी आबरू की रक्षा के लिए सचेत बनाये रखा। आज भी वह सबके लिए प्रेरक प्रसंग के रूप में जीवित है।

## रूपणमाता

रूपणमाता समूचे जनपद की आराध्य देवी हैं। माता का मूल पाट-स्थल कंजार्दा पठार पर तेजगढ़ है। अरावली के तल में एक स्थानीय नदी के तट पर रूपणमाता का मन्दिर स्थित है। इसे तेजगढ़ की 'झर की माता' भी कहा जाता है। झर का मतलब है झरना, अर्थात् पानी की झरण। यहाँ बारह महीने पानी बहता रहता है। आम के घने ऊँचे-ऊँचे वृक्षों का झुरमुट दर्शनार्थियों को शीतल छाया प्रदान करता है। माताजी के लिए एक कथा लोकचर्चित है-

एक गूजर था, उसका नाम था नगजी। नगजी की दो पत्नियाँ थीं। बड़ी का नाम गुंजा और दूसरी छोटी का नाम था जमसी। जमसी थी राजा की बेटी। नगजी को विवशतावश राजा का हुक्म मानकर जमसी (जस कुँवर) से विवाह करना पड़ा था। नगजी के इस विवाह पर गुंजा गूजरन बहुत रोई। नगजी अपना परिवार लेकर अरावती के कंजार्दा पठार पर आ बसा। यहाँ राजा ने उसे ज़ागीर दे दी। तब यह इलाका मेवाड़ का भाग था।

गुंजा की एक बेटी थी रूपा। सब उसे रूपण कहते थे। जमसी के भी एक बेटी थी। उसका नाम था सूगली। सूगली का अर्थ होता है घिनौनी। रूपा जितनी चानण थी, सूगली उतनी ही कलौटी। गंदी तो वह हद दर्जे की थी।

सम्भवतः इसी कारण उसका नाम सूगली पड़ गया हो। ईर्ष्या तो उसका स्थायी गुण था। माँ-बेटी दोनों मिलकर गुंजा और रूपा के प्रति घृणा करती थीं। इसके विपरीत गुंजा और रूपा इन माँ-बेटियों के साथ अच्छा व्यवहार करती थीं। नगजी प्रभात में ही अपनी गायें लेकर चराने चल देता। गुंजा दो पराणी दिन चढ़ते-चढ़ते रोटियों का टोपला लेकर चल पड़ती और दिन भर नगजी के साथ रहकर गायें चरातीं।

जमसी की ईर्ष्या बढ़ती गयी। एक दिन उसने अपने आदमियों द्वारा नगजी और गुंजा दोनों को मरवा डाला। सारी ज़ागीर की वह मालिक बन बैठी और अनैतिक जीवन बिताने लगी। दोनों माँ-बेटी मिलकर रूपा को खूब सताने लगीं। रूपा ने करौंदों की झाड़ी के पीछे दुबके-दुबके देखा था

कि किस प्रकार उसके माँ-बाप को जालिमों ने काटकर नदी में फेंक दिया था। उसने जमसी को भी वहाँ देखा था। सब देख-समझकर भी वह विवश थी।

रूपा को रह-रहकर माँ-बाप की याद आती। वह दिन-रात रोती रहती और काम करती रहती। उम्र बढ़ी, रूपा पन्द्रह साल की युवती बन गयी। अपनी माँ गुंजा जैसी सुन्दर। सूगली भी जवान हुई, किन्तु जैसा नाम वैसा रूपा। जैसा मन वैसी सूरत। रूपा गायेँ चरानी जाती। गायेँ में एक कपिला गाय भी थी। कपिला सदा रूपा के साथ रहती। रूपा कपिला का दूध दोहकर पीती। उसका रूप निखर उठता। वन के फूलों से वह नित श्रृंगार करती। घर लौटने से पहले वह सारा श्रृंगार उतार देती।

एक दिन वह फूलों से बनी-ठनी करौंदे की झाड़ी के नीचे सो रही थी। कपिला उसके पास बैठी, उसकी रखवाली कर रही थी, तभी घोड़े पर बैठकर एक राजकुमार आया। उसने उस रूपवती रूपा को देखा, तो मोहित हो गया। घोड़े की टाप सुनकर रूपा की आँख खुल गयी और वह उर्नीदी-सी उठ बैठी। उसने कनखियों से राजकुमार को देखा। यही तो उसके सपनों का राजकुमार था। उसके बाद तो रोज वह अपने राजकुमार को देखती थी। राजकुमार आता और थोड़ी देर में लौट जाता।

एक दिन जमसी ने राजकुमार और रूपा का आँख-मटक्का देख लिया, उसके तन-बदन में आग लग गई। जब रूपा गायेँ लेकर घर पहुँची, तो उसकी जमकर पिटाई हुई। उस दिन से वह घर में क्रैद कर दी गई। अब सूगली बन-ठनकर गायेँ चराने जाने लगी। राजकुमार ने जंगल में आना बन्द कर दिया।

राजकुमार ने गणगौर पर रूपा के गाँव के थोड़ी दूरी पर गौरजा के मन्दिर पर मेला लगवाया। दूर-दूर से 'परणी-कुँवारी' गणगौर पूजने आने लगीं। राजकुमार की आँखें रूपा को ढूँढ़ रही थीं। रूपा तो घर में क्रैद थी। वह कैसे पहुँचती मेले में? सूगली प्रतिदिन मेले में जाती, मगर राजकुमार को वह नहीं लुभा पाई। एक दिन कपिला रूपा के दरवाजे पर पहुँची। दरवाजा बाहर से बन्द था। सूगली और जमसी मेले में गई थीं। कपिला ने

दरवाजा तोड़ दिया। कपिला को देखकर रूपा उसके गले से लिपटकर रो उठी। उसने सिसकियों के बीच सुना, मानो उसकी माँ गुंजा कह रही हो, तू फौरन तैयार हो जा, मैं लेकर जाऊँगी तुझे गणगौर मेले में। रूपा चौंक पड़ी। वहाँ तो कोई नहीं था। उसने समझ लिया कि कपिला ही उसकी माँ है।

रूपा ने कपिला का दूध दुहकर पी लिया। उसकी शक्ति लौट आई। रूप निखर गया। तभी आकाश से एक अप्सरा उतरी। अप्सरा ने रूपा का अद्भुत सिंगार किया। सोलह सिंगारों पर फूलों के वेणी गजरे। अप्सरा ने रूपा से कहा- 'जा रूपा, मेले में जा। वहाँ तेरा सपनों का राजकुमार तेरी प्रतीक्षा कर रहा है।' 'लेकिन मैं वहाँ जाऊँ कैसे? सब तो सवारियों पर सवार होकर गये हैं।'

'चिन्ता मत कर, रूपा! बाहर तेरा पिता सिंह रूप में खड़ा है। तू डरना मत। जा और जाकर बैठ जा, अपने पिता की पीठ पर।' रूपा भागकर बाहर आई। सचमुच वहाँ शेर खड़ा था। रूपा बैठ गई अपने पिता की पीठ पर। पलक झपकते रूपा पहुँच गई गणगौर मेले में। राजकुमार ने रूपा को देखा। रूपा ने राजकुमार को देखा। दोनों मिल गये। तभी जमसी ने सारा दृश्य देखा। उसकी आँखों से झाल फूट पड़ी। रूपा डरकर भागी। बाहर सिंह खड़ा था। वह सिंह की पीठ पर बैठ गई। सिंह ने पलक झपकते ही उसे घर पहुँचा दिया। भागमभाग में रूपा की एक पायल मेले में गिर पड़ी। राजकुमार ने उसे उठा लिया। वीणा जैसी मधुर बजती थी वह हीरों जड़ी पायल। रूपा ने घर पहुँचते ही अपना सिंगार पोंछ डाला। फटे पुराने कपड़े पहन लिये। सभी जेवर कपड़े उसे कुट्टड़ में भरी घास में छुपा दिये। जब जमसी और सूगली वापस घर पहुँची, तब तक तो रूपा पहले जैसी रोनी सूरत बनाकर बैठी उन्हें दिख पड़ी। उन्हें कुछ भी समझ नहीं पड़ा। दरवाजा बाहर से बन्द था।

सबेरे ढिंढोरा पिटा- जिसके पास रूपा सुन्दरी की पायल की जोड़ होगी, उसी से राजकुमार विवाह करेगा। सबने पायलें दिखाई, किसी की पायल की जोड़ रूपा सुन्दरी की पायल से नहीं मिली। खोजिये निराश हो गये। सूगली ने भी अपनी पायल दिखाई, वह भी नहीं मिली। खोजिये लौट



चले, तभी उन्होंने पायल की वीणा जैसी आवाज़ सुनी। खोजिये वापस पलटे, उन्होंने देखा- किवाड़ के पीछे से एक सुन्दर हाथ पायल बजा रहा था।

उन्होंने पायल को रूपा सुन्दरी की पायल से मिलाकर देखा, जोड़ मिल गयी, झंकार भी मिल गयी। उन्होंने रूपा को बाहर बुलाया, उसे रथ पर बैठाकर राजमहल ले गये। राजकुमार और रूपा का मिलन हुआ। दोनों का विवाह अगली बसन्तपंचमी पर होना निश्चित हो गया।

विवाह के उपरान्त राजकुमार रूपा को महलों में लिवा ले गया। रूपण अब बहुत सुखी व प्रसन्न थी। वह कभी-कभी रथ पर बैठकर वन में जाती। वहाँ अपनी माँ कपिला से मिलती। उसका पिता शेर भी उससे मिलता था। रूपा बहुत दयालु थी। उसने अपनी सौतेली माता व बहन से ईर्ष्या भाव अथवा बैर भाव नहीं रखा। वह कभी-कभी उनसे मिलने भी जाती थी। उसने उनकी कई प्रकार से मदद की थी। रूपा के व्यवहार से उसकी सौतेली माँ व बहन का व्यवहार भी उसके प्रति बदल गया। बैर भाव और ईर्ष्या भाव समाप्त होने से उनके रहन-सहन, व्यवहार यहाँ तक कि सूरत-शकल में भी परिवर्तन हो गया। सूगली का सौन्दर्य भी निखरने लगा। रूपा ने उसे अपने पास महल में रख लिया और सोचा कि किसी योग्य वर से उसका विवाह करायेगी।

महलों में रहने के कारण सूगली का सम्पर्क राजकुमार से भी होने लगा। रूपा तो भोली थी। उसने कभी अपने राजकुमार के प्रति अविश्वास नहीं किया, किन्तु सतत् सम्पर्क के कारण धीरे-धीरे राजकुमार सुगली के मोहजाल में फँस गया। रूपा को जब इस अनैतिक सम्पर्क का पता चला, तब उसे राजकुमार से विरक्ति हो गयी। वह महल से भागी। राजकुमार उसके पीछे भागा। रूपा रुक जा... रूपा रुक जा... पुकारता राजकुमार पीछे और रूपा आगे। रूपा नहीं रुकी। वह नदी में समा गयी। राजकुमार पछताकर रह गया।

यह जो रूपा नदी बह रही है, रूपा के कारण ही उसका नाम रूपा हुआ। रूपा नदी गुंजाली नदी में मिल गयी। गुंजाली अर्थात् गुंजा नदी। बेटी

माँ में समा गयी। वहीं रूपा गुंजाली नदी से निकलकर देवी बन गयी। गुंजाली तो उसकी माँ थी। उसने उसे डुबाया नहीं, तिराया।

देवी रूप में वह रूपण माता कहलायी। कपिला और शेर सदा उसके साथ रहे। वह एक खोह में रहने लगी। वैसे की वैसे सजी-सँवरी। जहाँ रूपण माता का मुकाम था, वह स्थान अम्बा खोह कहलाया। आज वह स्थान 'अमखो' कहलाता है। बाद में रूपणमाता अम्बाखोह से तेजगढ़ के झर में मुकामी हुई। आज वही झर 'रूपणमाता का झर' कहलाती है।

झर से जोत लाकर भाटखेड़ी में रूपणमाता की स्थापना की गयी। झर में जाना सर्व साधारण के लिए कठिन था। यहाँ सब लोग आराम से पहुँच सकते हैं। प्रारम्भ में गूजर यहाँ की पूजा करते थे, फिर आदिवासी करने लगे। उनके बाद देवरे की पूजा छीपे करने लगे। झर में आदिवासी करते रहे। समय बदला और माता की सेवा तम्बोली करने लगे। वर्तमान में गायरी समाज के श्री प्रभुलाल धनगर माता की सेवा करते हैं। उन्हें माता का भाव आता है। रविवार को चौकी होती हैं। लकवे के मरीजों से लेकर कई असाध्य लोगों के दुखियारे रूपणमाता के देवरे पर हाजिर होते हैं। माँ सबकी अर्जी सुनती हैं, व रोग-शोक मिटाती हैं।

प्रत्येक नवरात्रि पर यहाँ हवन होता है। इन दिनों चौकी नहीं होती। इस देवरे पर प्रत्यक्ष बलि नहीं होती। नाम से दूर बलि होती है। खास पाट स्थल झर में बलि होती है। खासकर वैशाख में वहाँ लगभग प्रतिदिन बलि होती है। नवरात्रों में भी होती है। रूपणमाता का यह देवरा व पाट झर का मन्दिर जागृत शक्तिपीठ है। प्रतिवर्ष हज़ारों दुखियारों की मुरादें माँ पूरती हैं। भूत-प्रेत आदि बाधाएँ भी माँ की कृपा से दूर हो जाती हैं।

### आई माता

आई माता का मुख्य मन्दिर बिलाड़ा राजस्थान में है। ये माण्डव के अधीन एक ज़ागीरदार बीकाजी डाम्भी की रूपवती कन्या थी। बीकाजी अम्बकापुर के ज़ागीरदार थे। 'आई' के सौन्दर्य की चर्चा तत्कालीन माण्डव सुल्तान ने सुनी, तो उसने अपने फौज़दार को अम्बकापुर भेजकर बीकाजी

को कहलवाया कि- वे अपनी बेटी की शादी सुल्तान से कर दें। सुल्तान का प्रस्ताव सुनते ही बीकाजी और उनके भाई-बेटों ने तलवारें खींच लीं। अम्बकापुर जागीर माण्डव के अधीन थी। सुल्तान ने सोचा डाम्भी बीका फौरन हाँ बोल देगा। राजपूतों ने मरना मंजूर कर लिया, लेकिन डोला देना मंजूर नहीं किया। फौजदार लौट गया। लेकिन अगले ही दिन उसने बहुत बड़ी फौज लेकर अम्बकापुर को घेर लिया। मरने-मारने को तैयार खड़े राजपूतों को देखकर 'आई' ने कहलवाया कि- मैं अपने भाई-भतीजों और अन्य राजपूतों की हत्या नहीं होने दूँगी। मुझ पर और मेरी इष्टमाता गौरी पर आप भरोसा रखें। सुल्तान मुझे छू तो क्या नजरों से देख भी नहीं सकेगा। आप डोला देने की हाँ कर लो।

'आईजी' के बार-बार समझाने पर बीकाजी मान गये। डोला रवाना कर दिया गया। माण्डव हरम में आईजी का डोला पहुँचाया गया। जब सुल्तान 'आई' से मिलने हरम (रनिवास) में गये, तब उन्हें सेज पर एक बाघिन बैठी दिखी। सुल्तान उलटे पैर वापस बाहर भागा। उसने दासियों-गोलियों से पूछा- 'अन्दर बाघिन कैसे पहुँची?' तब सबने कहा- 'हुजूर! हम तो आपकी होने वाले बेगम 'आई' को वहाँ बिठाकर आई थीं।' गोलियों ने भीतर जाकर देखा, उन्हें आई ही दिखाई दी। गोलियों के कहने पर सुल्तान फिर भीतर गया, उसे फिर बाघिन दिखी। वह समझ गया, उसने फौरन दरवाजे पर जाकर पुकार लगाई।

'मुझे अपनी गलती का अहसास हो गया है, आप मुझे माफ कर दीजिये। आपका डोला जैसा आया था, वैसा बाईजत वापस अम्बकापुर भेज दिया जायेगा।' सुल्तान वापस लौट आया। आई का डोला उसी समय वापस अम्बकापुर रवाना किया गया। सुल्तान ने आई को बेगम बनाने के बजाय बेटी बना लिया। बहुत से उपहारों के साथ ससम्मान आई का डोला अम्बकापुर भेज दिया गया। सुल्तान खुद अम्बकापुर गया।

आई ने विवाह नहीं किया। वे अपने जीवनकाल में ही माता रूप में पूज्य हुई। उन्हें आईमाता कहा जाने लगा। वे वहाँ से बिलाड़े आ गईं। इनकी मृत्यु के बाद उनका बिलाड़ा में मन्दिर बनवाया गया। मालवा और राजस्थान

का सीरवी (सालवी) समाज उन्हें अपनी इष्टदेवी मानता है। जोधपुर, जयपुर और बीकानेर के राजघराने आईमाता को अपनी आस्था देवी के रूप में पूजते हैं। इनको मानने वाली सीरवी (सालवी) जाति के प्रमुख हैं। यह भी मान्यता है कि वे रामापीर की शिष्या थीं। संवत् 1561 में उन्होंने एक 'साल' बनवायी, उसमें गादी स्थापित की तथा उस पर घी का दीपक प्रज्वलित कर दिया। बाद में उसी गादी पर विराजकर साल का दरवाजा बन्द करवा दिया। आठवें दिन दरवाजा खोला गया। माता जोत में समा गई थी। वे सदेह देवलोक पधार गईं। आईजी की गादी 'बडेर' कहलायी। इनको मानने वाले मेवाड़, मारवाड़ और मालवा में बसते हैं। सीरवीयों के अलावा अन्य कई जातियाँ इन्हें अपनी आस्था की देवी मानकर पूजती हैं।

सन् 1531 ई. में रामपुरा पर अचलसिंह चन्द्रावत का राज्य था। उनके अंगरक्षकों में आईमाता का भतीजा माधोराय किसी कारणवश रुष्ट होकर अपनी जागीर छोड़कर रामपुरा आ गया था। वह गादी का एकमात्र वारिस था। उसे मनाकर वापस बिलाड़ा लाने के लिए आईमाता रामपुरा आई।

बीच में वर्तमान अल्हेड़ गाँव में उन्होंने मुकाम दिया। उनकी मृत्यु के पश्चात् बिलाड़ा से 'जोत' लाकर अल्हेड़ में उनकी गादी स्थापित की गयी। अल्हेड़ गाँव रामपुरा राज्य का गाँव था। रामपुरा चन्द्रावत ने यह गाँव काँचली में बिलाड़ा की चन्द्रावतन रानी को भेंट किया और आईमाता का मन्दिर बनवाया। गादी पर उनकी तस्वीर रखी हुई है। जोत जलाने से आज तक घी का अखण्ड दीपक वहाँ जलता है। यह जोत निरन्तर जलती रहती है। भादवा बीज के दिन यहाँ माता की विशेष पूजा होती है। दूर-दूर से दर्शनार्थी आकर अपनी मन्त्रों उतारते हैं। दीपक में ऊपर चाँदी का छत्र लगा हुआ है। उस पर दीपक की लौ का धूम कसर कहलाता है। दीपक गुल का धुआँ काला न होकर केसर रंग का होता है। जब यह केसर उतारा जाता है, आस्थावान लोग माँ की जोत का केसर ले जाते हैं और काजल बनाकर आँखों में लगाते हैं।

यहाँ पर चढ़ाये गये घी का अंश प्रसाद घर में दूध-दही-घी के भण्डार बढ़ाने के लिए घर ले जाते हैं। पशु रक्षा तथा बाल रक्षा की यह



ममतामयी माँ समूचे क्षेत्र की आस्था देवी हैं। आईमाता दूध-पूत और अन्न भण्डार की देवी हैं। इनका डोरा पहनकर इनके सेवक अपने चरित्र और खानपान को सात्त्विक रखने का प्रयत्न करते हैं। यह माता मनोवांछित फल प्रदान करती है। आईमाता का यह जागृत शक्तिपीठ मालवा के लिए महत्वपूर्ण शक्तिपीठ है। यहाँ दोनों नवरात्रि में विशेष पूजा होती है।

### नारसी माता

यह गाँव रामपुरा से अठारह किलोमीटर दूरी पर रामपुरा-भानपुरा मार्ग पर स्थित है। किसी समय यह गाँव भील सत्ता का प्रमुख केन्द्र था। आज लगभग एक हजार की जनसंख्या वाला यह गाँव कभी बहुत बड़ा नगर रहा। चम्बल नदी की सहायक नदी फल्कू के किनारे बसा यह नगर लोक किंवदन्ती के आधार पर बूजरिया भील का बसाया हुआ है। उसी के नाम पर इसका नाम बूज रखा गया। हिंगलाज की भाँति इसे भी एक भील वीर नायक ने बसाया था। कुछ लोगों का यह भी कहना है कि कटारया और बूजरिया दोनों भाई थे। कटारया ने अपनी इष्टदेवी हिंगलाज के नाम पर हींगल बसाया, जो आगे जाकर हिंगलाजगढ़ के नाम से विख्यात हुआ और बूजरिया ने अपने नाम पर बूज बसाया। बूजरिया की कुलदेवी (इष्टदेवी) भैंसासरी, जो बाद में नारसी माता कहलाने लगी। इस माता की आठ भुजाएँ हैं, जो खण्डित हो गयी हैं। यह माता गढ़ की माता मानी जाती है।

फल्कू नदी वर्तमान खण्डहर महल के पश्चिम में बह रही है। इन खण्डहरों को कुछ लोग 'भीलों को बंगलो' (भीलों का बंगला) नाम से पुकारते हैं। निश्चित ही यह खण्डहर महल किसी समय भीलों का ही रहवास रहा होगा। यह भी सम्भव है कि चन्द्रावतों के सत्ता में आने और भीलों के पराभव के बाद यहाँ चन्द्रावतों का अधिकार रहा हो। भीलों की इष्टदेवी नारसी (महिषमर्दनी) के विषय में एक दंतकथा के अनुसार यह देवी सदा बूजरिया के साथ युद्धगामी होती थी। अदृश्य रहकर वह उसे बाण देती थी और अन्य शस्त्र देती थी। एक बार बूजरिया ने एक राजपूत सरदार को घेर लिया।

राजपूत सरदार की पत्नी माता की भक्त थी। माता से उसने अपने पति की रक्षा का वरदान प्राप्त किया। जब बूजरिया उस सरदार पर घातक वार करने लगा, तब माता ने उसे मना किया। बार-बार मना करने पर भी बूजरिया नहीं माना और माता के आदेश की अवहेलना करके राजपूत सरदार पर अपनी तलवार का वार करने लगा, तब माता ने बीच में आकर पहले वार से बूजरिया का खड्ग काट डाला और दूसरे वार से बूजरिया का सिर। बूजरिया को मार माता ने अपने वरदान की रक्षा की। उसके बाद माता भीलों से रूठ गई। बूज से भीलों का 'खोज' (नामोनिशान) चला गया। उनकी सत्ता का अन्त हो गया। यह माता बहुत जागृत माता है तथा तुरत-फुरत न्याय करती है। माता का भाव पहले भील पुजारी (भोपे) को आता था। अब नहीं आता। वर्तमान में भँवरलाल भील और वरदीचन्द भील माता की सेवा करते हैं और माता की पाती माँगते हैं। अर्जी लगने पर माता सिद्धि वाले काम की पाती देती हैं। अब मन्दिर नया बनवाया गया है। समस्त समाज माता के दरबार में आकर अपनी कार्य सिद्धि के लिए अर्जी लगाता है। यदि कार्य सिद्ध होने वाला होता है तो माता पाती दे देती हैं, वरना पाती नहीं मिलती।

**मामादेव**-बूजरिया मरने के बाद भैरव बना और मामादेव के नाम से पूज्य हुआ। इस भैरव की मूर्ति यहाँ स्थापित है। भील समाज के अतिरिक्त सकल समाज मामादेव की पूजा करता है। यह देवता, देवियों के साथ ही पूज्य माना जाता है। बूज में राठौड़, राजपूत, भील, कीर, मीणा आदि जातियाँ निवास करती हैं। मामादेव के थानक पूरे क्षेत्र में अनेक स्थानों पर हैं। यह लोकदेवता विशेष रूप से आदिवासी वर्ग द्वारा पूज्य होता है। कहीं-कहीं मामादेव का तोरण लकड़ी का बनाया जाता है। उस तोरण के खण्ड में एक घुड़सवार कुरेदकर बनाया जाता है। इसी पर सिंह सहित आयुधधारी वीर भी उकेरा जाता है। यही मामादेव का रूपांकन होता है। यह कृषि तथा कृषि पशुओं का रक्षक होता है। माताओं के साथ मामादेव का थानक होता है।

**शीतला माता**-शीतला माता गाँव की समपूज्य देवी है। यह देवी भी गाँव के स्थापना के साथ ही स्थापित की गयी थी। आज भी सब इन्हें समय-

समय पर आस्था भाव से पूजते हैं।

**गुफा माताएँ**—गढ़ के निकट दो गुफाएँ हैं। एक में शिव-पार्वती की मूर्ति स्थापित है तथा दूसरी गुफा खाली है। इसमें पहले कालिका की मूर्ति स्थापित थी। यह मूर्ति बहुत प्रभावी थी। बाद में यह मूर्ति गायब हो गयी। किसी समय गढ़ के पास पाबूजी राठौर की मूर्ति थी। अब वह मूर्ति भी वहाँ नहीं है।

**केतकेश्वर महादेव**—वास्तव में शिवशंकर आदिवासी समुदाय के लोकदेवता के रूप में पूज्य हैं। केतकेश्वर महादेव भी भील समुदाय के इष्टदेवता हैं। आजकल सभी समुदाय भगवान शिव की पूजा समभाव से करते हैं। पूरे बूज क्षेत्र में अनेक खण्डित मूर्तियाँ बिखरी पड़ी हैं, जो इसके पुरा वैभव का यश बखानती हैं।

### **बगलामुखी माता**

साँगाखेड़ा लगभग दस घरों की छोटी-सी बस्ती/दसों घर एक ही कुल गोत्रीय मीणा परिवारों के हैं। यह गाँव मनासा तहसील के चचोर एवं देवरान, भमेसर के निकट बसा है। पूर्व में यह गाँव भील समाज का था। किन्हीं कारणों से बेचिराग हो गया। कुछ लोक धारणों के अनुसार विक्रम संवत् 1856 के भयंकर अकाल में यह गाँव पलायन हुआ। फिर राजस्थान से मीणों यहाँ आकर बसे। इस प्रकार इस गाँव में फिर से चिराग जला। इस गाँव का नाम पूर्व में साँगाखेड़ा ही था। इसी कारण यहाँ की माता साँगाखेड़ा माता के नाम से ख्यात हैं।

ऐसी मान्यता है कि पड़दां के शंकोतरी महाराज ने यहाँ बैठकर अन्नपूर्णा माता की साधना की थी। शंकोतरी महाराज को बगलामुखी की सिद्धि प्राप्त थी। बाद में वे अन्नपूर्णा की सिद्धि प्राप्त करने के लिए देवरान अन्नपूर्णा स्थल पर आये। यहाँ के मठाधीशों ने उन्हें वहाँ नहीं टिकने दिया। तब उन्होंने साँगाखेड़ा गाँव के पूर्व भाग में एक पेड़ के नीचे बैठकर अन्नपूर्णा की साधना प्रारम्भ की। साधना में वे जब भी लीन होते, उन्हें बगलामुखी के दर्शन होते थे। लगातार तीस दिनों तक आदि शंकराचार्य द्वारा विरचित

अन्नपूर्णा स्रोत का जाप करने के पश्चात् इन्हें अन्नपूर्णा के दर्शन हो गये। माता ने अपने हाथों से उन्हें भोजन करवाया। वे बीच-बीच में स्वभाववश बगलामुखी के मंत्र बोल जाते थे, फिर उन्हें भान होता, तब अन्नपूर्णा के पाठ करते थे। इस कारण यहाँ पर दोनों माताओं का प्रभाव है।

देवरान के गोस्वामियों द्वारा विरोध करने और परेशान करने के कारण शंकोतरी महाराज पड़दां लौट आये और जीवित समाधि ले ली। साँगाखेड़ा माता मूल रूप से अन्नपूर्णा माता का स्थान है। जब शंकोतरी महाराज ने माता को स्वरूप दिया, तो वे बगलामुखी के रूप में प्रकट हुईं। शंकोतरी महाराज के प्रस्थान के बाद वहाँ के भीलों ने उसे अपनी आस्था देवी मान लिया। वे माता को अपनी रीति-नीति और पूजा-पद्धति के अनुसार पूजने लगे। मन्दिर का निर्माण व कोट तथा सराय का निर्माण कब हुआ, यह बताना कठिन है। एक श्रुति के अनुसार किसी साहूकार को पुत्र प्राप्ति की मन्त्र पूरी होने पर उसने इसे मन्दिर व कोट का स्वरूप दिया। माता का कुण्ड भी पक्का बँधवाया। कुछ लोगों का कहना है कि अहिल्याबाई के समय यह मन्दिर बना, कोट व सराय बनी।

मन्दिर व गाँव के पश्चिम में एक कुण्ड है। इसके पानी में स्नान करने से तथा माता की चरण-शरण होने से अनेक बाधाएँ दूर होती हैं। लकवा के मरीज यहाँ पर आकर नहाते हैं और ठीक होकर जाते हैं। अनेक रोग यथा-भूत-प्रेत बाधा वाले दुखी जन भी यहाँ आकर रोगमुक्त होते हैं। यहाँ की पूजा मीणा परिवार करते हैं। बलि होती है। यहाँ के पुजारी ने बताया कि पूर्वकाल में स्वयं पण्डाजी अपने हाथ से बकरे की बलि चढ़ाते थे। दोनों नवरात्रियों में तो प्रतिदिन एकाधिक बकरों की बलि दी जाती थी। आजकल मन्दिर से थोड़ी दूरी पर माता के नाम से बलि होती है। साँगाखेड़ा माता को भादवामाता, आँतरी, दूदाखेड़ी, आवरीमाता आदि सात बहनों में से एक माना जाता है। सभी स्थानों का प्रभाव एक जैसा ही है। दोनों नवरात्रों में यहाँ मेला लगता है।

**अन्नपूर्णा माता**— देवरान में मठ की माता या अन्नपूर्णा माता का प्राचीन थानक है। इस मठ का मठाधीश पूर्व में गोस्वामी होता था। मठाधीश

को ब्रह्मचर्य व्रत का पालन करना होता था। अहिल्या माता ने मठ के लिए जागीर निकाली। एक बार गोस्वामियों में से कोई भी ब्रह्मचारी रहकर मठाधीश बनने को तैयार नहीं हुआ, तब मठ का अधिकार गोस्वामियों से छीन लिया गया। वह स्थान सार्वजनिक हुआ था। गाँव का सकल समाज मठ की व्यवस्थाएँ निर्धारित करता है। यह सिद्ध शक्तिपीठ होकर गोस्वामियों की उपेक्षा वृत्ति के कारण अपना वर्चस्व खो बैठा।

### खोह माता

मनासा तहसील के कुकड़ेश्वर गाँव से उत्तर में एक छोटा-सा गाँव साकरिया खेड़ी। मुख्य सड़क से लगभग चार किलोमीटर। साकरिया खेड़ी से लगभग एक किलोमीटर अरावली की एक गुफानुमा टेकरी। पानी का झरना बारह महीने झरता है। उसी टेकरी पर खोह माता का स्थान। सरायनुमा एक बरामदा। चबूतरे पर अनेक खण्डित मूर्तिखण्ड।

मुख्य मूर्ति सिंहवाहिनी दुर्गा की अभी कुछ वर्षों पूर्व तमोली समाज ने स्थापित की। किसी समय यहाँ महिषमर्दिनी (भैंसासरी) माता की सपाट पत्थर पर उकेरी हुई मूर्ति स्थित थी। सन् 1976 ई. में मैंने उस मूर्ति की तस्वीर खींची थी, अब वह मूर्ति वहाँ नहीं। मैं जब सन् 2001 में दुबारा गया, तब उस पूर्व मूर्ति के कुछ टुकड़े ही मुझे वहाँ मिले। साकरिया खेड़ी गाँव भीलों के दस प्रमुख तीर्थों में से एक है।

एक समय यह पूरा क्षेत्र भील समुदायों का सघन केन्द्र था। यहाँ का भीलनायक संभा बहुत ही वीर योद्धा था। रामा भील का वह खास सेनानायक था। यहाँ उसका छोटा-मोटा राज्य कायम था। किसी युद्ध में संभा मारा गया। सम्भवतः चन्द्रावतों से हुए संघर्ष में वह मारा गया हो। मरने के बाद वह भैरव बना। आकरा भैरव। उसकी स्थापना माता के स्थान से नीचे तल में की गयी थी। वह चाहे जिसके शरीर में प्रवेश कर भाव रूप में प्रकट हो जाता। उसका मुख्य भोपा सकराना था। संभा जैसा ही विशाल डीलडौल था उसका। जब उसे भाव आता, तब वह बहुत उत्पात मचाने लगता। संभा अपने जीवनकाल में खोह माता का प्रतिदिन दर्शन करता था। रविवार को

बकरे की बलि करता। दारू की धार रोज लगाता था। भाव आने पर वह उत्पात मचाता हुआ माता के देवरे की ओर भागता था। उसे तत्काल साँकलों से बाँधा जाता था। वह बड़ी-बड़ी साँकले लेकर अपने बदन पर मारता था। उसे साँकरिया भैरव कहा जाने लगा।

साँकलों के कारण उसे साँकलिया (साँकरिया) कहा गया। स्वयं माता ने बाद में उसे साकरिया अर्थात् शान्त भैरव बनाया, तब से उसने अपना स्थान कायम किया। उसी के नाम से इस गाँव का नाम साकरिया खेड़ी हुआ। अब भी यहाँ भीलों के कुछ परिवार हैं, किन्तु अब यह क्षेत्र बंजारा बहुल हो गया है।

खोह की माता भैंसासरी का यह स्थान स्वयं संभा ने बनवाया था। माता का देवरा उसके पूर्वजों का बनाया हुआ था। पहले मूरत पठार की शिला पर रखी थी। संभा नायक ने उसे पक्का चबूतरा बनवाकर स्थापित करवाया। पहले यहाँ चौकी होती थी। माता खप्पर झेलती थी। नवरात्रों में मेला भी भरता था। भील समाज का यह मुख्य स्थान था। आज भी यहाँ कई दर्शनार्थी आते हैं और माता के दर्शन करते हैं। आसपास के लोगों का तो यह प्रमुख पूजास्थल है। इसे रोग तारिणी व भय हारिणी माता कहा जाता है।

### सालरमाला की माता

मनासा से रामपुरा पैंतीस किलोमीटर। फिर उसी मार्ग पर पठार पर लगभग छह किलोमीटर सालरमाला गाँव। यहाँ से लगभग पाँच किलोमीटर दक्षिण-पूर्व में अरावली के तल में बीहड़ घना पहाड़ वन। उसी पठारी भाग में स्थित है केदारेश्वर का शिव मन्दिर। निमाड़ में स्थित ज्योतिर्लिंग केदारेश्वर की ही भाँति यह शिवतीर्थ दशपुर जनपद का पावन तीर्थ। वर्षा ऋतु में पहाड़ से झरने वाले झरनों का मनोहारी दृश्य तथा कर्णप्रिय झंकार वन प्रान्त को गुंजाल करती है।

गुफा विराजित केदारेश्वर शिव का स्नान इन्हीं झरनों के झर-झर झरते जल बिन्दुओं से बारहों मास होता रहता है। वानर यूथों की हुप-हुप, विभिन्न पक्षियों की समवेत चहचहाहट सूर्य की प्रथम किरण के साथ भगवान

आशुतोष की विरद गाना शुरू कर देती हैं। उत्तरी खण्ड में तापस सिद्ध की सदा प्रज्वलित धूनी भगवान शिव के धाम को सदा जागृत बनाये रखती है। मन्दिर का चतुर्विद परकोटा है, जो सीढ़ियों को बाहर छोड़कर रात को एक बड़े द्वार से बन्द हो जाता है। दिन भर दर्शनार्थियों की आवाजाही। शिव स्रोतों की मधुर ध्वनियाँ और सदा शिव की जय-जयकार। सब रात्रि विश्राम के लिए थम जाती है।

इस महान शिवतीर्थ से दो किलोमीटर पहले एक गाँव आता है। इसका नाम है सालरमाला। इसे भी एक विरद में भील समुदाय के दस प्रमुख तीर्थों में से एक गिना गया है। अक्सर केदारेश्वर और सालरमाला को एक तीर्थ मानकर इसे 'सालरामालो केदारो' कहा जाता था। सालरमाला शक्तिपीठ है। यहाँ महिषमर्दिनी की सुन्दर बीसभुजा मूर्ति स्थापित थी। ठीक ऐसी ही सुन्दर मूर्ति महिषमर्दिनी की आम्बा पराल्या में भी स्थित है। यह माता भी भील आस्था की देवी हैं।

सालरमाता की मूर्ति किन्हीं विघ्न-सन्तोषी लोगों द्वारा खण्डित कर दी गयी। यह मूर्ति उस क्षेत्र की सर्वाधिक सुन्दर मूर्ति थी। सावन गाँव की बीसभुजा मूर्ति इन दोनों मूर्तियों से भिन्न है। लेकिन लगता है दशपुर जनपद के क्षेत्र में बीसभुजा ये प्रतिमाएँ लगभग एक ही काल की हैं। कलाकार भिन्न हो सकता है। प्रतिष्ठाता एक ही समुदाय रहा है। सावन की बीसभुजा के वर्तमान पुजारी गोस्वामी हैं, किन्तु लोकश्रुति यह बतलाती है कि किसी समय सावन, भादवा, देवरी आदि गाँव भील बहुल गाँव थे। ये सभी लोकदेवियाँ भील आस्था की प्रतीक हैं।

सालरमाला व केदारेश्वर भील समुदाय का प्रमुख तीर्थ था। रामा भील वर्ष में एक बार पूरे क्षेत्र के भील सरदारों को यहाँ आमंत्रित करता था। यह परम्परा रामा से पहले भी यहाँ पर थी। 'भील ठिकाणा की विरदगाथा' के अनुसार यहाँ पर सभी भील सरदार मिलते थे। गोठें होती थीं। नाच-गान होते थे। वर्ष भर के परस्पर विवादों का निपटारा होता था। कई नये रिश्ते जुड़ते थे। सालरमाला भी रामा भील तथा समूचे भील समुदाय का शक्ति केन्द्र था। वैसे भी भगवान शिव व महिषमर्दिनी (भैंसासरी) का प्रमुख तीर्थ

होने के कारण इस क्षेत्र का महत्त्व बहुत था। आज भी समूचा जनपद एवं दूर-दूर के दर्शनार्थी पर्यटक एवं साधक यहाँ स्वयं को धन्य मानते हैं। दशपुर जनपद की जावद तहसील में स्थित सुखानन्द एवं केदारेश्वर दोनों तीर्थ बहुत पवित्र माने जाते हैं। श्रावण मास में यहाँ खूब भीड़ रहती है। दोनों नवरात्रों में सालरमाला माता की धाम चलती है। यहाँ का पुजारी भील परिवार है। बलि यहाँ आदिकाल से होती चली आ रही है।

### गंगा बावड़ी की नारसी माता

अरावली पठार का दशपुर जनपद क्षेत्र अजब और गजब लोक आख्यानों का खजाना है। यहाँ का पत्थर-पत्थर आख्यान गाता है। यहाँ की पगडण्डियों में कथाएँ बिखरी पड़ी हैं। यहाँ की स्थानीय नदियों और नालों में लोकगीतों की कल-कल आप जब चाहें सुन सकते हैं।

मनासा से उत्तर में लगभग 8 किलोमीटर की दूरी पर एक प्राचीन बस्ती है, जिसे एक समय 'लौह पट्टण' कहा जाता था। इसका गठन दस बस्तियों से मिलकर हुआ था। ये 'दसपुर' आज भी अपने अस्तित्व में है। यहाँ एक विशाल तालाब था, जिसे लाखा बंजारा ने खुदवाया और उदयपुर के राणा मोकल ने पक्का बँधवाया था। इसके सीमान्त में अरावली पर्वत की खदानों से कच्चा लोहा निकालकर औजार, हथियार और कृषि उपकरण बनाये जाते थे। कच्चे लोहे के मैल के ढेरों में पड़े अवशेष आज भी देखे जाते हैं। यहाँ पर लगभग 200 घर लोहारों के, 180 घर कसेरों (ठठेरों) के तथा 100 परिवार छीपों, रंगरेजों तथा बुनकरों के थे।

यह क्षेत्र मुख्यतः भील बहुल क्षेत्र था। इन्दौर के होल्कर राज्य की यह तहसील व थाना-नाका अर्थात् सीमान्त संवेदनशील नगर था। इस नगर को आज 'पड़दाँ' कहा जाता है। 'कोई केवे पड़त खेड़ो, कोई पड़दाँ नाम बखाणों' के अनुसार इसे पहले पड़तखेड़ा और फिर पड़दाँ कहा जाने लगा। लौह पट्टण ज़मीन में दब गया। पड़दाँ से उत्तर-पूर्व में एक छोटी-सी बस्ती है गंगा बावड़ी। भीलों का गाँव। चार-पाँच घर बारेठ समाज के। इस बस्ती से एक-दो किलोमीटर पर एक देवी स्थान है- 'नारसी माता का देवरा'।

यहीं पर एक बावड़ी है, इसी को 'गंगा बावड़ी' कहते हैं। नारसी माता के पहले इसी माता को 'हींगली माता' कहते थे। दोनों माताओं का एक ही आदि रूप है। हींगली अर्थात् हिंगलाज माता। हिंगलाज माता का मूल स्थान कोटड़ी (अफगानिस्तान) में है। वहाँ इसकी पूजा चागल वंशीय मुसलमान चारण करते हैं। अरावली पर इस देवी की स्थापना कटारा भील ने की थी। उसी ने यहाँ गाँव बसाया और बाद में यहीं विशाल दुर्ग बना। यह वन दुर्ग आज भी अपनी पुरा-सम्पदा, विशालता और मजबूती के प्रमाणस्वरूप विद्यमान है।

नारसी अर्थात् दुर्गा भवानी। नारसी माता पर प्रति रविवार चौकी होती है। दुखिया यात्रियों के दुख दूर होते हैं। आदिवासी (भील) भोपा के शरीर में भावरूप से माता स्वयं प्रकट होती है। आज भी यहाँ बलि होती है। यह स्थान मुख्य बस्ती से दूर वन के भीतर एक स्थानीय नदी के तट पर है। यहाँ भूत-प्रेत, बाधाग्रस्त तथा अन्य दुखिया-सुखिया यात्रियों का आना-जाना सदा बना रहता था। गंगा बावड़ी की एक कथा है।

जहाँ यह बावड़ी है, किसी समय यहाँ एक भील बस्ती थी। उस बस्ती में एक परिवार, जिसका मुखिया सरवन था। कहने को तो वह दस परिवारों का मुखिया था, लेकिन उसके निजी परिवार में कुल तीन प्राणी थे - वह स्वयं, उसकी पत्नी सुगनी और उसकी बेटी गंगा। कुछ गायें, कुछ बकरियाँ, एक जोड़ी बैल और थोड़ी-सी खेती। सुगनी को हिंगलाज माता का इष्ट था। जहाँ अभी नारसी माता का देवरा है, यह देवरा तब सुगनी के बाड़े के भीतर था। सुगनी को माता की लम्बी तपस्या के पश्चात् ढलती उम्र में एक बेटी हुई। सुगनी ने उसे माँ का प्रसाद मानकर स्वीकार किया। सुगनी ने उसका नाम गंगा रखा। गंगा उसकी प्यारी गाय का नाम था। जब उसे प्रसव हुआ, तब घर में कोई नहीं था। गंगा ही थी। गंगा ने ही माँ-बेटी की रक्षा की। गंगा जैसी सुन्दर कन्या पूरे इलाके में नहीं थी। ऐसा लगता था मानो कुलदेवी 'गौरजा' ने ही सुगनी की कोख से अवतार लिया हो। सुगनी मीठे-मीठे लोकगीत गा-गाकर गंगा को प्रसन्न रखती थी। इतने सुख के साथ ही बड़ा दुःख यह था कि गंगा के अत्यन्त सुन्दर नेत्रों में ज्योति नहीं थी। इसे भी

सुगनी ने माँ हींगली की इच्छा मानकर स्वीकार कर लिया। आठ साल की गंगा जब माँ के साथ गीत-भजन गाती तो सारा गाँव भाव-विभोर हो जाता। गंगा को माँ ने बहुत ही मधुर कण्ठ दिया था। बस्ती से दूर अरावली पर ही चित्तौड़ की ओर एक आश्रम था, जहाँ एक महात्मा जागीरदारों और रईसों के बेटों को संगीत व चित्रकला की विद्या सिखाते थे। उनका बड़ा नाम था। सुगनी और सरवन ने विचार किया कि गंगा को उस आश्रम में रखकर संगीत विद्या सिखाना चाहिए। ऐसा विचार करके बैलगाड़ी जोतकर वे गंगा को साथ लेकर चल पड़े। वे दूसरे दिन आश्रम में पहुँचे। महात्मा अपने विद्यार्थियों को संगीत सिखा रहे थे। ये तीनों वहाँ पहुँचे और प्रणाम करके बैठ गये। शिक्षण से निवृत्त होकर महात्मा ने इन लोगों के आने का कारण पूछा। सुगनी ने बड़ी ही विनम्रता से पहली बात महात्मा से कही। महात्मा पहले तो उपेक्षा भरी हँसी हँसे, फिर बोले- 'मेरे आश्रम में राजे-रजवाड़ों के कुमार तथा सेठ साहूकारों के कुमार शिक्षा लेते हैं। उनके बीच में तुम्हारी इस अंधी बेटी का गुजर सम्भव नहीं है। एक तो यह अंधी है, ऊपर से सात-आठ साल की नन्हीं भील बालिका। तुम इसे लेकर वापस लौट जाओ।'

सुगनी और सरवन ने बहुत विनती की। आश्रम के बाहर एक झोपड़ा बनाकर रहने की योजना भी बताई। महात्मा ने उनकी एक नहीं सुनी और उन्हें वापस लौट जाने को कहा। सुगनी और सरवन निराश हो गये। गंगा निराश नहीं हुई। उसने दृढ़ संकल्प कर लिया कि वह यहीं रहकर संगीत सीखेगी। गंगा ने अपने पिता से कहा- 'हम इसी पठार पर झोपड़ी बनायेंगे। अपनी गायें, बकरियाँ भी यहीं लायेंगे। खेती-पाँती करवायेंगे। मैं प्रभात में उठकर आश्रम की संगीत ध्वनि सुनकर अपना अभ्यास करूँगी। मुझे तो वैसे भी सुनकर ही सीखना होगा।' सरवन ने ऐसा ही किया। गंगा के लिए वीणा खरीदी गयी। वह नियमित अभ्यास करने लगी। गंगा अब दस वर्ष की हुई। महात्मा ने जितना अपने शिष्यों को सिखाया, उतना उसने सीख लिया।

एक दिन प्रभात में गंगा प्रभाती गा रही थी। वीणा पर प्रभाती के बोल

उसके कण्ठ को मुखर कर रहे थे। उधर से एक राहगीर महात्मा गुजर रहा था। यह भी एक संयोग ही था कि वह महात्मा भी नेत्रहीन था। उसने गंगा का कोमल कण्ठ सुना तो वहीं रुक गया। सुगनी और सरवन ने उनका सत्कार किया। महात्मा ने पूछा- 'जो बालिका गा रही है, वह कौन है?' 'वह हमारी बेटी है, नेत्रहीन है' सुगनी ने कहा। महात्मा ने पूछा- 'आवाज़ से लगता है उसकी वय आठ-नौ वर्ष से अधिक नहीं होगी, उस पर माँ भगवती की कृपा है। लगता है स्वयं वीणापाणि उसके कण्ठ में विराजित हैं। मैं उससे मिलना चाहता हूँ।' सरवन महात्मा को गंगा के झोपड़े में ले गया। गंगा की तल्लीनता से महात्मा भाव-विभोर हो गया। प्रभाती समाप्त हुई। गंगा ने स्वयं ही कहा- 'माँ, महात्माजी को आसन पर बिठाओ। मैं उनकी आरती उतारूँगी।' महात्मा चकित थे, इसने कैसे जाना, मैं आया हूँ।

'तुमने कैसे जाना कि मैं महात्मा हूँ'- महात्मा ने आश्चर्य से पूछा। 'माँ ने प्रातः स्वयं स्वप्न दिया। उन्होंने ही यहाँ आपको भेजा है। इधर बैठी है न हींगली रानी। यह सब बताती है मुझे।' महात्मा ने माँ हींगली और संगीत साधिका गंगा को प्रणाम किया। सबने महात्मा की आरती उतारी। उन्हें कटोरे में दूध पिलाया। 'गंगा तुमने जिस लगन से रात-दिन संगीत की तपस्या की है, वह अद्भुत है। मैंने विधिवत् संगीत सीखा है। मेरे पास अपनी वीणा भी है। एक झोपड़ा मेरे लिए बनवा दो। मैं तुम्हें और अच्छी तरह संगीत सिखाना चाहता हूँ, तुम पर माँ भगवती प्रसन्न हैं।' एक झोपड़ा और बन गया। महात्मा ने दिन-रात मेहनत करके गंगा को संगीत में पारंगत कर दिया। 'गंगा तुम अब संगीत विद्या में पारंगत हो। महाराणा के दरबार में वार्षिक उत्सव होगा। कई संगीतकार अपना-अपना संगीत सुनायेंगे। तुम भी उसमें शामिल होकर अपनी विद्या का परिचय देना। मैं तुम्हारे साथ रहूँगा। माँ भगवती तुम्हें यश देगी।' गंगा ने वार्षिक उत्सव में भाग लिया। उसमें महात्मा के आश्रम वाले विद्यार्थी भी शामिल हुए और भी कई संगीतकार शामिल हुए।

सबने अपने-अपने संगीत का प्रदर्शन किया। सबने गंगा को सर्वश्रेष्ठ माना। राणा ने भरे दरबार गंगा को सम्मान किया। महल में रहने का रुतबा

दिया। राणा ने कहा- 'गंगा! तुम अब अपने महल में रहो और महल की राजकुमारियों को संगीत सिखाओ। तुम्हारे नाम ज़ागीर निकाली जायेगी।'

गंगा ने कहा- 'राणाजी की कृपा चाहिए। मैं तो वन में ही रहूँगी। वहीं अपनी बहनों और भाइयों को संगीत सिखाऊँगी। राजकुमारियाँ यदि उचित जानें तो मेरे झोपड़े में आकर संगीत सीखें। संगीत तो माँ भगवती की पूजा है। इसे सीखने का अधिकार सबको एक समान मिलना चाहिए।' गंगा ने महात्माजी को प्रणाम किया और सबका अभिवादन करके वन की ओर चल दी। महात्माजी व उसके माँ-पिता साथ थे। सबने गंगा की बहुत प्रशंसा की। संगीतकार महात्माजी गंगा के साथ उसके झोपड़े तक तो गये लेकिन अगली प्रभात से वहाँ से अपनी निर्दिष्ट तीर्थयात्रा पर चले गये। गंगा वापस अपने गाँव लौट आई। उसने फिर से वहाँ अपने नये झोपड़े बनवाये। हिंगलाज माता की फिर से स्थापना की।

राणाजी ने वहाँ उसके लिए भवन बनवाना चाहा। गंगा ने मना कर दिया। मैं तो झोपड़े में ही पैदा हुई, झोपड़े में पली, यहीं जीवन भर रहना चाहती हूँ। यहाँ आप एक बावड़ी बनवा दें तो कृपा मानूँगी। पीने के लिए सबके काम आयेगी। राणा ने एक बावड़ी बनवा दी। यही बावड़ी गंगा बावड़ी कहलायी। गंगा की ख्याति सब ओर फैल गयी। वह दिन-रात माँ हिंगलाज की सेवा में बैठकर भजन गाती थी। दुखिया-सुखिया लोग उसका आशीर्वाद लेने आते। सबकी मनोकामना पूरी होती थी। कहते हैं- एक दिन प्रभात में भजन गाती-गाती वह बावड़ी में चली गयी, तब वह वृद्धा माता थी। यह भी कहते हैं कि बावड़ी में से जोत प्रगटी और हिंगलाज माता में समा गई।

कालान्तर में हिंगलाज माता नारसी माता कहलाने लगी। नारसी माता ही गंगा माता है। वह आज भी सबकी मनोकामना पूरती है। पहले माता की सवारी आती थी। रूपण माता से भेंटती थी। अम्बा खोह एवं झर तक आती थी। थानक पर रुकती थी। बलि प्रथा माता को नहीं सुहाती। अब केवल भाव रूप में ही आती हैं।



## रामाभील की इष्टदेवी ( हिंगलाज माता )

चन्द्रावतों से पूर्व रामपुरा में रामाभील का राज्य था। पूरा अरावली पठार कनेरा से हिंगलाजगढ़ तथा तल का क्षेत्र भीलों की सत्ता का केन्द्र था। आज भी उनकी देवियाँ इस क्षेत्र में स्थित हैं। रामाभील ने हिंगलाज माता की स्थापना अपने महल में की। वह प्रतिदिन अपनी इष्टदेवी की पूजा करता था। वह मूर्ति महिषासुर मर्दिनी स्वरूपा थी। रामाभील उसे हिंगलाजगढ़ की अपनी मूल देवी के रूप में पूजता था। वह बहुत ही चमत्कारिक मूर्ति थी। वार्ता में इसे 'रांपरा की अष्टभुजी' कहा गया है।

रामा भील के रामपुरा से पराभव के पश्चात् वह मूर्ति कई वर्षों तक अनपुजी व उपेक्षित उसके खण्डहर महल में पड़ी रही। बाद में दुधलाई में मेहारिये राज चारण की दृष्टि उस पर पड़ी। उसने माता को आदर सहित वहाँ से ले जाकर दुधलाई में अपने महल के पास स्थापित कर ओटला बना दिया। चारणों की आस्था देवी भी हिंगलाज ही मानी गयी हैं। इस कारण वह रामा भील की माता दुधलाई में चारणों की आस्था का केन्द्र बनी। बाद में चबूतरे पर एक मन्दिर बना दिया गया। चारणों का पराभव दुधलाई से हुआ। महल खण्डहर बना। मन्दिर मूर्ति उपेक्षित अनपुजी।

अभी कुछ वर्ष पूर्व माता की मूर्ति को वहाँ से हटा दिया गया और वहाँ कृष्ण की मूर्ति स्थापित कर दी गयी। मूर्ति को सम्भवतः पुजारी ने अन्यत्र स्थापित किया हो। किन्तु मेरे खोजने पर केवल एक ही सूत्र हाथ लगा कि मूर्ति खण्डित थी, इस कारण हटा दी गई। कुछ दिन तक माँ की मूर्ति मन्दिर के निकट स्थापित रही, किन्तु वहाँ भी अतिक्रमण हो जाने से रामाभील की कुलदेवी लोकमाता हिंगलाज कहीं धरती के गर्भ में अन्तर्ध्यान हो गयी हैं। हो सकता है किसी युग में वह किसी के सपने में आये और उसकी पुनर्स्थापना हो। ऐसी अनेक घटनाएँ पूर्व में घट चुकी हैं।

## रामपुरा की तुलजा माता

तुलजा (मूल संस्कृत त्वरिता) भवानी महाराष्ट्र में स्थित तुलजापुर की माता है। तुलजापुरकर मराठा परिवार उस माता को अपनी कुलदेवी

मानकर पूजते हैं। तुलजापुर मन्दिर में विराजित भवानी की मूर्ति काले पत्थर की 3 फीट 3 इंच ऊँची है। कर्नाटक में भी इस माता की पूजा होती है। अष्टभुजी महिषासुर मर्दिनी की यह मूर्ति शिवाजी की भी इष्टदेवी थी। मेवाड़ के सिसोदिया भी इसे अपनी इष्टदेवी के रूप में पूजते हैं। परमार राजा हरिसिंह ने मिथिला में ईस्वी सन् 1324 में तुलजा भवानी का मन्दिर बनवाया था। उससे पहले मिथिला में अपना राज्य स्थापित करने वाले नान्यदेव ने ईस्वी सन् 1097 में तुलजा भवानी के मन्दिर का निर्माण करवाया था। हरिसिंह द्वारा निर्मित भाटगाँव में स्थित है। नेपाल के काठमाण्डू में भी तुलजा भवानी का मन्दिर है। यह लगभग दसवीं सदी ईस्वी का है। महाराष्ट्र में तुलजा की पूजा सत्रहवीं शताब्दी ईस्वी के मध्य की है। रामपुरा में होल्कर राज्य के समय अनेक महाराष्ट्रीयन सरदार रहे थे। उन्हीं सरदारों के किसी घराने की यह संगमरमर की अष्टभुजी भवानी की मूर्ति है। पुजारी श्री नन्दलालजी ओझा के अनुसार यह तुलजा भवानी की मूर्ति है। इसे किसी युद्ध में चन्द्रावत मराठों से छीनकर लाये थे। चन्द्रावतों ने रामपुरा में न इस मूर्ति की विधिवत् स्थापना की न पूजा। आज भी चन्द्रावत घराना इस माता की पूजा नहीं करता और न ही चन्द्रावत राज्य घराने में इसके लिए कोई ज़ागीर निकाली। चन्द्रावतों के पुराने महल में यह मूर्ति स्वयं पुजारी ने स्थापित की और वे ही इसकी नियमित पूजा करते हैं। अहिल्याबाई ट्रस्ट द्वारा जो ज़ागीर निकाली गयी थी, उस पर भी पुजारी का अधिकार नहीं है। मूर्ति बहुत ही सुन्दर और दर्शनीय है। संगमरमर की यह अष्टभुजी भवानी की मूर्ति स्थापित होकर भी उपेक्षित स्थिति में रामपुरा के पुराने महल के एक छोटे से कमरे में स्थापित है।

## पड़दाँ की लोकमाताएँ

**टोकड़ा माई** -टोकड़ा का अर्थ हुआ किसी को टोकना, मना करना अथवा किसी होते काम में बाधा डालना या फिर काम प्रारम्भ करने से पहले/यात्रा पर जाने से पहले 'टोक देना'। इसे अशुभ माना जाता है। नज़र लगाना भी इसी के अन्तर्गत माना जाता है। जैसे किसी सुन्दर बालक को

देखकर कोई अचानक कह दे 'हाय!' कितना सुन्दर बालक है। यह टोकना भी ठीक वैसा ही है, जैसे शुभ काम से पहले छींकना। इस प्रकार टोकने और 'नजर' से होने वाले अशुभ को शुभकर करने के लिए एक लोकमाता की स्थापना की गयी, इसे 'टोकड़ा माई' कहा जाता है। पड़दाँ (मनासा) में इस माता का स्थान गाँव के उत्तर में नदी के तट पर है। कुछ लोग इसे डिकेन के निकट स्थित भूखीमाता की जोत से स्थापित स्थान भी मानते हैं। मैंने टोकड़ा माता के स्थान जनपद में अन्यत्र भी देखे हैं। इसलिए इस माई को 'नजर की कुदृष्टि से बचाने वाली माता' के रूप में ही माना जाता है।

**खाँसखोरनी माता**—यह कुकर खाँसी की देवी है। इस लोकमाता का स्थान पड़दाँ में धामन्या मार्ग पर स्थित है। कुछ लोग इन्हें भादवामाता के रूप में भी पूजते हैं। जैसी आस्था वैसा फल।

**भैंसासरी माता**—यह भील आस्था की लोकदेवी हाजियों की बावड़ी पर स्थित है। इसे राजस्थान की जोगणियाँ माता के रूप में पूजा जाता है। इसी प्रकार यहाँ दूधाखेड़ी माता का भी स्थान है। यह स्थान पटवारियों की बावड़ी पर स्थित है।

**मरीमाता**—यह दुर्भिक्ष की माता मानी जाती है। यह माता तमोलियों के मन्दिर के बाहर स्तम्भ रूप में स्थापित है। मरीमाता के स्थान जनपद में अन्यत्र भी हैं।

**साँसियों की माता**—यह माता साँसी समाज की है। यह समाज किसी समय चोरी करने में लिस था। इस प्रकार यह माता चोरों की माता के नाम से भी जानी जाती है। इसका देवरा पड़दाँ के उपग्राम मदुरपुरा में है। मदुरपुरा बेचिराग गाँव है।

**कोरियों की कारी माता**—यह कोरियों की माता का स्थान पड़दाँ के नगरकोट के बाहर था। फिर इसे तालाब की पाल पर बनाया गया। आज यह देवरा खण्डहर बन चुका है।

**हिंगलाज माता**—यह माता पड़दाँ में किसी समय सम्पन्न वस्त्र व्यवसायी एवं बुनकर खत्री समाज की कुलदेवी थी। खत्री समाज यहाँ से रामपुरा जा बसा। देवरा टूटा-फूटा है। सम्भवतः खत्री समाज ने अपनी कुलदेवी हिंगलाज

का चबूतरा रामपुरा में स्थापित कर लिया हो।

**रूण्डीमाता**—पड़दाँ से कंजाड़ा मार्ग पर रूण्डी पर स्थित यह जोगणिया माता क्षेत्र में सर्वसमाज द्वारा पूज्य है। गोस्वामियों के अनुसार यह उनके साथ किसी समय राजस्थान से आने वाले भाटों की देवी है। कुछ लोग इसे भाटी राजपूतों की देवी मानते हैं। यदि यह देवी भाटी राजपूतों की होती और जन धारणा के अनुसार भाटखेड़ी पर चन्द्रावतों से पहले भाटियों का वास था और उन्हीं के नाम से इस ठिकाने का नाम भाटखेड़ी पड़ा, तब भाटियों की कुलदेवी भाटखेड़ी के निकट क्यों नहीं स्थापित की गई? जो भी हो, भाटखेड़ी में ठिकानेदार चन्द्रावत इस माता को आदिकाल से पूजते हैं। यहाँ चौकी होती है। नियमित पूजा भी होती है। अब तक यहाँ की पूजा भील समुदाय ही करता चला आ रहा है।

**पानमाता**—यह माता तमोली समाज की आस्था देवी है। यह नारसिंगी माता का रूप है। जहाँ-जहाँ भी तमोली समाज बसता है व पान की खेती करता है, वहाँ-वहाँ पानदेवी की स्थापना की गई है। यह पान खेती की रक्षक देवी है।

### बसी ( पठार ) की लोकमाताएँ

बसी गाँव चारणों का है, अन्य जातियाँ भी हैं। पशुपालन और कृषि इस गाँव का मुख्य व्यवसाय है। दुर्गा के अर्थात् शक्ति के नौ लाख अवतारों में वे समस्त लोकमाताएँ शामिल हैं, जो लोकपूज्य हैं। चारण जाति सरस्वती साधक जाति है। वह शक्ति आराधक जातियों में अग्रगण्य है। ऐसी मान्यता है कि शक्ति के नौ लाख अवतारों में चौरासी लोकमाताएँ चारण देवियाँ (कन्याएँ) हैं। हिंगलाज माता उनकी मुख्य आराध्य देवी है। यह एक संयोग ही है कि इस अंचल की भील जातियाँ भी हिंगलाज को अपनी आस्था देवी मानते हैं। गोरजाँ उनकी मातृदेवी तथा महिषासुर मर्दिनी (भैंसासरी) उनकी इष्टदेवी है। यह अंचल मुख्य रूपेण भील आदिवासी क्षेत्र है। चारण जातियाँ राजपूतों के साथ-साथ यहाँ आई और उनकी सत्ता का एक महत्वपूर्ण अंग बनकर यहाँ बस गयीं। इनके गाँवों में इनकी इष्टदेवियों के देवस्थान भी



## नीमच की लोकमाताएँ

स्थापित हुए। धीरे-धीरे ये देवियाँ समग्र समाजों में आस्था का केन्द्र बन गयीं।

**खोड़ियार माता**-माता सप्त मातृकाओं में सबसे छोटी बहन लांगदे हैं। ये सप्त माताएँ- आवड़, आछी, गहली, हुली, रूपां और लांगदे हैं। ये माताएँ नागणेचियाँ भी कहलाती हैं। बीकानेर में नागणेचियों का प्रसिद्ध मन्दिर है। यह नाम उन्हें नागणियों का रूप धारण करने के कारण प्राप्त हुआ। लांगदे जैसलमेर, सौराष्ट्र-गुजरात में खोड़ियार माता के नाम से पूज्य हैं। अहमदाबाद में खोड़ियार के अट्टाईस मन्दिर हैं। बसी गाँव में खोड़ियार माता के साथ-साथ करणीमाता और बिरखड़ी माता का मन्दिर भी है। सात बहनों के पिता मामड़ साहवा को इन बहनों के तप और हिंगलाज माता की कृपा से पुत्र प्राप्ति हुई। उसका नाम मेरठिया रखा गया। उसे नाग ने डस लिया। लांगदे समुद्र से अमृत लेने गईं। अनेक बाधाओं पर विजय प्राप्त कर लांगदे अमृत ले आईं। खोड़ियार का एक अर्थ होता है- बाधाओं को हटाने वाली या विपदाओं पर विजय पाने वाली। आवड़ माता ने अपनी छोटी बहन को 'खोड़ियार' नाम दिया। तब से लांगदे माता खोड़ियार माता कहलायी। आवड़ ने लांगदे के आने तक सूर्य को उदित नहीं होने दिया। अमृत छिड़काव होते ही सतभैया जी उठा। सूर्य भी उग गया। खोड़ियार माता विघ्न-बाधाओं को हटाने वाली माता है। इस क्षेत्र में सात बहनों के आंचलिक नाम- आवड़, जोगड़, तोगड़, होलवई, सौसाई, भीलबाई व खोड़ियाल हैं। नाम कुछ भी हों, आस्था समान है। ये सब देवियाँ इस अंचल में समपूज्य लोकमाताएँ हैं।

### दुधलाई की सिंघ भवानी

दुधलाई रामपुरा के राज चारण पूरणदान सिंह की पुत्री अंबली थी। यह आंत्री माताजी के आशीर्वाद से उन्हीं की समस्त शक्तियाँ लेकर अवतरित हुई थी। इसकी वीरगाथा चारण परिवारों में गायी जाती है।

### अंबली माता

माता का वर्णन ही अंबली माता हैं, जिनका वर्णन पूर्व में आया है।

दशपुर जनपद का अरावली पठार एवं इसका तलहटी क्षेत्र शिवस्थलों एवं शक्तिस्थलों से महिमा मण्डित है। इसका यह अर्थ नहीं लगाया जाना चाहिए कि अन्य अवतारों अथवा देवी-देवताओं के स्थल-मन्दिर यहाँ हैं ही नहीं। खूब हैं। फिर भी शिव-शक्ति स्थलों की संख्या यहाँ सर्वाधिक है। यह क्षेत्र मूल रूप से भील जातियों का क्षेत्र है। भीलों की अन्य प्रजातियों में भील ठाकुर और भील मीणों प्रमुख हैं। भीलों के बाद इस क्षेत्र में मीणों का आगमन माना जा सकता है।

मीणों ने भी अनेक गाँव बसाये। जैसे मीणासाथ-मीणासा-मणासा-मनासा। मीणच-मीमच-नीमच। ऐसे अनेक गाँव भीलों और मीणों के यहाँ रहे हैं। उनके बसाये हुए गाँवों में जब अन्य जातियाँ कालान्तर में आकर बस गयीं, तब भील अथवा मीणों अल्पमत में होते गये। उनका अस्तित्व तक समाप्त होता चला गया।

भीलों की इष्टदेवी महिषासुर मर्दिनी है। इसी महिषासुर मर्दिनी को 'भैंसासरी या भैंसासुरी माता' लोक सम्बोधन में कहा गया है। लोक मान्यता अनुसार भैंसासरी को शक्ति का बारहवाँ स्वरूप या अवतार माना जाता है।

*बारमां रूप में भैंसासरी केवाणी।*

*मार भैंसासर भख लिया ताता लोवा वारगाणी।*

अरावली पठार पर भीलों का राज्य रहा है। रामपुरा, भानपुरा, शामगढ़ और इधर चित्तौड़ की सीमा तक भीलों के छोटे-बड़े ठिकाने रहे। रामपुरा में

तो भील राजा रामा का राज्य विक्रम संवत् 1466 तक रहा। संवत् 1466 में चन्द्रावत सेवाजी, रामा को मारकर रामपुरा की गद्दी पर बैठे। जब रामपुरा में रामा भील का शासन था, तब आमद पर देवा मोरी का शासन था। चन्द्रावतों ने संवत् 1466 विक्रम में आमद पर अधिकार कर लिया। इस प्रकार लगभग 600 वर्षों के मध्य इस क्षेत्र पर चन्द्रावतों और होल्करों का शासन रहा। इस मध्य भील उपेक्षा के शिकार होते चले गये और वे इस क्षेत्र में जहाँ संख्या में नगण्य हो गये हैं, वहीं समाज में भी नगण्य हो गये हैं। उनके गाँव या तो बेचिराग हो गये अथवा अन्य जातियों के वर्चस्व में हो गये।

गाँव ही क्यों, उनके 'देवरे' भी तो उपेक्षा के शिकार होकर बेनिशान और लावारिस हो गये। उनकी इष्टदेवी 'भैंसासरी' को कतिपय विघ्न सन्तोषी लोगों ने या तो उखाड़कर नदी-नाले अथवा वन प्रान्तर में किसी पेड़ के नीचे उपेक्षित और खण्डित अवस्था में फेंक दिया अथवा महिषासुर मर्दिनी के स्थान पर अन्य स्वरूप की स्थापना करके नवीन नामकरण कर दिया गया। आज भी अनेक स्थानों पर मन्दिर अथवा चबूतरे के बाहर महिषासुर मर्दिनी की मूर्ति खण्डित अवस्था में उपेक्षित पड़ी हुई है तथा मन्दिर-चबूतरे पर सिंह वाहिनी दुर्गा की स्थापना कर दी गयी है। अब वह मन्दिर भीलों का न होकर किसी अन्य समाज का कहलाता है। उसकी पूजा भी अब भीलों के हाथ में नहीं रही। उदाहरण के लिए देवरी माता का महिषासुर मर्दिनी का थानक।

### देवरी माता

यह मन्दिर देवरी से उत्तर दिशा में स्थित है। मूल प्रतिमा सोलह भुजा भैंसासरी, उपेक्षित सी मन्दिर के बाहर एक कोने में पड़ी हैं। यहाँ कुछ वर्ष पूर्व तक भील पुजारी पूजा करता था। अब नहीं करता।

**खोहमाता**-कुकड़ेश्वर (मनासा) की खोहमाता अथवा अनेक ऐसे उदाहरण हम गिन सकते हैं। अकेली नीमच तहसील में 31 स्थल भैंसासरी माता के हैं। इन स्थलों में से अधिकतर बल्कि सभी स्थल भील गाँव अथवा ठिकाने रहे। अब वहाँ भीलों का नाम तक नहीं रहा। मनासा-जावद में भी

सभी स्थल लोकमाता भैंसासरी या महिषासुर मर्दिनी के हैं, जिनका सर्वेक्षण होना शेष है। ऐसा ही उदाहरण भादवा गाँव का भी है। कहीं-कहीं तो भैंसासरी की सवारी 'भैंसा' अंकित की गयी है। यह अंकन सम्भवतः 'भैंसासरी' नाम के भ्रमपूर्ण अर्थ के कारण हुआ हो।

### भादवा माता

भादवा गाँव मनासा-नीमच मार्ग से तीन किलोमीटर उत्तर में स्थित है। यह मनासा से 14 किलोमीटर तथा नीमच से 20 किलोमीटर है। भादवा गाँव राजस्व के मान से तहसील नीमच में माना जाता है। इसमें मूल आबादी भीलों की है। भीलों से लगभग साठ वर्ष बाद नागदा ब्राह्मण मेनाल राजस्थान से आकर बसे।

समाजशास्त्र का एक नियत सिद्धान्त है कि बनिया (व्यवसायी) और ब्राह्मण (पुरोहित) कभी पृथक से गाँव नहीं बसाते। वे पूर्व से बसे हुए गाँव में बसना ही उचित तथा सुरक्षित मानते हैं। ये ब्राह्मण परिवार मेनाल (राजस्थान) छोड़कर भादवा क्यों आये, यह बताना कठिन है। मान्यता है कि इनके पूर्वपुरुष पण्डित पीताम्बरदास जी अपने परिवार सहित राज कोप के कारण मेनाल छोड़कर मालवा-मेवाड़ की सीमा वाले इस क्षेत्र में आकर बस गये। कारण जो भी हो।

ऐसी मान्यता है कि पण्डित पीताम्बरदास जी का आगमन यहाँ संवत् 1458 विक्रमी के आसपास हुआ। भील तो यहाँ के मूल निवासी ही माने जाते हैं। सम्भवतः यहाँ पूर्व से ही भीलों का छोटा-सा गाँव मजरा रहा हो और रावल रतनसिंह की मृत्यु और चित्तौड़ के पतन संवत् 1360 विक्रमी के बाद भीलों की कोई और शाखा भी इधर आ निकली हो और स्वजाति बन्धुओं का आश्रय पाकर यहीं बस गयी हो। यह भी सम्भव है कि उसी भील शाखा ने यहाँ आकर पड़ाव डाला हो और नयी बस्ती बसायी हो। मान्यता यह है कि संवत् विक्रमी 1399 में भीलों का एक परिवार इधर आया और यहाँ पानी की सुविधा देखकर बस गया। पानी की सुविधा यहाँ के जलकुण्ड को माना गया होगा। यही जलकुण्ड आज बावड़ी कहलाता

है। यहाँ आने वाले दो भाइयों में से रूपाजी सावन में जा बसे अथवा उन्होंने सावन बसाया। सावन गाँव मनासा-नीमच मार्ग पर मनासा से आठ किलोमीटर तथा भादवा से केवल दो किलोमीटर पर स्थित है। दूसरे भाई धन्नाजी भादवा में बस गये।

यह भी कहा जाता है कि एक बार धन्नाजी अपने भाई रूपाजी से रूठकर एक 'अरणी' पेड़ के नीचे सो रहे थे कि उन्हें सपने में माता ने कहा कि- 'इस अरणी पेड़ के नीचे मेरा 'अंश' दबा हुआ है, उसे खोदकर निकालो और यहीं पर अरणी के नीचे स्थापित कर दो।' धन्नाजी ने सबेरा होने पर वहाँ खुदाई की और नीचे से माता के अंश स्वरूप को निकालकर वहीं एक कच्चा चबूतरा बनाकर स्थापित कर दिया तथा सिन्दूर-पत्नी-पाठा लगाकर पूजा करने लगा। तब से लगाकर आज तक उनका परिवार-वंश माता की पूजा करता चला आ रहा है। यही माता 'भादवा की माता' नाम से सर्वपूज्य है। एक मान्यता यह भी है कि दुबारा माता की स्थापना के पश्चात् मोड़ी माता (तहसील-जावद) से जोत लाकर स्थान को जागृत किया गया। भादवा माता का पुजारी परिवार व मोड़ी का भील पुजारी परिवार का मामा-भांजा परिवार है। इसके लिए एक विरद बखाण प्रसिद्ध है-

*आदधाम आँतरी, मोड़ी तखत मँडाण।*

*भादवा जोत ज्वाल की, सतियाँ से सत जाण ॥*

*मसरोली मेहमा घणी, महुए मात पखाण।*

*साँगाखेड़ा आवरी, दूदाखेड़ी सकराण ॥*

जो भी सत्य हो, यह स्थान प्राचीन समय से जागृत शक्तिपीठ है। इस मान्यता से इतना तो स्पष्ट हो ही जाता है कि माता की स्थापना भीलों (धन्नाजी-रूपाजी) तथा पण्डित पीताम्बरदासजी से भी पहले वहाँ पर थी। पण्डित पीताम्बरदासजी का वंश-परिवार भी माता के सपने की यही बात कहकर पण्डित पीताम्बरदासजी द्वारा अरणी के नीचे दबी माता के अंश को निकालने की बात कहकर पूजा कर अपना अधिकार जताता है।

यदि वहाँ अरणी के पेड़ के नीचे माताजी की स्थापना पूर्व से थी (जो सम्भवतः किन्हीं कारणों से दब गई हो। इसका कारण गाँव का बेचिराग हो

जाना भी हो सकता है।)। अर्थात् वहाँ तब गाँव-बस्ती का अस्तित्व भी था। आज भी अनेक मूर्तियाँ पेड़ों के नीचे या अन्यत्र दबी हुई पाई जाती हैं। अन्तर केवल इतना ही है कि वह सपना धन्नाजी भील को 1399-1400 विक्रमी के समय 'एक रात में' आया और पण्डित पीताम्बरदासजी को वह सपना विक्रमी संवत् 1532 में 'एक दिन' आया।

इसी सन्दर्भ में एक लोककथा के अनुसार अपने युद्धरत् पति को घायल अवस्था में लेकर कोई वीरांगना घोड़े पर सवार होकर यहाँ पहुँची। यहाँ अरणी के नीचे पानी के कुण्ड के पास उसने अपना घोड़ा रोका। उसका पति मर चुका था। जब वह अपने पति के शव को लेकर वहाँ बैठी थी, तभी उसे 'सत चढ़ा', ठीक उसी समय वहाँ पीछा करते शत्रु-घुड़सवार भी आ पहुँचे। सती की आँखों में क्रोध की ज्वाला फूटी और सभी शत्रु अपने घोड़ों सहित लुंज-पुंज होकर जहाँ के तहाँ ढेर हो गये। इसी बीच गाँव की भील स्त्रियाँ और भील पुरुष वहाँ आ पहुँचे। सबने सती से प्रार्थना की कि वे कुपित न हों। हमारे गाँव पर कृपा करें। तब सती का क्रोध शान्त हुआ। सती अपने सत के ओज से पति के शव को गोद में लेकर ध्यानमग्न हुई और प्राण त्याग दिये। भील समुदाय ने उसी स्थिति में दोनों का दाह संस्कार कर दिया। बाद में सती कँवराणी ने भावरूप से भील मुखिया के शरीर में प्रवेश कर कहा कि तुम इस कुण्ड का जल लुंज-पुंज पड़े व्यक्तियों और घोड़ों पर छिड़क दो तथा मेरी भस्म लगा दो। ये पुनः 'जस के तस' हो जायेंगे। भीलों ने ऐसा ही किया। वे सब ठीक हो गये और सती की भस्म माथे पर लगाकर वहाँ से लौट गये। भीलों ने सतीस्थल पर अरणी के नीचे माता की स्थापना की। वह माता तब से उस भील गाँव भादवा की माता के रूप में पूजी जाने लगीं। भील लोग अपनी मान्यता के अनुसार भादवा की माता को पूजते रहे। आज भी पूज रहे हैं। माता को कोई स्वरूप नाम नहीं दिया गया।

सम्भव है, पूर्व में भीलों द्वारा स्थापित की गयी वही माता धरती में दब गई हो, जिसे बाद में भील श्री धन्नाजी ने निकालकर पुनः स्थापित किया हो। भादवा की माता के पुजारी परिवार के पास राणा 'मोकल' का पट्टा है,

जिसमें उन्हें माताजी की पूजा का अधिकार दिया गया है।

राणा मोकल ने पुजारियों को भूमिदान भी दिया। राणा मोकल का उधर आना और अनेक पूजास्थलों एवं तालाबों-बावड़ियों के निर्माण के लिए अनुदान देने के कई प्रमाण मिलते हैं। भादवा माता का यह पट्टा संवत् विक्रमी सन् 1482 का है। ऐसा ही एक पट्टा इसी समय का पड़दाँ गाँव के गोस्वामी परिवार के पास भी है, जो वहाँ के मठ की पूजा-व्यवस्था के लिए बावन बीघा जमीन का है। यह पट्टा गोस्वामी रामेश्वर गिरि जी के नाम से है। ठीक इसी समय मोकलजी ने पड़दाँ के तालाब की पाल निर्माण के लिए नगद राशि भी प्रदान की थी। इन पट्टों पर राणा मोकल के नाना रणमल के हस्ताक्षर भी हैं। तब मोकल बालक थे और रणमल उनके संरक्षक थे। इन्हीं रणमल के पुत्र जोधाजी ने बाद में जोधपुर की स्थापना की।

भादवा की माता का नामकरण वहाँ के ब्राह्मण परिवारों के अनुसार 'बीजासन' माता है। लोक मान्यता के अनुसार 'बीजासन' को दुर्गा का बीसवाँ रूप माना गया है—

*बीसवाँ रूप बीजासन केवाणी।*

*वी गई मांडा-शादी में अगवाणी ॥*

कुछ धारणाओं के अनुसार माता का स्वरूप भैंसासरी का है, जैसा कि अन्य भील आस्था स्थलों का भी है। माता का नाम तो केवल माता ही होता है। उनके नाम तो समय एवं परिस्थितियों के कारण भिन्न-भिन्न हैं। सारा क्षेत्र भादवा की माता को 'भादवा माता' ही पुकारता है। माता की मुख्य प्रतिमा के समक्ष नवदुर्गाएँ स्थापित-प्रतिष्ठित हैं।

सम्भवतः मूल में माता का स्वरूप वैष्णो देवी के समान एक 'पिण्डी' के रूप में ही रहा हो। पश्चात् सुविधा अनुसार 'पिण्डी' पर माता का स्वरूप आँख-नाक-कान आदि स्थापित किये गये हों। जो भी हो, यह भादवा की राणी सबके संकट दूर करती हैं। जो भी दुःखी इनकी शरण में आ जाता है, वह निराश नहीं लौटता।

कहते हैं— बहुत समय पहले यहाँ बलि होती थी, किन्तु अब यहाँ बलि नहीं होती। यह बात भिन्न है कि कुछ जातियाँ अपनी इच्छापूर्ति के

कारण माता के नाम से स्थान से कहीं दूर बलि देती भी हों। प्रमाण नहीं मिलता। बकरे-मुर्गे माताजी पर मन्नत पूरी होने पर 'अमरे' छोड़े जाते थे। अब प्रतीक रूप में चाँदी के बकरे और मुर्गे चढ़ाने का भी प्रावधान किया गया है।

यह स्थान 'आरोग्य तीर्थ' के नाम से पूज्य है। मुख्य रूप से लकवे के मरीज यहाँ आते हैं। पवित्र बावड़ी के जल से स्नान करते हैं, माता की भभूत बदन पर लगाते एवं प्रसाद के रूप में खाते हैं और ठीक हो जाते हैं। गूँगे-बहरों को माता ध्वनि एवं वाणी प्रदान करती हैं। नेत्रहीनों को ज्योति। निपूतों को सपूता बनाती हैं। माँ की कृपा सब पर एक समान है।

*बारा रोग भभूत, तेरा रोग पाणी।*

*पच्चीस रोग मेंट करें भादवा की राणी ॥*

सन् 1935 से यहाँ की व्यवस्था ट्रस्ट के अधिकार में है। ट्रस्ट बनने के बाद यहाँ की व्यवस्था में बहुत सुधार हुआ है। मन्दिर भव्य एवं सुन्दर निर्माणाधीन है। संगमरमर से बनने वाले मन्दिर की भव्यता का बखान कठिन है। वर्ष में दो बार चैत्र एवं आसोज की नवरात्रि पर दस दिन का मेला यहाँ पड़ता है। लाखों तीर्थयात्री और हज़ारों रोगी माँ की कृपा प्राप्त कर धन्य होते हैं। सम्पूर्ण मालवा क्षेत्र में तथा राजस्थान, गुजरात, महाराष्ट्र आदि क्षेत्रों से यात्री माता के दर्शन करने आते हैं। वैसे तो माता के दर्शनों के लिए प्रतिदिन भीड़ बनी रहती है, किन्तु प्रति रविवार को तो भीड़ बहुत बढ़ जाती है। 'भादवा माता की जय' और 'भादवा की राणी की जय' के जयघोष दिन-रात यहाँ गूँजते ही रहते हैं। वर्तमान में भादवा माता की पूजा भील परिवार ही कर रहे हैं।

### विंशोत्तरी माता सावन

विंशोत्तरी अर्थात् बीस भुजा माता। नीमच तहसील के गाँव सावन की बीस भुजा माता की श्वेत-पीत बलुआश्म से निर्मित अप्रतिम दशपुर जनपद की अब तक उपलब्ध महिषमर्दिनी (भैंसासरी) माताओं में सबसे सुन्दर और प्रभावनी है। पुराविदों ने इसे ग्यारहवीं-बारहवीं शताब्दी अर्थात्

परमारकालीन मूर्ति कहा है। इस क्षेत्र में उपलब्ध महिषमर्दिनी माता की जितनी भी इस प्रकार की मूर्तियाँ प्राप्त हुई हैं, वे लगभग इसी काल की हैं। नौवीं शताब्दी से बारहवीं शताब्दी में इस प्रकार की मूर्तियाँ निर्मित की गयीं। मेरे अब तक के सर्वेक्षण के अनुसार इस जनपद में उपलब्ध, अब तक उपलब्ध भैंसासरी माताओं में से अधिकतर माताओं के पुजारी भील समुदाय के हैं। यदि किसी अन्य समुदाय के पुजारी के पास पूजा है, तो वह पश्चात् काल की है। इस विंशोत्तरी माता की पूजा वर्तमान में गोस्वामी परिवार कर रहा है। यदि हम मूर्ति के निर्माण काल को प्रामाणिक मान लें, तो यह भी देखना होगा कि क्या उस काल अर्थात् 11-12 वीं शताब्दी में कोई गोस्वामी परिवार यहाँ था?

यदि नहीं था, तो फिर इस माता की पूजा तब कौन-सा समाज करता था? आम्बा पराल्या की बीस भुजा माता और कनेरा की विंशोत्तरी माता की पूजा भील परिवार करता चला आ रहा है। वह आज भी भील समुदाय की आस्था देवी है। बीस भुजा माताएँ ही क्यों, अष्ट भुजी, बारह भुजी, सोलह भुजी और छः भुजी भैंसासरी माताओं की पूजा भी भील समुदाय ही करता चला आ रहा है। बिसलवास-बामणी की बारह भुजी माता हो, कनावटी या फिर दशपुर जनपद की अन्य अनेक भैंसासरी प्रतिमाएँ। शिला पर उकेरी गयी मूर्तियाँ अथवा पिण्डी रूप में स्थापित माताएँ हों। जहाँ-जहाँ भील समुदाय का पराभव व पलायन हुआ, इन माताओं की पूजा अन्य समाज को सौंप दी गयी। गोस्वामी परिवार भी शाक्त-धर्मा होते हैं। इस कारण बहुत सम्भव है- सावन से भीलों के पराभव के बाद यहाँ की पूजा की व्यवस्था गाँव के लोगों ने गोस्वामी परिवार को सौंप दी हो। इतना तो सत्य है कि सम्पूर्ण अरावली पठार क्षेत्र के विस्तार तक एवं इधर मनासा, रामपुरा-भानपुरा-शामगढ़ तक कनावटी और प्रतापगढ़ की सीमा तक भील समुदाय का क्षेत्र रहा है। भील समुदाय की इष्टदेवी एवं कुलदेवी के रूप में भैंसासरी माता, जिसे शास्त्रीय शब्दावली में महिषमर्दिनी या महिषासुर मर्दिनी कहा गया है, आराध्य देवी के रूप में पूज्य रही हैं। इसलिए इस सम्भावना से इंकार नहीं किया जा सकता है कि सावन की विंशोत्तरी माता भी किसी

समय भील समुदायों की आराध्य देवी रही हों तथा इसकी पूजा भी भील समुदाय ही करता रहा हो। विंशोत्तरी माता के दक्षिणी भाग में विशाल तालाब इस क्षेत्र का जीवनरक्षक जलस्रोत है। अब तक माता का सामान्य चबूतरे पर कवेलूदार कच्चा घर था। उसी घर में यह भील माता (यह लोकमाता) सम्पूज्य थी। आज यह स्थान फिर जागृत हुआ। यहाँ भव्य मन्दिर एवं सुन्दर परिसर बन गया है। यह माता समूचे क्षेत्र की दुःख हारिणी माता है। अन्न, धन, संतान, सुहाग, भाग की दात्री एवं राखणहार है।

### देवरी की भैंसासरी माता

नीमच तहसील के गाँव देवरी में मुख्य सड़क से उत्तर में लगभग एक किलोमीटर दूरी पर सोलह भुजी भैंसासरी माता का स्थान है। किन्हीं लोगों के कारण यह मूर्ति खण्डित हो गयी, तब गाँव के लोगों ने उस खण्डित मूर्ति को हटाकर उसे बाहर रख दिया और वहाँ बढिया मन्दिर बना दिया। एक मूर्ति जो वहाँ स्थापित है, वह आसावरी माता हैं। यह देवड़ा राजपूतों की कुलदेवी हैं। जब तक यहाँ भैंसासरी की मूल मूर्ति स्थापित थी, तब तक उस चबूतरे पर स्थापित माता की पूजा भील ही करता रहा। भीलों की वह आस्था देवी हैं। मूर्ति हटा देने के बाद भी वहाँ भील इसकी पूजा करते रहे। बाद में भील पुजारी को रोककर नागदा ब्राह्मण द्वारा अन्नपूर्णा के नाम से माता की पूजा की जाने लगी। फिर कुछ लोगों को इस बदलाव का प्रभाव मालूम पड़ा, तब माता का नाम महिषासुर मर्दिनी ही रखा गया। यह गाँव भील संकुल का ही गाँव रहा है। यह स्थान आज भी जागृत स्थान है। अब यह लोकमाता सर्वसमाज के रूप में सम्पूज्य है। किसी समय यहाँ चौकी होती थी। भाव भी आता था, बलि भी होती थी, जवारे बोये जाते थे। नवरात्रों में विधि-विधान से हवन-पूजा होती थी। भाव, जावरे गाँव से निकाले जाते थे। पूरे क्षेत्र का यह दुःख निवारण तीर्थ था। आज फिर इस माता का प्रभाव जागृत हुआ है। अब भाव नहीं आता है, बलि भी नहीं होती। दिशा बलि मन्त्र-मनौती वाले करते हैं। नवरात्रि में भी दिशा से बलि होती है।

## रक्ताभरी माता

रक्ताभरी माता नीमच में महु रोड पर स्थित हैं। यह मूर्ति संवत् 1856 के अकाल के बाद फैली महामारी से रक्षा करने के लिए इस क्षेत्र के आदिवासी समुदाय ने स्थापित की थी। अकाल की भुखमरी और महामारी के कारण गाँव के गाँव उजाड़ बेचिराग हो गये थे, तब आदिवासी समुदाय के लोगों ने अपने आस्था देवी भैंसासरी से रक्षा की प्रार्थना की। सबने मिलकर कई दिनों तक भूखे प्यासे रहकर माँ के दरबार में गुहार लगायी। भैंसासरी माता ने भाव रूप से रगत्या भील के शरीर में आकर कहा कि मेरे स्थान के पास मेरे स्वरूप मरी माता और भूखी माता की स्थापना करो। दोनों बहनें अकाल और महामारी से रक्षा करेंगी। तब दोनों माताओं की स्थापना की गई। समय की गति ऐसी हुई कि स्वयं भैंसासरी माता, मरी माता और भूखी माता की मूर्तियाँ जमीन में दब गईं।

कुछ लोगों की मान्यता है कि तीनों माताओं का पुजारी रगत्या की तीसरी पीढ़ी में जो भोपा हुआ, उसने संयम नियम नहीं रखा। माताएँ नाराज हो गईं और अपने-अपने थानक समेत धरती में समा गईं। यह माँ तीन रूप होकर भी एक रूप है। मृत्यु पर अधिकार करने वाली मरी माता सबका कल्याण करती हैं। अशोक कुमार अटवाल को माँ ने परचा दिया। वह माता का रूप जानकर माँ की सेवा करने लगा। माता ने ही उसे कहा मैं रगत्या की मरी माँ हूँ, तुम मेरी सेवा करो। अशोक ने माता का नाम रक्त मरी माता रखा और सेवा करने लगा। यह रक्त भरी माता ही रगत्या की माता है। यही भूखी माता है। यही भैंसासरी माता है। माता के दर्शन तीन काल में प्रतिदिन तीनों माताओं के होते हैं। इन्दौर, भोपाल और देवास में मरी माता के मन्दिर हैं। वैशाख की तेरस पर 21 बकरों की बलि माता स्वीकार करती हैं। वर्ष भर यहाँ श्रद्धालुओं की भीड़ लगी रहती है।

गिरहा समाज के अलावा समग्र समाज रक्त मरी माता की पूजा करता है। मन्नत मानता है, मन्नत पूरी होने पर मनौती चढ़ाता है। बलि का विधान वर्ष भर चलता है। माता सबके दोरम मेटती है। जो जैसी पूजा करता है, भेंट चढ़ाता है, माँ स्वीकारती हैं।

## जीरन की सप्त मातृकाएँ

पंच देवल मन्दिर में सप्त मातृकाओं की एक प्रतिमा जड़ी हुई है। सम्भवतः मन्दिर के पुनर्निर्माण के समय अन्य अनेक मूर्तियों के साथ सप्तमातृक की मूर्ति को भी जड़ दिया गया होगा। सप्त मातृकाएँ, जिन्हें अछरा माई भी कहा जाता है। दशपुर जनपद में अनेक स्थानों पर पाई गई हैं। इसका उल्लेख पुस्तक में अलग से किया गया है। बरूखेड़ा में भी स्तम्भ पर सप्त मातृकाओं की कुरावन की गई है। संख्या आठ होने पर इन्हें आष्टमातृका कहा जाता है। कहीं-कहीं संख्या नौ भी मिलती है।

## बागेश्वरी माता

पंचदेवल मार्ग पर बागेश्वर भैंसासरी का मन्दिर है। यह महिषासुरी मूर्ति दो सिरों वाली है। एक छह भुजी। इस माता के हाथों में त्रिशूल, छुरी, खड्ग, घण्टी, धनुष व छोटे हाथ में महिष की पूँछ पकड़े है। महिष का मुँह बायीं ओर अंकित है, जिसे भैंसासरी ने दाहिने पैर से दबा रखा है। माता वीरासन में खड़ी हैं। समीप ही एक और प्रतिमा में महिष का मुँह दाहिनी ओर है। अनुमान है, यह अद्भुत कलाकृति नवीं-दसवीं शताब्दी की है।

## सती माता

जीरन तालाब के किनारे पंच देवल मन्दिर में सती माता का मन्दिर बना है। इसका निर्माण छोटी सादड़ी के किसी स्वर्णकार ने संवत् 1549 में करवाया था। एक और सतीस्थल शक्तावतों की सतियों का है। दो सतियाँ एक साथ सती हुईं। देवल पर तलवार-खड्ग लिये एक पुरुष के साथ चार स्त्रियाँ अंकित हैं।

## भँवर माता

दशपुर की मेवाड़ी सीमा पर छोटी सादड़ी के निकट भँवर माता का मन्दिर है। यह मन्दिर प्रकृति की गोद में स्थित मनोरम एवं शान्त स्थल है। भ्रामरी माता का उल्लेख पुराण वर्णित देवियों में मान्य है। दुर्गा सप्तशती के



ग्यारहवें अध्याय में- 'तदाहं भ्रामर रूपं कृत्वा असंख्येष्टपदम, त्रैलोक्य  
हितार्थाय वधिष्यामि महासुरभ।' कहकर भ्रामरी देवी को असुर मर्दिनी और  
लोकहितकारिणी माता के अवतार रूप में उल्लेखित किया गया है। जनजातियों  
की गेय गाथाओं में भी भ्रामरी या भँवर माता का उल्लेख मिलता है। उदाहरणार्थ-

सिंगोली का गोर राव ने, मिंदरयो चिणवायो  
तथा राजलगढ़ का ठाकर ने होना को कलस चढ़ायो।  
मीणा पूजे भील सदाँ, भमत्या को ध्यान लगावे।  
सबै ठिकानेदार मात ने कुलदेवी ज्यों ध्यावें॥

( 'भील ठिकाणा की विरदगाथा', पद-66 से 75, डॉ. पूरन सहगल)

सिंगोली के गौरवंशीय राजा यशगुप्त के एक शिलालेख विक्रम 547  
माघ शुक्ला 10 तिथि के अनुसार गौर राजा ने अपनी माता हरिशूरा की स्मृति  
में मन्दिर का निर्माण करवाया। प्रसिद्ध इतिहासकार कर्नल टाड ने भी  
मेवाड़ के इतिहास में भँवर माता का उल्लेख किया है। माता की स्थापना के  
स्वरूप दर्शन करने पर वहाँ तीन मूर्तियों के दर्शन होते हैं। मध्य में भँवर  
माता, दाहिनी ओर कालका माता और बायीं ओर आवरी ( आसावरी ) माता  
के स्वरूप प्रतिष्ठित हैं। दोनों मूर्तियों की स्थापना विभिन्न अवसरों पर आस्तिकों  
की आस्था के अनुसार प्रतिष्ठित की गयी।

भले ही भ्रामरी माता पुराण देवी के रूप में जगमान्य हों, किन्तु ' भँवर  
माता' तो लोकमान्य हैं। यह भील मीणा समुदाय की आस्था देवी है। आज  
भी पूजा भील-मीणों ही करते हैं। ट्रस्ट मन्दिर की व्यवस्था देखता है। एक  
जनश्रुति के अनुसार भँवर माता गूजर कन्या थी। कुछ लोग उन्हें मीणा  
समुदाय की कन्या भी मानते हैं। जब भयंकर अकाल पड़ा और पशुओं के  
लिए चारा पानी मिलना दुर्लभ हो गया, तब वह कन्या अपने और गाँव के  
पशुओं को एक 'दोह' में से पानी निकालकर पिलाती थी। वह अकेली  
जाकर नदी के दोह में उतार जाती थी। उसके दोह में उतरते ही दोह पानी से  
भर जाता और पानी बहने लगता था। सभी ग्वाल-बाल एक निर्धारित स्थान  
पर पशुओं को पानी पिलाते थे। ऐसा वह दिन में दो बार करती थी - एक  
बार प्रातः, एक बार संध्या समय। उसने सबसे कह रखा था कि कोई भी

यह रहस्य उजागर नहीं करेगा। गाँव वालों को जब यह ज्ञात हुआ कि पशु  
तृप्त होकर पानी पीते हैं, तब उन्होंने ग्वालों से पूछा। बात उजागर हो गई।  
कुछ लोगों ने छुपकर ' भँवरबाई' का चमत्कार देख लिया। जैसे ही भँवरबाई  
वस्त्र उतारकर दोह में उतरी सूखी दोह पानी से भर गयी। फिर वह पानी बह  
चला। पशुओं ने तृप्त होकर पानी पिया। उस दिन भँवरबाई दोह से बाहर नहीं  
निकली। बार-बार पुकारने पर भीतर से आवाज़ आयी- 'तुम सबने मुझे नग्न  
अवस्था में देख लिया है, मैं बाहर नहीं आ सकती।' भँवरबाई बाहर नहीं  
आयी। एक जोत बाहर आयी और माता की मूर्ति में समा गई। तब से भ्रामरी  
माता भँवर माता के नाम से पूज्य हुई। वह कन्या माँ भ्रामरी का ही अवतार  
थी।

एक और लोककथा के अनुसार वर्तमान मन्दिर के सामने ऊँची  
पहाड़ी पर किला था, जिसका नाम था राजलगढ़। राजलगढ़ के राजपूत राजा  
की कन्या को भँवर माता का इष्ट था। दोनों में सखी भाव था। राजा की कन्या  
अपनी सखी भँवरबाई से मिलने आती। दोनों साथ-साथ रमतीं, बातें करतीं  
और फिर राजा की कन्या अपने घर घोड़े पर सवार होकर लौट जाती थी।  
यह सखी भाव जगजाहिर था। कहते हैं- विलम्ब हो जाने पर माता अपने शेर  
पर बैठकर अपनी सखी को छोड़ने महल तक जाती थी। वह राजकन्या  
किसी राजकुँवर से प्रेम करने लगी। इसी बीच राजकन्या के रूप की चर्चा  
किसी सुल्तान तक पहुँची। सुल्तान ने राजलगढ़ के राजा से अपनी पुत्री की  
शादी उससे करने का सन्देश भेजा। उत्तर में राजा ने मना कर दिया। सुल्तान  
ने राजलगढ़ को घेर लिया। राजकन्या ने अपनी सखी भँवर माता का स्मरण  
किया। माता महलों में प्रकट हुई और उन्होंने राजकन्या का विवाह उसके  
चहेते राजकुँवर से करवा दिया। जब सुल्तान को यह घटना ज्ञात हुई, तब  
उसने युद्ध की घोषणा कर दी। सुल्तान की सेना बड़ी थी। राजलगढ़ की  
सेना छोटी। राजकन्या ने फिर अपनी सखी को पुकारा। माता स्वयं कई रूप  
धर युद्ध में जा पहुँची और सुल्तान तथा उसके सेनापतियों का वध कर  
दिया। माता के साथ सेना के रूप में असंख्य भँवर मक्खियाँ थीं। उन  
मधुमक्खियों के आक्रमण से सुल्तान की सेना के पैर उखड़ गये और वह

मैदान छोड़कर भाग खड़ी हुई। राजलगढ़ का राजा स्वयं नंगे पैर परिवार सहित माँ की शरण में आया और उन्हें अपनी कुलदेवी मानकर पूजा – अर्चना की। माता ने चूनरी, काँचरी और चूड़ला देकर अपनी सखी को उसके परण्ये के साथ विदा किया। माता ने राजकुँवर को भी सोने के मूठ की तलवार तथा सरपाव भेंट में दिया। भील-मीणों की आस्था देवी तथा राजपरिवारों की कुलदेवी भँवर माता जन-जन की आस्था देवी हैं। वे लोकमाता हैं। दूध-पूत की देने वाली हैं। भय हारिणी भँवर माता का यह मनोरम धाम पूरे राजस्थान और मालवा के दशपुर क्षेत्र का तीर्थ है। प्रतिदिन अनेक भक्त माँ का आशीर्वाद प्राप्त करने आते हैं। मन्नत-मनौती धारते हैं तथा पूरने पर चढ़ावा चढ़ाते हैं। पूर्वकाल में माँ के समक्ष बलि होती थी। अब ट्रस्ट बन जाने के बाद स्थान पर बलि नहीं होती, दिशा बलि होती है।

### मोड़ी की खराड़ी माता

जावद तहसील का मोड़ी ठिकाना और नीमच तहसील का सेमली चन्द्रावत ठिकाना। दोनों ठिकानों के और दोनों तहसीलों के सीमा क्षेत्र में स्थित मोड़ी माता का लोकतीर्थ। यह माता मोड़ी ठिकाने के सिसोदियों व सेमली ठिकाने के चन्द्रावतों की आराध्य देवी खराड़ी भील समुदाय की कुलदेवी एवं समूचे जनपद की आस्था देवी होकर सबके द्वारा सम्पूज्य लोकदेवी हैं।

मोड़ी नाम ठिकाना मोड़ी के कारण हुआ। मोड़ी माता अर्थात् मोड़ी गाँव में स्थित माता। वैसे यह माता मोड़ी गाँव व सेमली गाँव के मध्य में होने के कारण इसे सेमली माता भी कहा जा सकता था। माताजी के वर्तमान पुजारी लगभग दस-बारह पीढ़ियों अर्थात् ढाई-तीन सौ वर्षों से इस माता की सेवा कर रहे हैं। यह पुजारी परिवार खराड़ी गौत्रज भील होने के कारण तथा इस परिवार का मोड़ी निवास होने के कारण इसे मोड़ी माता या मोड़ी की माता कहा जाता है। पूर्व में खेड़ा की माता या खेड़ा माता कहा जाता था। जहाँ माताजी का स्थान है, वही पहले भीलों का गाँव खेड़ा था। खेड़ा गाँव पर किसी समय काट (क्रत्लेआम) पड़ी। उस काट में खेड़ा वीरान हो गया। माता के स्थान पर यात्रियों के ठहरने के लिए सराय बनी हुई है। वर्तमान में माता की पूजा मदनलाल खराड़ी भील व उनके भाई क्रम से



करते हैं। यहाँ किसी को माताजी का भाव नहीं आता। माता स्वयं अर्ज सुनती हैं और फल प्रदान करती हैं। लकवे के मरीजों के लिए यह शक्तिस्थल विशेष रूप से हितकर है। वैसे सभी प्रकार के दुखिया-सुखिया लोग यहाँ धोकने आते हैं। माता राणी सबका हेला (पुकार) सुनती हैं। दर्शनार्थियों का आना-जाना दिन भर लगा ही रहता है। नारियल, अगरबत्ती, खाँडचणे और पेड़े-पेठे का प्रसाद चढ़ाया जाता है। बलि के लिए पूर्व में निज स्थान पर अनुमति थी। अब अन्यत्र दिशा मान से बलि दी जाती है। कुछ आस्तिक जन जीव की बलि चढ़ाने के बजाय माताजी के समक्ष मुर्गा छोड़ जाते हैं।

पुजारी मदनलाल खराड़ी के अनुसार एक समय भादवा माता में वहाँ का स्थान जागृत करने के लिए यहाँ से जोत ले जायी गयी थी। ऐसा कहा जाता है- किसी समय भादवा गाँव में भी काट पड़ी और गाँव वीरान हो गया। वर्तमान बावड़ी के स्थान पर तब कच्चा कुँआ था। वहीं एक कच्चे ओटले पर माताजी विराजमान थीं। गाँव के साथ-साथ माताजी का ओटला भी वीरान हो गया। माताजी अरनी के पेड़ के नीचे दब गयीं। भादवा माता गाँव फिर बसा। वहाँ का एक भाई मोड़ी में अपनी बहन के यहाँ रहकर गुजर-बसर करता था। वही माताजी की सेवा भी करता था। उसे सपना आया- 'तू यहाँ सेवा कर रहा है, उधर भादवा में अरनी के नीचे मेरी बहन दबी पड़ी है। तू परौड़े वहाँ जा और उसे निकालकर दुबारा माता की थापणा कर'।

इस प्रकार भादवा में दुबारा माता की स्थापना हुई और मोड़ी माता स्थल से जोत ले जाकर भादवा माता स्थल को जागृत किया गया। भादवा का पुजारी भील परिवार मोड़ी के पुजारी भील परिवार का मामा परिवार है। देवरी (तहसील-नीमच) की भैंसासरी माता के पुजारी इनके भाईबन्द होकर भील ही हैं। मोड़ी माता के लिए एक सन्दर्भ कथा जनजीवन में प्रचलित है-

एक समय इस इलाके में भयंकर अकाल पड़ा। यहाँ के राजा ने सब लोगों को बुलाकर कहा- जितने गाँव हैं, हर गाँव में एक तालाब खोदना है। प्रति मजदूर डेढ़ पाव (लगभग तीन सौ पचास ग्राम) अनाज प्रतिदिन

मिलेगा। बिना श्रम किये खाना उचित नहीं होता। जब तक राजभण्डार में जवार-बाजरी है, तब तक तो कोई भूखा नहीं रहेगा। उसके बाद जैसा माँ भगवती चाहेंगी, वैसा होगा। जब तक सुकाल नहीं आयेगा, मैं भी जवार-बाजरी ही खाऊँगा, धरती पर सोऊँगा और मीठा नहीं खाऊँगा। जैसे मेरी प्रजा रहेगी, वैसा मैं भी रहूँगा। पूरे राज में तालाब खुदने लगे। धान मजदूरी बँटने लगी। अधिक बस्ती भीलों की थी। एक बूढ़ी माँ भी उस गाँव में रहती थी। अकेली थी। वह राजा के पास गई और अर्ज की- 'महाराज! मैं तो बूढ़ी औरत हूँ। मजदूरी कुछ होती नहीं, मेरा पेट कैसे भरेगा?' राजा ने कहा- 'तुम प्याऊ पर बैठो। राजमजदूर मटकों में पानी भर देंगे। तुम मजदूरों को थोड़ा-थोड़ा पानी पिलाना। ध्यान रखना, पानी का अकाल है, पानी बिगड़े नहीं। तुम्हें भी सबके साथ डेढ़ पाव जवार-बाजरी मिला करेगी।' बूढ़ी माँ भी जवार-बाजरी ले आती। बूढ़ी माँ का नियम था, चिड़ियों को दाना खिलाना और चींटियों को आटा खिलाना। वह अपने हिस्से में से आधा अनाज चिड़ियों और चींटियों को खिलाती थी, शेष वह खुद खा लेती। इसके अलावा वह प्रतिदिन घर-घर जाकर चिमटी भर आटा और चिमटी भर अनाज माँगकर लाती और चिड़ियों एवं चींटियों को खिला देती। ऐसा करते-करते साल बीत गया। आषाढ़ आ गया। पानी नहीं बरसा। किसान घबराये, राजा निराश हुआ, बूढ़ी माँ ने आशा नहीं छोड़ी। एक दिन वह माँ के चरण-शरण गई और अर्ज करी कि- माँ! दया करो। काल को सुकाल करो। दरबार में बैठे-बैठे आठ दिन बीत गये। एक दाना अन्न भी नहीं खाया। जितना अनाज माता के दरबार में आता, उसे वह चिड़ियों और चींटियों को बाँट देती। एक दिन, दिन ढले माँ प्रकट हुई। उन्होंने कहा- 'माँ, तुम जीत गई, मैं हार गई।' 'खोरो माँड' भीलण माँ ने आँचल पसार दिया। भैंसासरी ने भीलण माँ के आँचल में एक धोबा (दो हाथों का कर-पात्र) जवार-बाजरी डालकर कहा- 'जा, घर-घर सबकी कोठी में दो-दो दाने डाल देना। प्रभात में सबकी कोठियाँ अनाज से भर जायेंगी। आज से आठवें दिन ज़ोर से पानी बरसेगा। काल टूटेगा, सुकाल आयेगा। तब तू मेरे भीतर समायेगी। तब से तेरा-मेरा भाव रूप एक हो जायेगा।' भीलमाता ने

जगराणी के आदेश से घर-घर जाकर सबकी कोठियों में दो-दो आखें डाल दिये। अगले दिन प्रभात में सबकी कोठियाँ धान से भरपूर हो गयीं। आठ दिन बाद खूब पानी बरसा, काल टूट गया। सब लोग ढोल-ढमाके से माँ के दरबार में आये। भीलण माँ जगदम्बा के दरबार में आलती-पालती लगाकर बैठ गई। थोड़ी देर में उसके हृदय से जोत निकली और माँ की मूर्त में समा गई। भीलण माँ की देह बैठी की बैठी रह गई। चारों ओर भीलण माँ की और मोड़ी माता की जय-जयकार होने लगी। राजा खुद वहाँ आया। पूरे सम्मान से नारियल-चन्दन में भीलण माँ की देह का संस्कार किया गया। इसी कारण कुछ समय तक लोग मोड़ी माता को खराड़ी माता (भीलमाता का गोत्रनाम) ही कहने लगे। बाद में इन्हें मोड़ी माता ही कहा जाने लगा।

खराड़ी माता (भीलमाता) का जस आज भी पुराने लोग बखानते हैं। मोड़ी माता भीलों, राजपूतों की ही नहीं, समूचे समाज की माता है। जो भी माँ के दरबार में आता है, माँ उस पर अपनी कृपा अवश्य करती हैं।

### खोर की गोरज्या माता

गोरज्या अर्थात् गौरी। लोकजीवन में अपनत्व वश अथवा अति लाड़वश गौरी को गोरज्या माता पुकारा जाता है। आदिवासी समुदाय की यह आस्था देवी है। गिरिजा ही तो गोरज्या है। यही गोरज्या ही गवरी है। जिस प्रकार पुराण देवी महिषासुर मर्दिनी लोक में 'भैंसासरी माता' है, उसी प्रकार हमारी जगमाता पुराणों में पार्वती, गौरी या गिरिजा है, तो लोकमाता के रूप में वह गवरी या गोरज्या है।

गोरज्या माता के दो रूप माने जाते हैं- धड़ावण और वलावण। श्राद्धपक्ष के मध्य किसी भी शुक्रवार के दिन गोरज्या की पूजा की जाती है। धड़ावण स्वरूप के लिए रतिजगा दिया जाता है। शिव ब्यावला की लीला बखानी जाती है। खेल भी किया जाता है। वलावण स्वरूप में गोरज्या माता की सवारी निकाली जाती है। बाँस खीपचियों का विमान (बेवाण) बनाकर उसमें गोरज्या माता की मिट्टी की बनी मूर्ति बनाकर विराजित करवायी जाती है। उसे खूब सजाया-सँवारा जाता है। बाद में जौ के जवारों से पूजकर

धूमधाम से जलाशय में सिरा दिया जाता है। गोरज्या आदिवासी समुदाय की 'बेन्याबाई' है। क्यों न हो, दोनों का वास गिरिकानन में। दोनों ही आदिवासी। दोनों ही आदिपूज्य। इसीलिए शिव भी आदिवासी समुदाय के परमपूज्य हैं। शिव तो उनके दामाद हुए। दामाद का महत्त्व भारतीय संस्कृति में सर्वप्रथम पूज्य है।

जावद तहसील के पुरातात्विक गाँव खोर में, माता गोरजा का यह शक्तिपीठ स्थापित है। यह अतिप्राचीन शक्तिपीठ है। लोकमाता गोरजा के अनेक चमत्कारिक प्रसंग इस अंचल में प्रचलित हैं। इस क्षेत्र में महिषमर्दिनी का यह देवस्थान जावद तहसील में ही नहीं, नीमच-निम्बाहेड़ा क्षेत्र में भी सकल समाज के लिए आस्था का केन्द्र है। यह इस क्षेत्र में एक प्राचीन आस्था केन्द्र है। इस लोकमाता गोरजा की पूजा परम्परा से भील समाज करता चला आ रहा है।

माता का यह गोरजा स्वरूप पहले गाँव के इसी चबूतरे पर अनेक वर्षों से विराजित था। पूजा-अर्चना तब भी भील समुदाय करता था। बलि होती थी। चौकी भी होती थी। नवरात्रों में विशेष रूप से माता को शृंगारा जाता था। अब यह स्थान (गाँव) नगर से जुड़ गया है। मन्दिर की भव्यता दर्शनीय है। माता के अनेक प्रसंगों में यह प्रसंग विशेष महत्त्वपूर्ण है-

खोर गाँव में ही एक धनगर परिवार रहता था। उसकी दो पत्नियाँ थीं। सन्तान दोनों की नहीं हुई। इतनी बड़ी जायदाद, वारिस एक भी नहीं। घर में सब निराश रहते थे। लड़की भी हो जाती, तो दामाद को रख लेते। एक दिन दोनों पत्नियों ने सलाह की कि पटेल का तीसरा विवाह करवाया जाये। बड़ी ने कहा- पटेल तैयार नहीं होगा। तुझे लाने के लिए मैंने बड़ी मुश्किल से उसे तैयार किया था। तब छोटी ने कहा- दीदी! तू तो लड़की ढूँढ़। पटेल को तैयार करने की जिम्मेदारी मेरी रही।

जैसे-तैसे पटेल ने हाँ भर ली। पटेल विवाह करके तीसरी पत्नी भी ले आया। बैलगाड़ियों का जमाना। बारात तीसरे दिन गाँव के गोयरे पहुँची। गाँव के गोयरे माताजी का देवरा। गाड़ियाँ वहीं रोक दी गयीं। पहले वाली दोनों पत्नियाँ भी साथ। दोनों मिलकर तीसरी को माता के ओटले पर ले

गयीं। छोटी ने कहा- आप दोनों दूर जाओ, मैं अकेली रहकर माता से मन्नत माँऊँगी। दोनों दूर चली गयीं, मगर कान उधर ही लगाकर रखे। (नयी लाड़ी) छोटी ने माता से मन्नत मानी कि- 'हे माता! तू मेरी कोख भले ही मत भरना। मेरी दोनों सौतों की गोद भर देना। मेरे पगफेरा में मेरे धणी के अंश-वंश की वृद्धि हो। यही अरदास है। अगर तूने मेरी अरदास सुन ली और दोनों की गोद भर दी तो मैं अपना सिर तेरे चरणों में भेंट चढ़ाऊँगी।'

पहले वाली दोनों पत्नियों ने यह मन्नत सुन ली। माता की करनी ऐसी हुई कि अगले महीने दोनों का गर्भ रह गया। समय परवाने दोनों के एक-एक लड़की हुई। छोटी ने कहा- मेरी माता की मन्नत है, मैं उसे पूरा करूँगी। बड़ी और मंझली ने समझाया कि मन्नत अभी नहीं देंगे, एक साल बाद देंगे। छोटी जिद पर अड़ गई। पटेल को जब सारी बात मालूम पड़ी तो उसने भी समझाया, लेकिन छोटी नहीं मानी। माता ने मेरी बात रखी, मैं अपनी बात रखूँगी। सत से नहीं डिगूँगी। वह नहीं मानी। उसने श्रृंगार किया और माता के देवरे की ओर चल पड़ी। पीछे-पीछे पटेल और उसकी दोनों पत्नियाँ। पटेल ने गाड़ी में बारह बकरे भरे और माता के दरबार में जाकर पुकार लगाई- 'माँ! तूने मेरी छोटी की अर्ज सुनी। तेरी कृपा हुई। तू उसका जीवन बख्शा दे। बदले में बारह जीव ले-ले।'

छोटी ने माँ के चरणों में माथा टेककर कहा- 'तूने मेरी अर्ज सुनी। अब मैं अपनी मन्नत पूरी करने आई हूँ।' उसने भोपा से कहा- 'तलवार उठा और लोह कर'। भोपा की हिम्मत नहीं पड़ी। सबने छोटी को बहुत समझाया। छोटी सत से नहीं डिगी। उसने तलवार उठायी और एक ज़ोरदार वार अपनी गर्दन पर कर दिया। सिर कटकर माँ के चरणों में जा पड़ा हो, ऐसा सबको लगा। भय से सबकी आँखें मुँद गयीं। लेकिन यह क्या? छोटी तो हाथ जोड़े माँ के सामने प्रार्थना कर रही है। ज़ोर का झलकारा हुआ और छोटी का सिर फिर से जुड़ गया। छोटी का भी सत पूरा हुआ, माँ का भी सत पूरा हुआ। माँ के चरणों में खून का कीच फैल गया था। भोपे को फौरन भाव आ गया। माँ ने कहा- 'छोटी सत पर रही। मैं खुश हूँ। उसने अपनी मन्नत पूरी कर दी। मैं अपना वचन पूरा करूँगी। समय परवाने छोटी को भी संतान होगी'।

पटेल ने बारह बकरे सामने खड़े कर दिये। माँ ने कहा- 'मैंने अपना भोग ले लिया है। इन्हें वापस ले जाओ। सब लोग माँ की जय-जयकार करते हुए घर लौट आये। समय परवाने छोटी को बेटा हुआ। माता के दरबार में धोक दिलवायी। लड्डू-बाटी का भोग लगाया। ऐसी है यह गोरजा महाराणी। जैसी गोरजा ने छोटी की सुनी, वैसी सबकी सुने। सबकी गोद भरी रहे। सबका वंश चलता रहे।

### कनेरा की विशंतरी माता

कनेरा (कर्णपुरा) जावद तहसील का सीमावर्ती गाँव है। राजनैतिक स्तर पर भले ही कनेरा को राजस्थान में माना जाये, किन्तु यह मध्यप्रदेश का ही गाँव है। कनेरा गाँव के उत्तर में भैंसासरी/महिषमर्दिनी का मन्दिर है। इसे भगोरा गोत्रज भील कई वर्षों से पूज रहे हैं। श्यामाश्रम यह महिषमर्दिनी प्रतिमा बीस भुजा वाली है, इस कारण सब लोग इस माता को 'विशंतरी माता' कहते हैं। माता की लम्बाई 5-1/2 फुट और चौड़ाई 3-1/2 फुट है। भुजाएँ खण्डित हैं। सिंह की सवारी। हाथ में त्रिशूल, शत्रुवध वीर मुद्रा। चरणों में भैंसा। भैंसे का कटा सिर चरणों में तथा पृष्ठ भाग में माता का सिंह आक्रमण की मुद्रा में। यदि यह मुद्रा खण्डित स्थिति में नहीं होती, तब निश्चित ही यह सावन गाँव में स्थापित बीस भुजा माता से भी अधिक सुशोभित मूर्ति होती। आज भी आकार और वास्तुशिल्प के मान से यह बीस भुजा महिषमर्दिनी (वीशंतरी माता) दशपुर जनपद की सबसे सुन्दर एवं आभायुक्त कलाकृति है।

गाँव के बुजुर्गों के अनुसार यह माता इस स्थान पर लगभग 700 वर्षों से विराजित हैं। इससे पहले यह मूर्ति कहाँ विराजित थी, यह बता पाना कठिन है। इतना तो कहा जा सकता है कि यहाँ विराजित ये मूर्तियाँ किसी अन्य स्थान से लाकर यहाँ स्थापित की गयी हैं। यहाँ विराजित मूर्तियों का परस्पर कहीं भी सामंजस्य नहीं बैठता है। महिषमर्दिनी के बायें पार्श्व में एक चतुर्भुज प्रतिमा है। यह देवी दो सिंह पाट पर स्थित शतदल पर अभय मुद्रा में विराजित है। दोनों का पत्थर एक समान है। ये प्रतिमा महिषमर्दिनी से

सटाकर स्थापित की गई है। स्पष्ट प्रतीत होता है कि यह चतुर्भुजी प्रतिमा महिषमर्दिनी शिला का ही एक खण्ड है, जो किसी प्रकार खण्डित हो गया। यहाँ इस प्रतिमा को ब्रह्माणी या गौरी कहा जाता है। इसका कोई शास्त्रीय आधार प्रतीत नहीं होता। लोगों का यह भी कहना है कि- माताओं की अलग-अलग स्वरूप की ऐसे ही पत्थर की कुछ मूर्तियाँ बाहर के देवरे (मासीमाता) के आसपास पड़ी थीं। सब एक-एक करके कोई उठा ले गया। उन मूर्तियों में एक ऐसी वराही की थी, जो भैंसे पर सवार थी। एक माता जो मोर पर सवार थी। शेष को पहचान पाना कठिन था, किन्तु थी सब देवियाँ। एक खड़ी मुद्रा में गणपति थे।

यदि इन सब मूर्तियों को जोड़कर देखा जाये तो सप्तमातृका अच्छराई का स्वरूप सामने आता है। यदि यह मान लिया जाये, जैसा कि सम्भव भी लगता है, तब भी इस जनपद में सप्तमातृका का इतना विशाल एवं सुन्दर शिलापट और कहीं भी नहीं मिलता। इस क्षेत्र में सागाराणी माता जाट और भूखी माता में सप्तमातृकाओं के होने के प्रमाण उपलब्ध हैं। यह बात भिन्न है कि सप्तमातृकाओं में जो शास्त्रीय युति निर्धारित है, उसमें अलग-अलग स्थानों पर परिवर्तन मिलता है। हो सकता है, चामुण्डा के स्थान पर महिषमर्दिनी स्थापित की गई हैं। माताओं के वाहनों में तथा स्वरूपों में भी भिन्नता मिलती है। ऐसा कलाकारों की अपनी-अपनी मान्यता तथा स्थानीय शास्त्रज्ञों की मान्यता-भिन्नता के कारण हुआ है।

इसी मन्दिर में एक प्रतिमा 2 फीट 1.3 इंच की स्थित है। यह प्रतिमा शिलापट देवी का ही है। खड़ी अवस्था में यह चतुर्भुज देवी मकरवाहिनी है। मकर के कारण इस देवी को नर्मदा माता माना जा सकता है। इस मूर्ति के पास एक भैरव मूर्ति है। इसे बाद में धाकड़ समाज ने स्थापित किया है। भैरव प्रतिमा के पश्चात् एक मूर्ति 3.5×3 फीट की है। इसका स्वरूप सिंह पर सवार किसी देवी का है। यह देवी चामुण्डा, महिषमर्दिनी या दुर्गा नहीं लगती। वाहन गतिशील है। सवार देवी वाहन की तुलना में बहुत छोटी लगती है। वाहन के शीष पर सिन्दूर पुता होने के कारण उसे ठीक से पहचानना कठिन है, किन्तु पंजों से वह सिंह ही लगता है। सम्भव है, ये

सभी मूर्तियाँ एक ही शिला के खण्ड हों। भैरव तो बाद में स्थापित हुए। वे एक पिण्डी के स्वरूप में हैं।

भीलों के भाटों की पोथी के अनुसार कनेरा गाँव की बसाहट कर्णा भील ने बसाई। यह भीलों का सरदार था एवं अपनी सेना रखता था। कर्णा-कणेरा-कनेरा नाम बना। यहाँ माताजी का भाव नहीं आता। भैरव का आता है। माता पाती देती हैं। नवरात्रों में थोड़ा-सा झलकारा भाव का भोपा को आता है। भोपा भील समाज का भगोरी गोत्रज भँवरलाल है। आदिकाल से यही गोत्र माता की सेवा करता है। धाकड़ समाज के बसने के पश्चात् तथा मन्दिर का सार्वजनिक स्वरूप हो जाने के कारण अब यहाँ बलि नहीं होती। पहले होती थी। धार भी लगायी जाती थी। घी का दीपक आदिकाल से अखण्ड जल रहा है।

ऐसा अनुमान है कि ये मूर्तियाँ लगभग नवीं-दसवीं शताब्दी की हैं। पूर्व में कई वर्षों तक खुला चबूतरा था, फिर भील समाज ने मन्दिर बनाया और अब धाकड़ समाज कनेरा और अन्य गाँवों के लोगों द्वारा मन्दिर को भव्यता दी जा रही है। निर्माण चल रहा है। मासी माता मन्दिर के बाहर परिसर में एक मासी माता का मन्दिर है। यह माता पिण्डी रूप में हैं। इसे भैंसासरी की बहन माना जाता है। यहाँ भूत-प्रेत, डाकिनी से ग्रस्त, दुखिया लोगों का दुःख निवारण होता है। दुखियारों को यहाँ भाव आता है एवं प्रेत बाधा मासी माता मिटा देती है।

### बड़ी घाटी की भूखी माता

जाट से ग्वालियर कलां जाने वाले मार्ग पर जाट से आठ किलोमीटर दूरी पर भूखी माता का स्थान है। यह चबूतरा बड़े-बड़े शिलाखण्डों से बिना चूने-सीमेण्ट का बनाया गया है। माता उत्तराभिमुखी है। उनके दोनों ओर उनकी जोगनियाँ विराजित हैं। माता तथा जोगनियाँ पिण्डी रूप में हैं। जहाँ यह स्थान है, इस गाँव को बड़ी घाटी कहा जाता है।

यह भी भील समुदाय की आस्था देवी है। भील समुदाय ही माता की सेवा करता है। यहाँ भाव पहले आता था, अब नहीं आता। बलि होती है।

लोग यहाँ मन्त्र उतारने दूर-दूर से आते हैं। यहाँ भोजन पकता है। भोजन दाल-बाटी और माँस-बाटी दोनों प्रकार का पकता है। भोजन पकाने में मर्यादा का परदा रखा जाता है। माता का स्थान मुख्य सड़क पर होने के कारण यात्री अपने वाहन रोककर दर्शन करते हैं। कुछ लोग धार लगाकर प्रसाद भी लेते हैं।

ऐसी मान्यता है कि भूखी माता को सदा तृप्त रखने से परिवार में किसी प्रकार की कमी नहीं आती। दैवी प्रकोप शान्त रहते हैं। ऊपरी बाधाएँ (भूत-प्रेत आदि) नहीं हो सकतीं। यद्यपि यह स्थान अधिक तड़क-भड़क वाला नहीं है। फिर भी यहाँ प्रतिदिन अनेक लोग दर्शन करने आते हैं तथा अपनी आस्था माता का दर्शन कर स्वयं को धन्य करते हैं।

### डिकेन की भूखी माता

भूखी माता डिकेन से लगभग छह किलोमीटर उत्तर पूर्व में पठार से नीचे प्रवाहित नदी में स्थित है। यह स्थान बड़े-बड़े वृक्षों से आच्छादित है। ऊपर अरावली में छोटी-छोटी कन्दराएँ हैं। इन शैलाश्रयों में साधु लोग अपना आश्रम बनाकर यदा-कदा रहते हैं। इन्हीं कन्दराओं में लोकश्रुतियों के अनुसार चोर-डाकू आश्रय ग्रहण करते थे। यह स्थान बाल्दी बंजारों का भी विश्रामस्थल रहा है। मातृस्थल से ऊपर विस्तृत पठार पर बंजारों के डेरे लगते थे। यह डिकेन मार्ग मालवा से राजस्थान और दिल्ली तथा अन्य स्थानों की ओर जाने का द्वार माना जाता है। ऐसी भी लोकश्रुतियाँ हैं कि बंजारे यहाँ अपना धन धरती में गाढ़कर रख जाते थे और लौटते समय निकालकर ले जाते थे। इसी लालच में यहाँ कई लोगों ने गड्डे खोदकर धन ढूँढ़ने का प्रयत्न किया है। धनलोलुप लोगों की दृष्टि यहाँ पर स्थापित मूर्तियों पर पड़ी। धीरे-धीरे यहाँ से अनेक मूर्तियाँ चोरी करके ले जायी गयी हैं।

भूखी माता का मूल एवं प्राचीन स्थान नदी में गौरी और कालिका मन्दिरों से आगे इसी नदी में स्थित है। वहाँ कोई आकारयुक्त प्रतिमा नहीं है। केवल पिण्डी स्थापित है। यह स्थान अतिप्राचीन होकर भीलों द्वारा स्थापित है। भीलों की यह देवी इस क्षेत्र की पालनहार देवी है। अकाल को सुकाल

बनाने वाली इस देवी के बायीं ओर मरी माता तथा दाहिने ओर परी माता का स्थान है। मरी माता महामारी से रक्षा करने वाली देवी तथा परी माता वात रोगों से मुक्ति दिलाने वाली माता मानी जाती है। तीनों माताओं का परस्पर सम्बन्ध भी है। अकाल के बाद महामारी तथा भक्ष्य-अभक्ष्य भोजन के कारण वात रोग उत्पन्न हो जाते हैं। स्नायुविक तथा मानसिक रोगों की भी यह देवी है। पूर्वकाल में महामारी अकाल के कारण कई परिवार बेनाम हो गये और कई गाँव बेचिराग हो गये। जहाँ भी भूखी माता का स्थान होता है, वहाँ मरी माता और परी माता का स्थान होता है। आज के युग में चिकित्सकीय विकास के कारण तथा अकाल की स्थितियों पर भी नियंत्रण कर लिये जाने के कारण इन तीनों माताओं के स्थान अपूजे हो गये हैं। उनका नाम भी लोग भूलने लगे हैं। देवी-देवता तो दुःख के समय याद आते हैं। जब शेष सभी आसरे टूट जाते हैं, तब एक ही आसरा शेष बच जाता है। वह देवाश्रय। इसी कारण लोक ने समस्त असाध्य रोगों के लिए उनसे मुक्ति दिलाने वाली लोकदेवियों और देवताओं की स्थापना की थी। भूखी माता, इन्हीं लोकमाताओं में से एक माता है।

यहाँ पर बलि होती रही है। ग्रामीण आस्तिकों द्वारा भी, चोर-डाकूओं द्वारा भी और राहगुजर बंजारों द्वारा भी। बलि माँस यहाँ पकाया भी जाता था। आज भी यह सब होता है। इसका एक कारण नगर से दूरी एवं पहाड़ की गहरी घाटी के मध्य सुरक्षा व गोपनीयता भी है। इस माता के समक्ष पाड़े (महिष) की बलि का होना भी कथित है। मदिरा की धार तो सदा लगती ही है। नित्य-प्रति कोई न कोई आस्तिक धार चढ़ाकर माता को तृप्त रखता है। मान्यता यह है कि, भूखी माता की तृप्ति ही समृद्धि एवं सुकाल की कारक होती है। इसे महिषमर्दिनी के समतुल्य भयहारिणी माता माना जाता है। पूजा का विधान भी वैसा ही है।

जहाँ आज दो मनोहारिणी अद्भुत वास्तुशिल्प को मुँह बोला करतीं लगभग नवीं-दसवीं शताब्दी की दो मातृमूर्तियाँ माहेश्वरी अथवा गौरी (जैसा कि लोक मान्यता भी है) तथा कालिका स्थापित हैं। यहाँ किसी समय सात मूर्तियाँ और भी स्थापित थीं। पाँच मातृमूर्तियाँ तथा एक गणपति एवं एक



वीरभद्र की मूर्ति। यहीं पर एक विशाल शिवलिंग भी स्थापित था। केतकी के कई वृक्ष यहाँ लगे थे। आम्रकुंज की छवि तो अद्भुत थी। वर्तमान मन्दिरों में से सबसे प्राचीन मन्दिर माहेश्वरी अथवा गौरी माता का है। यह माता पूर्वाभिमुख है। किसी समय यहाँ सात मातृमूर्तियाँ एक ही पंक्ति में स्थापित थीं। पूर्वी छोर पर वीरभद्र व उत्तरी छोर पर नृत्यरत्न गणपति की मूर्ति स्थापित थीं। नदी के तट पर इन माताओं के समक्ष मध्य में शिवलिंग स्थापित था। गहरी खाई, सुनसान, एकान्त वन का लाभ उठाकर यहाँ से मूर्ति-चोर समय-समय पर दुर्लभ मूर्तियाँ उठाकर ले गये। वर्तमान कालिका प्रतिमा यहाँ स्थित है। पूर्व में यह प्रतिमा यहाँ न होकर अन्य मूर्तियों की पंक्ति में अन्तिम क्रम में स्थापित थी। मूर्ति की पीठिका अभी भी वहाँ पड़ी है। मूर्ति-चोरों ने पीठिका से मूर्ति निकाल ली होगी, किन्तु ले नहीं जा सके। कारण जो भी रहा हो। जब किसी समय गाँव वालों को पता चला, तब उन्होंने बिना प्रशासन को बताये कालिका की पीठिका से अलग पड़ी मूर्ति को पुनः वर्तमान मन्दिर में दक्षिणाभिमुख स्थापित कर दिया।

इन मूर्तियों की स्थापना एवं घड़ावन के विषय में वाचिक परम्परा में एक रोचक किन्तु आस्थापूर्ण जनश्रुति सुनने को मिली। यह दंतकथा डिकेन और कंजार्दा तक आते-आते रूपान्तरित होती रही, किन्तु उसका केन्द्रीय सन्देश एक ही रहा। भीलों के मान से सुनाते हैं; धाकड़-धाकड़ के मान से। सबके पात्र एक ही हैं। आस्थाएँ एक हैं। झुकाव थोड़ा जातिगत होता चला गया है। मुझे भीलों में प्रचलित कथा अधिक सटीक लगी। भील ही यहाँ के आदि-निवासी भी हैं। यह समूचा पठार भीलों की सत्ता का केन्द्र था। यहाँ उपलब्ध समग्र पुरासम्पदा तथा देवी-देवताओं के लोकतीर्थ भी भीलों के हैं तथा उनकी पूजा व्यवस्था आज भी भीलों के पास ही है।

- एक राजकुमार घोड़े पर बैठकर इस क्षेत्र में कहीं से आया। शस्त्रास्त्रों से सज्जित राजकुमार सम्भवतः इस क्षेत्र में शिकार की टोह में आया हो अथवा वह अज्ञातवास में रहकर इस स्थान को सुरक्षा का स्थल मान रहा हो। उसने यहाँ केतकी के वन में नदी के तट पर विराजित शिव के दर्शन किये। यह स्थान उसे भा गया। वह प्रातः यहाँ आ जाता और दिन

ढलते यहाँ से कहीं चला जाता था। एक दिन उस राजकुमार ने एक भील युवती देखी। घुटनों तक घाघरी, काँचली-लुगड़ी पहने, माथे पर रखड़ी गूँथे, पैरों में पायजेबें, हाथों में कड़े, गले में हँसुली तथा कमर में कन्दोरा। कन्धे पर तीर-कामठा, कमर में तलवार, कटार तथा हाथ में एक बाँस। बाँस के शीर्ष में तीन शूलों वाला एक प्रकार का त्रिभाला। श्याम रंग। कसीला युवा तन। माथे पर गुदने की छवि। राजकुमार को उस भील युवती ने प्रभावित किया। वह उसकी ओर बढ़ा। घोड़े की लगाम उसने हाथ में थाम ली। युवती के निकट पहुँचते ही वह युवती से कुछ कहे, उससे पहले ही सचेत युवती उसकी ओर मुड़ी और प्रश्न किया- 'कौन हो तुम? यहाँ निर्जन बीहड़ वन में अकेले घूम रहे हो। तुम्हें यहाँ भय नहीं लगता? प्रतिदिन यहाँ आकर दिन ढले कहाँ चले जाते हो तुम?'

भील युवती की निर्भीकता और सचेतना देखकर राजकुमार औचक हो गया। उसने भी सँभलकर सीधा-सादा उत्तर भील युवती को दिया- 'मैं राजच्युत परमार राजकुमार हूँ। अपना राज प्राप्त करने के लिए समय की प्रतीक्षा कर रहा हूँ। लेकिन मुझे भय की बात बताने वाली तुम खुद भी तो स्त्री होकर इस भयावने बीहड़ में अकेली घूम रही हो। क्या तुम्हें भय नहीं लगता?' 'मेरा तो जन्म ही यहीं हुआ है। मैं तो जन्म से इसी वन में रहती आई हूँ। मुझे कैसा भय?' 'लेकिन तुम यहाँ अकेली घूमती ही क्यों हो? क्या तुम्हारा परिवार नहीं है?'

'है क्यों नहीं? छप्पन गाँव की मालकिन हूँ मैं। वह सारा भरा-पूरा मेरा परिवार है। यहाँ मेरी गायें चरती हैं। उनकी रक्षा में मैं यहाँ रहती हूँ। उधर देखो, मेरी गायें चर रही हैं।'

राजकुमार ने सामने देखा, तो गायों का एक बड़ा चौँपा नदी में पानी पीने उतर रहा था। दोनों प्रतिदिन वहाँ मिलने लगे। एक दिन भील युवती ने कहा कि तुम राज्य चाहते हो, तो शक्ति की आराधना करो। सरवानिया में तीन शिल्पी रहते हैं- थाना, माना और भाना। उन्हें लाओ। उनसे यहाँ पर मैं बताऊँ वैसी मातृमूर्तियाँ बनवाकर स्थापित करो। जिस दिन मूर्तियाँ स्थापित हो जायेंगी, उसी दिन तुम्हारे छिने हुए राज्य की प्राप्ति का मार्ग प्रशस्त हो



जायेगा। राजकुमार ने तीनों शिल्पियों को लाकर भील युवती से मिलवा दिया। भील युवती के निर्देशानुसार शिल्पियों ने अपने सहायकों के सहयोग से रात-दिन काम करके नौ मूर्तियाँ घड़कर तैयार कर दीं। यह काम पूरा करने में उन्हें नौ सप्ताह लग गये। नौ मूर्तियों में सबसे पहले वीरभद्र, फिर माहेश्वरी, वैष्णवी, ब्रह्माणी, कौमारी, इन्द्रासणी, वराही और कालिका तथा सबके बाद गणपति की मूर्तियाँ स्थापित की गयीं। सभी मूर्तियाँ एक पंक्ति में पूर्वाभिमुख स्थापित थीं। मध्य में शिव स्थापित थे। चैत्र की नवरात्रि से पूर्व यहाँ सप्तमातृका की स्थापना पूरी हो गई। भील युवती ने कहा- 'नवरात्रि के नौ दिन तक निराहार रहकर तुम इन माताओं की आराधना करो। नवें दिन तुम्हें इन सब माताओं से सात शक्तियाँ मिलेंगी। वीरभद्र व गणपति से शक्ति और भक्ति की सिद्धि मिलेगी। उसके बाद तुम अपनी जय निश्चित समझो।'।

राजकुमार ने माताओं के सामने बैठकर निरन्तर नौ दिन तक देवियों की एवं वीरभद्र सहित गणपतिजी की आराधना की। वह जब भी आँखें बन्द करके ध्यान लगाता, उसे ध्यान में वह भील युवती ही दिख पड़ती थी। बार-बार यही स्थिति बनती। संध्या को एक पत्तल पर कुछ वनफल व एक मटकी में दूध लेकर वह भील युवती आई- लो, यह फलाहार कर लो। नौ दिन तक यहीं रहकर साधना करना है। तुम्हारी रक्षा के लिए ये देवियाँ सदा जागृत हैं, फिर वीरभद्र भी हैं।

राजकुमार ने अपनी ध्यान वाली स्थिति बतायी, तो भील युवती बोली- तुम्हारा ध्यान जिस स्वरूप में लगे, उसी का ध्यान साधो। मन को स्वरूपों में भटकाओ मत। राजकुमार ने नौ दिन और नौ रात तक आराधना की। दसवें दिन प्रभात में वही भील युवती सदा वाले स्वरूप में प्रकट हुई। उसके हाथ में खड्ग था। राजकुमार ने जैसे ही आँखें खोलीं। भील युवती को अपने सामने देखकर हतप्रभ हो गया।

'हतप्रभ मत होओ, लो यह खड्ग। जब तक यह खड्ग तुम्हारे हाथ में रहेगा, तुम्हें कोई जीत नहीं सकेगा।' दूसरे हाथ में रक्षा कवच था। उसने वह कवच राजकुमार के गले में डाल दिया। राजकुमार ने खड्ग ले लिया। वह इतना औचक था कि सारी माया उसके समझ में नहीं आ रही थी। आती

भी कैसे? जिस भील युवती के साथ वह नित्य मित्रवत् मिलता था, घण्टों पास बैठकर वार्तालाप करता था, वही भील युवती आज उसे वरदान देने के लिए उपस्थित थी।

'औचक मत होओ, राजकुमार। मैं अछरा माई हूँ। ये सब माताएँ मेरा ही स्वरूप हैं। मेरी एक की पूजा से समस्त देवियों की पूजा होती है। तुम आँखें बन्द करके ध्यान लगाओ, मेरा जो स्वरूप दिखे, उसे बखानो।' राजकुमार ने ध्यान लगाया। उसे वही भील युवती महिषमर्दिनी रूप में दिखी। भील युवती अछरा माई ने उससे बार-बार ध्यान लगवाया। प्रत्येक बार वही भील युवती समस्त मूर्तियों के रूप में अभयमुद्रा में विराजित दिखी। राजकुमार का भ्रम भंग हो गया। वह भील माता अछरा के चरणों में गिर पड़ा।

'हे माता! मैंने इतने दिन तक तुम्हारे साथ रहकर जो अशिष्टाचार किया, उसके लिए मुझे क्षमा करो।' 'तुमने कोई अशिष्ट आचरण नहीं किया। तुम्हारा व्यवहार एक मित्र की तरह मेरे साथ रहा। एक क्षण के लिए भी तुम्हारे मन में विकार नहीं आया। मैं तुम्हारे उसी शुद्धाचरण से प्रसन्न हुई हूँ। जो मुझे जिस रूप में मानता है, मैं उससे उसी रूप में प्रसन्न रहती हूँ। तुमने ध्यान में सबसे पहले भैंसासरी का रूप देखा। वही तुम्हारी रक्षा करेगी। वही तुम्हें भयमुक्त करेगी। वही तुम्हें तुम्हारा छिना हुआ राज्य दिलवायेगी। शिल्पियों से तुम्हारे लिए मेरी भैंसासरी की छवि वाली मूर्ति बनवा दी है। तुम ले जाओ और उसकी नित्य आराधना करो।'।

ऐसा कहकर 'अछरा माई' वहाँ से चली गई। जहाँ भूखी माता का स्थान है, वहाँ जाकर वह अदृश्य हो गई। राजकुमार भी चला गया। उसे उसका राज मिल गया। जैसी कृपा अछरा माई की राजकुमार पर हुई, वैसी हम सब पर भी हो। यह लोककथा भले ही एक मिथक हो, लेकिन लोक आस्था का जितना विश्वास इसमें है, वह सत्य एवं नित्य है। यह लोककथा केवल मनोरंजन का माध्यम नहीं है। इसमें इतिहास की एक झलक भी है, अतीत का लेखा-जोखा भी है तथा इससे भी अधिक है सत्य घटनाओं का भावप्रवण चित्रण।

आज भूखी माता के इस प्राचीन अभय स्थान पर अछरा माई की माताओं की वीरभद्र व गणपति सहित सात मूर्तियाँ चोरी हो चुकी हैं। भले ही श्रृंखला भंग हो गयी है। आस्था भंग नहीं हुई। शेष बची दो कलाकृतियों की सुरक्षा का दायित्व केवल शासन और प्रशासन का ही नहीं, हम सबका भी है। यह पुरासम्पदा हमारे लिए केवल आस्था का धार्मिक आयाम ही नहीं है, हमारे वैभवशाली अतीत का स्वर्ण पृष्ठ भी है।

### साड़ा माता

रतनगढ़ और जाट के मध्य मुख्य मार्ग पर महिषमर्दिनी का एक मन्दिर है। यह मन्दिर बहुत प्राचीन है। मन्दिर का निर्माण विक्रम संवत् 1446 में किया गया। मन्दिर से ऊपर अरावली पठार पर हाड़ा राजपूतों का एक दुर्ग था। सम्भवतः हाड़ा ज़ागीरदार ने ही मन्दिर का निर्माण करवाया हो। हाड़ा राजपूत को महिषमर्दिनी का इष्ट था। वह प्रातःकाल सूर्योदय के समय माता के दर्शन करता था। पहले यहाँ केवल ओटला (चबूतरा) था। यह माता भील समुदाय की ही थी। यह क्षेत्र भीलों के बारह गाँवों का संकुल था, तब भीलों का सरदार खेता था। खेता से भी दस पीढ़ी पहले उसके पूर्वजों ने माता की स्थापना की थी। इस क्षेत्र में भील-सत्ता बहुत दृढ़ थी।

हाड़ाओं की यहाँ सत्ता नहीं थी। पठार पर दुर्ग था, उसमें हाड़ा सरदार अपनी सेना सहित रहता था। रतनगढ़ तक हाड़ाओं का प्रभाव था। रतनगढ़ का क़िला हाड़ा वंश का ही था। सम्भवतः सीमा की सावधानी के लिए हाड़ाओं ने यह वन दुर्ग बनवाया हो। भीलों का सरदार भी हाड़ाओं का मित्र था।

खेता की लड़की जांजली महिषमर्दिनी की उपासक थी। माता की उस पर विशेष कृपा थी। जांजली रंग से तो ताम्रवर्णी थी, किन्तु उसकी सुन्दरता, देहयष्टि और सुडौलता दर्शनीय थी। इससे भी बढ़कर थी उसकी वीरता। अस्त्र-शस्त्र चलाने में वह बहुत ही प्रवीण थी। शेर का शिकार वह तीर से कम, बल्कि तलवार से अधिक करती थी। इस क्षेत्र में शेर कम नहीं थे, चीते तो कई थे।

उससे विवाह के लिए कई भील युवकों ने प्रस्ताव रखा। खेता का एक ही उत्तर था- जो उसे तलवार में हरा देगा, वह उसी से विवाह करेगी। कई भील युवक उससे परास्त हो चुके थे।

हाड़ा सरदार ने भी उसकी सुन्दरता का बखान खूब सुन रखा था। वीरता का भी और खेता की शर्त का भी। हाड़ा सरदार भी कम बहादुर नहीं था। वह विवाहित था। नयी-नयी रानी थी, किन्तु जांजली के रूप का बखान सुनकर वह व्याकुल हो उठा। सबने खूब समझाया। हाड़ा हठ पर डटा रहा। हाड़ाओं का हठ तो इतिहास में प्रसिद्ध है। एक प्रभात जब वह सूर्य की प्रथम किरण के साथ माता के दर्शन करने आया, तब उसने माता से यही वर माँगा कि- 'माँ! मेरी अर्जी मंजूर करो। मैं जांजली से विवाह करना चाहता हूँ।' वह माँ के चरणों में झुक गया। जैसे ही वह उठा और पीछे पलटकर देखा, तो शस्त्रास्त्रों से सजी जांजली माँ का ध्यान कर रही थी। उसका ताँबा वर्णी मुख चमचमा रहा था। वह गुंजाली में नहाकर आई थी। पानी की बूँदें अभी भी उसके बालों पर मोतियों की तरह चमक रही थीं। हाड़ा सरदार ने इसे माता का वरदान माना। वह वहीं खड़ा-खड़ा ध्यानमग्न जंजाली को निहारता रहा। उसे न तन का भान रहा, न लोक मर्यादा का। जांजली का ध्यान टूटा। उसने आँखें खोलीं, तो सामने हाड़ा सरदार को खड़े देखा। वह थोड़ी-सी झिझकी। हाड़ा ने सब बता दिया और उसी उतावली में अपने मन की बात भी जांजली से कह दी। जांजली ने कहा- हाड़ाजी! आप मर्यादा की बात नहीं कर रहे। मैं भील कन्या, आप राजपूत। आपका मेरा विवाह कैसे सम्भव है? हाड़ा ने कहा- जांजली! मैं यह क़िला तुम्हें दे दूँगा। तुम यहाँ की रानी बनोगी। तुम भी आखिर ठाकुर कुल की हो। जांजली मुस्करायी। उसने बात बढ़ाना ठीक नहीं समझा। उसने हाड़ा से कहा- आपको मेरे साथ विवाह करने के लिए मेरे पिता की शर्त का पता है या नहीं?

हाड़ा ने कहा- पता है। मैं तैयार हूँ। चाहो तो अभी या फिर सबके सामने मैदान में? जहाँ तुम और तुम्हारे पिता खेता ठाकुर चाहें? जांजली ने कहा- तलवार युद्ध नहीं। मैं शर्त को सरल कर देती हूँ- 'मैं एक बाण पीपल के वृक्ष पर मारूँगी। यदि आप उस बाण को एक झटके से खींचकर बाहर

निकाल लेंगे तो मैं आपसे विवाह कर लूँगी।' हाड़ा ने हाँ कर दी। बात तय हो गयी।

अगले दिन सब लोग जुड़ गये। एक तरफ हाड़ा सरदार के सैनिक और दूसरी तरफ भील सरदार व सैनिक। बीच में एक सिरे पर पीपल का पेड़। जंजाली काछनी कसे तीर-कमन्टा लेकर वहाँ आ पहुँची। उसने माता को प्रणाम किया। माता ने पाती दे दी। जंजाली ने एक ढूण्डे (ऊँचे स्थान) पर खड़े होकर धनुष पर बाण चढ़ाया और पीपल के तने पर छोड़ दिया। बाण खच्च करके पीपल के तने में डेढ़ बेंत (बालिशत) घुस गया। हाड़ा सरदार शेर की तरह उठा और माता के मन्दिर की ओर चला गया। वहाँ उसने माता को प्रणाम किया। पाती माँगी। माता ने पाती नहीं दी। हाड़ा ने तलवार निकाली और वहाँ पहले से खड़े बकरे का लोह (बलि) कर दिया। माता ने फिर भी पाती नहीं दी। हाड़ा क्रोध से भर गया। उसने कहा- 'भीलों की माता है, इसलिए भीलों का पक्ष ले रही है।' वह क्रोध में उबलता हुआ बिना माता को प्रणाम किये पीपल की ओर बढ़ चला। सबकी एकटक नज़रें बाण पर लगी थीं। हाड़ा सरदार ने पूरी शक्ति से कसकर बाण को दोनों हाथों से पकड़ा और झटका देकर खींचना चाहा, लेकिन बाण नहीं खींच पाया।

खेता ने सिंगी बजा दी। ढोल बज उठा। काँसे की थाली और झाँझर बज उठी। हाड़ा अपना यह अपमान बर्दाश्त नहीं कर सकता। दोनों ओर से हथियार तन गये। जंजाली ने अपने भीलों को शान्त किया। उसने हाड़ा सरदार से कहा- 'हाड़ा सरदार! आप चुपचाप अपने किले में लौट जाओ। आज के बाद मेरी ओर आँख उठाकर भी मत देखना।' हाड़ा का क्रोध उबल पड़ा। उसने गरजकर कहा- 'जंजाली! कल का सूरज निकलने से पहले मैं तुम्हें महलों में नहीं उठवा ले गया, तो हाड़ा नहीं।' ऐसा कहकर वह घोड़े पर बैठकर पठार पर चढ़ गया। उसके सैनिक भी चले गये। खेता सावधान हुआ। उसने अपने आदमी भेजकर बारहों गाँवों से मदद इकट्ठी कर ली। सब भील मरने-मारने को तत्पर हो उठे। आधी रात को हाड़ाओं की सेना ने खेता की गढ़ी घेर ली। भील तो पहले से ही तैयार थे। गढ़ी के

बाहर भी पेड़ों पर, दूहों पर और खाईयों में भील छुपे बैठे थे। सबने मिलकर हाड़ाओं को घेर लिया। जंजाली गढ़ी की दीवार पर चढ़कर तीर-कमन्टा लेकर डट गयी। उसकी निगाहें हाड़ा सरदार को तलाश रही थी। थोड़ी ही देर में उसने मशाल की रोशनी में घोड़े पर सवार हाड़ा सरदार को पहचान लिया। उसने ललकारा- हाड़ा! मैं यहाँ हूँ। हिम्मत है तो हरण करो। सेना को रोको। मैं भी अपनी सेना रोकती हूँ। दोनों मिलकर निर्णय कर लेते हैं। ऐसा कहते ही वह नीचे कूद पड़ी और हाड़ा को ललकारने लगी। हाड़ा घोड़े पर था, जंजाली ज़मीन पर। तलवारें बज उठीं। जंजाली ने एक ज़ोरदार छलाँग लगायी और तलवार से हाड़ा सरदार का सिर काट लिया। उसने सिर को उठाया और हाड़ा के घोड़े पर बैठकर माता के मन्दिर की ओर भाग गई। सब लोग औचक हो गये। हाड़ा की सेना में हाहाकार मच गया। बचे-खुचे सैनिक और सरदार भाग खड़े हुए। उन्होंने किले में शरण ले ली। किले का द्वार बन्द कर लिया। भीलों ने पीछा किया, तब तक जंजाली आ पहुँची। उसने भीलों को ललकार लगाकर रोका। युद्ध बन्द हो गया। सबेरा होने से पहले ही बचे-खुचे हाड़ा अपने बीवी-बच्चों को लेकर किला छोड़कर भाग खड़े हुए। कहते हैं- उन्होंने मेनाल के निकट उमावतागढ़ में शरण ली।

हाड़ाओं का किला वीरान हो गया और बाद में खण्डहर हो गया। जंजाली ने कभी भी विवाह नहीं किया। लोग उसे भैंसासरी माता का अवतार मानने लगे। वह जंजाली माता कहलायी। सांडा माता का मूल नाम जंजाली माता ही है। सांडा नाम तो हाड़ा का अपभ्रंश है। हाड़ा से बिगड़कर हांडा और हांडा से सांडा हो गया। माता का स्थान इसी गाँव के सबसे निकट होने के कारण इस माता को सांडा की माता या सांडा माता कहा जाने लगा है। माता की पूजा आज भी भील ही करते हैं। वैसे लोहारिया, मुकेरा, सांडा, लोरई और चाँवडिया - ये पाँच गाँव मिलकर माता की सेवा करते हैं। पहले बलि खूब होती थी, अब तो नाम से दिशा बलि होती है। अर्जी लगती है। पूरे इलाके की आस्था देवी है यह जंजाली माता, जो अब सांडा माता कहलाती हैं।

## घाटा की भैंसासरी माता

अठाना (जावद) से ऊपर पठार पर भैंसासरी माता का एक देवस्थान है। घाटी पर श्रीपुर गाँव एवं लूणखंडा गाँव के बीच यह देवी माता आसपास के क्षेत्र में घाटा माता के नाम से जानी जाती हैं। माता के दोनों ओर नौ जोगणियाँ विराजित हैं। इस माता के भोपाजी लूणखण्डा में रहते हैं। रामलाल और हेमाजी भील दोनों भाई हैं। दोनों भाई ओसरे के अनुसार माता की पूजा करते हैं। रविवार को चौकी होती है। नवरात्रों में भाव आता है। न्याय रविवार को होता है।

माताजी के बायीं दिशा (मन्दिर से) एक वृक्ष के नीचे एक 'शगस' का स्थान है। शगस महाराज की सेवा भी माताजी के पण्डे ही करते हैं। माता के देवस्थान पर परकोटा बना है और लगभग प्रत्येक वृक्ष के नीचे सिन्दूरिये पत्थर देव रूप में विराजित हैं। समय-समय पर उन सबकी पूजा होती है। ये सभी पोरिये महाराज कहलाते हैं।

ऐसी मान्यता है कि यहाँ घाटे पर किसी समय युद्ध हुआ था। यह युद्ध भीलों और मुसलमानों के बीच हुआ था। घाटे के नीचे भीलों का एक गाँव था। आधी रात को भीलों के उस गाँव पर कहीं से लौट रही टुकड़ी ने हमला कर दिया। उस गाँव के भीलनायक के पास बहुत धन था। डाकुओं ने सब धन लूट लिया। उस गाँव के अन्य घरों से भी धन लूट लिया गया। उनके पशु भी घेर लिये। औरतों के साथ भी दुर्व्यवहार किया गया। लूट के बाद गाँव में आग लगा दी। वह सैनिक टुकड़ी लूट का माल लेकर भाग रही थी कि घाटे पर उन्हें उस गाँव के भीलों ने आ घेरा। जमकर तलवारें चलीं। तब तक कुछ उजाला हो चला था। उसी गाँव की एक भील युवती ने तलवार लेकर डाकू सैनिकों पर जमकर हमला किया और उनके सरदार का सिर काट डाला। उस युद्ध में कुछ भील भी मरे, किन्तु डाकू सैनिक सब मारे गये। युद्ध करते-करते वह भील युवती भी वीरगति को प्राप्त हो गई। यह माता भील समुदाय की लोकमाता है। यह स्थान बहुत पुराना है। पाँच बीघा ज़ागीर भी माता की सेवा के लिए प्राप्त है। भील समुदाय ने उस वीरांगना भील युवती को माता के रूप में स्थापित किया। वह सैनिक मुसलमान

सरदार शगस बन गया। उसकी स्थापना जहाँ वह मरा था, वहीं कर दी गई। शेष बिखरे हुए व पेड़ों के नीचे सिन्दूर पूते देव उन्हीं के स्थान हैं, जो उस मुकाबले में मारे गये। इन्हें ही 'पोरिया महाराज' कहा जाता है। यह स्थान राजस्थान और मध्यप्रदेश की सीमा पर स्थित है। दोनों राज्यों के आस्तिक यहाँ पर माता के दर्शन करते हैं व मन्नत-मनौती लेते हैं। माता से पाती प्राप्त होती है। इसे ही माता की 'मंजूरी' माना जाता है। मन्नत के बाद तथा नवरात्रों में बलि होती है।

## सागाराणी माता

सागाराणी माता का मन्दिर अरावली के गहन वन में सागवानों और अन्य वृक्षों के हरियल कुँज के भीतर है। यह स्थान जाट से आठ किलोमीटर दूर माता खेड़ा भील गाँव के निकट है। यह भी कहा जाता है कि- किसी समय इसी गहन वन में और भी अनेक भील बस्तियाँ थीं। आज भी हैं, किन्तु आबादी कम हो गई है। कुछ बस्तियाँ बेचिराग हो गयी हैं। इन्हीं बस्तियों के मध्य में एक बस्ती भील सरदार सागा चव्हाण की भी थी। भील सागा चव्हाण के पास बहुत सारी कृषि भूमि व गायें-भैंसे थीं। बहुत सारे हाली, नौकर-चाकर थे। वह इस क्षेत्र के छत्तीस गाँवों का राजा था। एक बार किसी मेवाड़ी राजा ने सागा सरदार पर आक्रमण कर दिया। उसका महल घेर लिया गया। सागा चव्हाण भी कम शक्तिशाली नहीं था। जमकर युद्ध हुआ। युद्ध में सागा चव्हाण मारा गया। उसकी सेना भी कम पड़ गयी, तब महल की भील युवतियों ने तीर-कमन्टे लेकर मोर्चा सँभाल लिया। सबेरा होते-होते मेवाड़ी सेना मार डाली गयी। सागाराणी की जय-जयकार होने लगी। उसे सत चढ़ गया। सागा राणी ने श्रृंगार किया और सती होने चल पड़ी, तभी सागा की कुलदेवी ने परचा दिया और सागाराणी को हुकुम दिया कि तुम सती होने का विचार छोड़ दो। सागा के पुत्र के बड़ा होने तक राणी पद सँभालो। मेरा यही आदेश है।

सागाराणी ने सती होने का विचार छोड़ दिया। सबने मिलकर सागा के पुत्र खेता का राजतिलक कर दिया। सागा राणी राजमाता बनी। वह राज्य

चलाने लगी। सब उसे माता राणी कहते थे। उसने खेता को अस्त्र-शस्त्र का ज्ञान करवाया। माता राणी ने तीस वर्षों तक सत्ता चलाई। जिस मेवाड़ी ज़ागीरदार ने सागा चव्हाण को मारा था, राणी ने खेता की सरदारी में एक बड़ी भील फौज़ भेजकर उस राजपूत सरदार पर हमला कर दिया। राणी खुद साथ गई। वह तीर-कमन्टे से सजी एक घोड़े पर सवार थी। राजपूत सरदार को उसने स्वयं तलवार युद्ध में मार डाला। उसका सिर काटकर वह साथ ले आई और माता के चरणों में चढ़ाकर अपना वचन पूरा किया। भैंसासरी माता राणी पर बहुत खुश थी।

एक बार भयंकर अकाल पड़ गया। अनाज और पानी चारे की बहुत कमी पड़ गयी। राणी ने मुनादी करवायी कि- सवेरे दो पराणी दिन चढ़ने तक महल के दरवाजे पर वह स्वयं अनाज बाँटेगी। महल के भखारे में बहुत अनाज है। अनाज बाँटने लगा। रानी ने अन्नग्रहण करना छोड़ दिया। वह जंगल के फल और थोड़ा-सा दूध पीकर रहने लगी। उसकी जय-जयकार फिर गई। सब सागा राणी और माता राणी की जय-जयकार करने लगे। वास्तव में भखारे में अनाज नहीं था। राणी के सत के कारण अनाज निकलता था। कुछ भील डाकुओं ने मेवाड़ी राजपूतों से मिलकर रानी का अनाज भुवारा लूटने की योजना बनायी। रात को भुवारा लूटने पहुँचे डाकुओं को अनाज का एक दाना भी नहीं मिला। सब निराश लौट गये। सबेरे राणी ने सदा की तरह अनाज बाँटा। डाकू आश्चर्य में पड़ गये। उन्होंने राणी से क्षमा माँगी। जब यह बात सबको पता चली, तब सब राणी के सत को जान गये। सागा राणी माता राणी बन गई।

सागाराणी ने अपने सत बल से अपनी प्रजा की सदा रक्षा की। उसके मरने के बाद धूमधाम से भीलों व अन्य समाज के लोगों ने माता का दाह संस्कार किया। कहते हैं- चिता से एक लौ निकली और भैंसासरी माता में समा गई, तब से भैंसासरी का नाम सागा राणी माता हुआ। पहले एक चबूतरा था। संवत् 1944 में गणेश गिरि महाराज ने मन्दिर बँधवाया।

सन् 1992 के साल महन्त विजयराज जी महाराज ने यहाँ यज्ञ करवाया, तब यहाँ और भी निर्णय हुए। दूर-दूर से यात्री यहाँ आते हैं। डाकोरजी और

प्रतापगढ़ तक के यात्री माता के दरबार में आते हैं, मन्त्र लेते हैं। माता पाती देती हैं और भाव भी आता है। नवरात्रों में अष्टभुजी भैंसासरी सागा राणी माता की सवारी निकलती है। यज्ञ से पहले इसी स्थान पर ही बलि होती थी। अब नहीं होती, दिशा बलि होती है।

यह माता संतान देने वाली, संतान की रक्षा करने वाली तथा सभी मनोरथ पूरे करने वाली हैं। मन्दिर के भीतर माता के बायें भाग में दो मूर्तियाँ वैष्णवी और ब्राह्मणी की विराजित हैं। माता के समक्ष भैरव विराजते हैं। वहाँ भी पाँच मूर्तियाँ स्थित हैं। भीतर की दो मूर्तियाँ व पाँच मूर्तियाँ बाहर की एक ही शिलाखण्ड के भाग हैं। गणेश और वीरभद्र की खण्डित मूर्तियाँ भी यहाँ सिन्दूर पुती रखी हैं। ये अछरा माई (सप्तमातृका) के खण्ड हैं।

सागा राणी माता पूरे क्षेत्र में भील आस्था ही नहीं, सकल समाज की आस्था लोकमाता हैं। माता की सेवा आदिकाल से चव्हाण गोत्रज भील ही करते चले आ रहे हैं। वर्तमान में खेमराज भील चव्हाण पुजारी हैं। माता का यह स्थान लगभग 700-800 वर्ष प्राचीन है। माता मन्दिर के बाहर विराजित विशाल शिवलिंग अतिप्राचीन है। इसकी स्थापना सागा के पूर्वजों ने की थी। पुरातात्विक दृष्टि से भी इस विशाल शिवलिंग का बहुत महत्त्व माना जाता है।

### लीमड़ी की 'पीपरी माता'

रामपुरा में राव गोपालसिंह का शासन था। गोपालसिंह का जनता पर बहुत स्नेह था। यदि राव अचल का समय वीरकाल कहा जाता है और दुर्गभान का समय समृद्धिकाल, तो राव गोपाल का समय शान्ति का समय था। गोपालसिंह संत राजा कहलाते थे। राव गोपालसिंह की दो रानियाँ थीं। पहली रानी के कुँवर का नाम रतनसिंह था। दूसरी के पुत्र कुँवर हिम्मतसिंह थे। किन्हीं राजनीतिक और पारिवारिक दबावों में आकर गोपालसिंह ने रामपुरा की गादी हिम्मतसिंह को व आमद की गादी रतनसिंह को दे दी। रामपुरा मुख्य गादी थी। उस पर रतनसिंह का हक बनता था, वह बड़ी रानी का पुत्र था।

इस बँटवारे से रतनसिंह बागी हो गया। उसने औरंगज़ेब से मिलकर इस्लाम धर्म ग्रहण कर लिया। इस प्रकार वह रतनसिंह से इस्लाम खान बन गया और रामपुरा का नया नाम इस्लामाबाद हो गया। रामपुरा में इनायत खाँ का वर्चस्व स्थापित हो गया। रतनसिंह उर्फ इस्लाम खान ने गोपालसिंह को बन्दी बनाना चाहा, किन्तु दुधलाई की वीरांगना भवानी चारणी की सहायता से गोपालसिंह रामपुरा से सुरक्षित निकलने में सफल हो गये।

लीमड़ी का पीथा भील यद्यपि लुटेरा था। लीमड़ी जावद तहसील में ग्वालियर कलाँ के पास मेवाड़ की सीमा पर स्थित भीलों और मीणों का एक ठिकाना था। पीथा भील वहाँ का ठिकानेदार था, किन्तु वह गोपालसिंह का पक्का सहयोगी था। एक युद्ध में पीथा गोपालसिंह के पक्ष में लड़ता हुआ शहीद हो गया। भवानी ने गोपालसिंह को लीमड़ी में सुरक्षित कर दिया। उनके साथ उनकी रानी माँ भी थी। राव रतनसिंह दोनों को कैद कर मार डालना चाहता था। पीथा की पत्नी पीपरी खुद तो वीरांगना थी ही, उसके सातों बेटे व उनकी औरतें भी वीरांगनाएँ थीं। पूरा परिवार एक जैसा था। लूट करने के कारण तथा युद्ध में जाने के कारण सबको सचेत रहना पड़ता था।

पुरुष जब युद्ध या लूट पर जाते, तो घर पर औरतें ही पहरा देती थीं। भवानी की सेना में भी ये सब औरतें खास सहायक थीं। भवानी के निर्देशानुसार पीपरी के सातों बेटे गोपालसिंह को साथ लेकर मेवाड़ निकल गये। रानी तथा कुछ और स्त्रियाँ लीमड़ी में सुरक्षित थीं।

रात को रतनसिंह के सैनिकों ने लीमड़ी को घेर लिया। बच्चे और औरतें (राजघराना) घास की गंजी में छुपे थे। रानी भी उन्हीं के साथ थी। सेना का मुखिया कलीमुद्दीन था। उसके साथ कुल दो सौ सैनिक थे। सैनिकों में भील, मीणों, सिसोदिया और मुसलमान शामिल थे। पीपरी ने निडर होकर कलीमुद्दीन को समझाया कि यहाँ न तो अन्नदाता गोपालसिंह जी हैं, न रानी माँ। आप लीमड़ी का घेरा खोल दो और लौट जाओ। पीपरी के समझाने पर भी कलीमुद्दीन नहीं माना। जब पीपरी ने देखा कि यह दुष्ट नहीं मानेगा, तो उसने उसके साथ आये मीणों, भीलों और सिसोदियों को ललकारा- 'तुम्हें शर्म आना चाहिए, अपने अन्नदाता की हत्या करने निकले

हो। अन्नदाता ने सदा मीणों और भीलों की हर तरह की मदद की है और तुम सिसोदियो! तुम्हें तो अन्नदाता ने भाई जैसा व्यवहार दिया। रामपुरा पर चन्द्रावत मुसलमान होकर बैठा है। हमारा मुसलमानों से विरोध नहीं, मगर रतनसिंह तो 'बटरा' गया है। वह न हिन्दू है न मुसलमान। वह न नरक जायेगा न सरग। अवगति को भोगेगा वह।

अन्नदाता तो मेवाड़ की सीमा में पहुँच चुके हैं। तुम उन्हें अब नहीं पा सकते और जैसा तुमने लीमड़ी को घेर रखा है, वैसा मेरी बहुओं ने चारों ओर से तुम्हें घेर रखा है। एक भी बचकर नहीं जा पायेगा। कुन्ती के तो पाँच पाण्डव थे, मेरे सात हैं। पहुँचने ही वाले हैं। काट-काटकर कुत्तों को खिला देंगे। अगर भील और मीणों हो, तो मेरे पास आकर खड़े हो जाओ और तुम भी सिसोदियों! समय और धर्म को समझ लो।

पीपरी की बातों का प्रभाव पड़ा। भील, मीणों पीपरी के पास आ पहुँचे। सिसोदिया भी बागी हो गये। लेकिन कलीमुद्दीन के साथ आये मुसलमान सैनिक लगभग 150 की संख्या में थे। कलीमुद्दीन हमले का हुक्म दे, तब तक तो खच्च-खच्च बाण उसे छेद गये। मचानों पर सात तो पीपरी की बहुएँ और दो अन्य भील युवतियाँ तीर-कमन्टे लेकर तैनात थीं। सैनिकों के पास मशालें थीं। उन्होंने लीमड़ी में आग लगा दी। पूरा गाँव जल उठा। पीपरी खड्ग लेकर सैनिकों से जूझ रही थी। जिन गंजियों ने रानी और अन्य राजपरिवारों की औरतें-बच्चे थे, उनकी रक्षा करना ज़रूरी था। पीपरी ने भीलों और मीणों को ललकारा- गंजियों की रक्षा करो। उधर एक भील ने पशुओं की रस्सियाँ काट दीं। पशु जंगल में भाग गये।

मचानों से तीरों की मार और भीलों, मीणों और सिसोदिया की मार से कलीमुद्दीन के सैनिक कटते-घटते जा रहे थे। कलीमुद्दीन तो पहले ही मारा जा चुका था। गंजियाँ आग की चपेट में आती जा रही थीं। पीपरी ने फिर ललकारा- रानी माँ को व दूसरी औरतों को गंजियों से निकालकर घेरे में ले लो। मैं सँभालती हूँ- बचे हुए हमलावरों को। राजपरिवार पीपरी की बहुओं और अन्य भीलों के कब्जे में था। बचे हुए भीलों, मीणों और सिसोदियों ने राजपरिवार की रक्षा में अपने प्राण झोंक दिये और उन्हें गाँव से बाहर ले



गये। हमलावरों को पीपरी की बहुओं और दो भील युवतियों सहित पीपरी ने आगे नहीं बढ़ने दिया।

एक भी हमलावर बच नहीं पाया, लेकिन पीपरी समेत सभी दसों महिलाएँ बुरी तरह घायल हो गयीं। तब तक दिन भी हो गया और पीपरी के बेटे भी आ पहुँचे। लेकिन तब तक दसों वीरांगनाएँ जूझकर जुझारी बन चुकी थीं। मरते-मरते पीपरी ने अपने बेटों से कहा- हमने हमारी शरण में आये राजपरिवार की रक्षा कर ली है, तुम हमारी चिन्ता छोड़ो। दुबारा हमला हो, उससे पहले रानी माँ और अन्य बच्चों-औरतों को मेवाड़ पहुँचाने के लिए अभी निकल पड़ो। हमारा दाह भील, मीणें करेंगे। सबका एक ही दाग करवाओ।

सबका दाग पीपरी के बेटों ने किया। सारे राजपरिवार को मेवाड़ रवाना करवाया। जहाँ पीपरी और नौ वीरांगनाओं का दाग किया गया, वहीं पीपरी देवी की स्थापना की गई। आसपास जोगनियों के रूप में सातों बहुएँ और दो भील युवतियाँ भी स्थापित की गईं। भील, मीणें पीपरी माता को व अन्य देवियों की सामूहिक रूप से पूजा करते हैं।

अपने धर्म का पालन करने वाली पीपरी माता व नौ वीरांगनाएँ धन्य हैं, जिन्होंने अपने प्राण देकर भी शरणागतों की व अपने राजपरिवार की, विशेषकर स्त्रियों और बच्चों के प्राणों की रक्षा में अपने प्राण न्यौछावर कर दिये। लीमड़ी के इस लोक आस्था के धाम पर नवरात्रि में विशेष पूजाएँ होती हैं। कुल-वंश के लोग मन्नत-मनौती लेकर माता की पूजा करते हैं। पूजा भीलों की है। यहाँ बलि होती है।

माता सुहाग-पूत की रखवाली करती हैं। दोरम मिटाती हैं। रोग-शोक सभी दूर करती हैं।

### सुला बावजी

रतनगढ़ से पन्द्रह किलोमीटर रावतभाटा मार्ग पर सड़क के निकट एक देवस्थान है- 'सुला बावजी'। ये नेत्र देवता हैं। एक कच्चा थानक। थानक पर नेत्रदेवता सुला बावजी का चीरा स्थापित है। सुला बावजी केवल

नेत्रों के रक्षक ही नहीं, अपितु मस्तिष्क के स्नायुतंत्र के भी रक्षक देवता हैं। दूर-दूर से यात्री यहाँ आकर सुला बावजी के समक्ष अपनी अर्जी लगाते हैं। यहाँ कोई भी भोपा नहीं है। किसी को भाव नहीं आता। जो भी आता है, उसकी अर्ज स्वयं देवता सुनते हैं और रोक-शोक निवारण करते हैं। मन्नत पूरी होने पर दाल-बाटी का भोग लगाते हैं व निशान रूप में भाला गाढ़ देते हैं। भाला एक फलका होता है।

लोक मान्यता है कि पुराने समय में शिवलाल नाम का एक व्यक्ति था। जाति का गूजर था। उसे अचानक नेत्र पीड़ा हुई और दिखना बन्द हो गया। उस समय के मान से सब इलाज करवा लिये। अन्त में खेड़ा माता (आज ऊमर माता) के शरण में गये। माता ने हुकुम दिया कि सोला को सीधा मालकी माता की शरण में ले जाओ। वहाँ से जो भी हुक्म हो उसे मानना। सोला (शिवलाल) को उसी दिन मालकी माता की शरण ले गये। मालकी माता का हुकुम हुआ। सोला की नेत्रों में जोत अवश्य आयेगी। इसको सूरज भगवान जोत देंगे। इसे सूरज भगवान की साधना करना होगी। यह साधना गंगा करवायेगी। सीधे गंगा माता की शरण जाओ। कल गंगा की सवारी है। आज ही वहाँ पहुँचो। बावड़ी में स्नान करके रात वहीं रुक जाना।

गंगा माता की शरण में गये। माता ने उसे रात में सपने में परचा दिया। तुम वापस अथवाँ जाओ (अथवाँ सोला का गाँव), वहाँ खेड़ा और अथवाँ के बीच मेरा भाला गड़ा है। भाले के पास बैठकर सूरज भगवान की साधना करो। सातवें दिन आँखों में जोत प्रगटेगी। सोला ने ऐसा ही किया। सोला को जोत मिल गयी। सोला ने सेवा-भाव धारण किया। प्रतिदिन माता के भाले को साक्षी बनाकर दुखिया जनों का उपचार करने लगा।

एक मान्यता यह भी है कि सोला की कीर्ति से खिन्न किसी तांत्रिक ने तपस्या में रत सोला की गर्दन तलवार से उड़ा दी। जहाँ सिर गिरा, वहाँ सुला बावजी का देवरा बनाया गया। यहाँ केवल सुला देवता के शीश की पूजा हाती है। तांत्रिक को भय था, कहीं सूर्य भगवान अथवा माता सुला का सिर धड़ से जोड़कर जिन्दा न कर दें, इसलिए वह धड़ा उठा ले गया और उसे जला दिया। सिर ढूँढ़ने पर भी उसे नहीं मिला।

सोला की मृत्यु के बाद लोगों ने माता के भाले के निकट ही सोला का थानक बनाया। शिवलाल से सोला और सोला से 'सुला' नाम हुआ। रतनगढ़ से 15 किलोमीटर ऊपर और अथवाँ के बीच यह 'सुला बावजी' का स्थान दूर-दूर के दुखिया जनों की आस्तिक भावना और विश्वास का देवस्थल है।

### बसु माता ( आम्बा-कोज्या )

बसु माता अर्थात् बीस भुजा माता। भील आस्था की लोकमाता बीस भुजा महिषासुर मर्दिनी अथवा भैंसासरी माता। यह देवीस्थल अम्बा नाला (ब्राह्मी नदी का एक नाला) के किनारे ऊँची टेकरी पर स्थित है। यहाँ पहुँचने के लिए सिंगोली रावतभाटा मार्ग के ताल चौराहे से दस किलोमीटर परलाई तथा फिर आम्बा जाना होता है। माता के पुजारी देवीलाल तुलजाजी बडेरा भील के अनुसार यह माता उनकी कुलदेवी व पितराणी हैं। भील ठाकुर परिवार के इस बडेरा खानदान की किसी समय यहाँ सत्ता थी। वे चौबीस गाँवों के सामन्त थे। बाद में आम्बा में शक्तावतों की सत्ता स्थापित हुई, तब भी उनकी सत्ता बनी रही। अधिकार कम हो गये। शक्तावतों ने बीस भुजा माता को अपनी कुलदेवी स्वीकार किया। आज भी अश्विन नवरात्रि का सारा खर्चा शक्तावत खानदान और चैती नवरात्रि का खर्चा बडेरा खानदान की ओर से किया जाता है।

मन्दिर का निर्माण भी शक्तावत ठिकाने के सहयोग से बडेरा खानदान ने ही करवाया था। मन्दिर बहुत पुराना है। देवरा और भी पुराना है। आदिकाल से भील बडेरा ठाकुर खानदान ही माता की सेवा करता चला आ रहा है। यह माता भीलों की ही माता है। यह मूर्ति 3×4 फीट लम्बी एवं एक फुट सात इंच चौड़ी है। मूर्ति लगभग 500 वर्ष पुरानी है। पहले यहाँ केवल पिण्डी थी।

इस सुन्दर बीस भुजा मूर्ति को चोरों ने चुरा लिया। मूर्ति-चोरों को पकड़ लिया गया है। वर्तमान में मूर्ति शासन की सुरक्षा में हैं। आजकल केवल माता की चुनरी की पूजा होती है। वर्तमान पुजारी के अनुसार उनके

परदादा पन्नाजी व दादा धन्नाजी के समय यहाँ का महत्त्व बहुत ज़ोरदार था। आज भी यहाँ नवरात्रि के समय हजारों लोग दर्शन करने आते हैं। जवारे बोये जाते हैं। निसान निकलता है, लेकिन गाँव में नहीं जाता। नदी किनारे जाकर 'कँवलास' जाता है।

बलि पहले भी खूब होती थी, आज भी होती है। पहले तो पाड़ा भी चढ़ाया जाता था। पुजारी ने बताया कि यह जो पूरा पठार अरावली का है, इस पर भीलों का ही शासन था। जितने भी देवस्थान देवियों के हैं, वे सब भीलों के हैं। हमारी वीरांगना बेटियों ने बलिदान किये। धर्म की रक्षा की। स्त्री जाति की लाज की रक्षा की। अपने सत पर डटी रहीं। वे तीर-कमन्टा लेकर युद्ध करती थीं। शिकार करती थीं। हम तो वनवासी हैं। हमारी बहन-बेटियाँ वन में अकेली घूमती थीं। वे सौ पर 'एकली' भारी पड़ती थीं। मचान पर खड़ी हो जाती तो गोफण से चौतरफा वार करती थी। तब की गोफण का भाटा आज की बन्दूक की गोली जैसा लगता था। निशाना तो आवाज़ पर मारती थी। तलवार खाण्डा उठा लेती तो जगदम्बा, चण्डी, कालका बन जाती थी। पहाड़ पर सभी स्थान उन्हीं के हैं। वे सब भैंसासरी के रूप में पूजी जाती हैं। धीरे-धीरे उनके यश बखान हम सब भूल चुके हैं। पहले भोपा आता था, वह गाकर बखानता था। अब कोई नहीं आता। यह आम्बा की माता भी बड़ी बहादुर थी। इसके भी कई बखान हैं।

आम्बा की कुलदेवी कोज्या एवं उस क्षेत्र के आदिवासी समुदाय की आस्था देवी महिषासुर मर्दिनी (बसुमाता) के विषय में लोकचर्चा में तथा सादल भाट की आदिभवानी की विरदगाथा के आधार पर अनेक चमत्कारिक घटनाएँ एवं कथाएँ मिलती हैं। इन सब कथाओं का सार संक्षेप यह अन्तर्कथा है।

- आम्बा का पठारी क्षेत्र एक समय भील बडेरा समुदाय के प्रभाव क्षेत्र में था। यह क्षेत्र तब मेवाड़ के अधीन था। इसी क्षेत्र में भीलों के छोटे-छोटे कई ठिकाने थे। उन सभी ठिकानों का नायक था साँभला भील। यह उस क्षेत्र का राजा कहलाता था। मेवाड़ से उसके मित्र सम्बन्ध थे। मेवाड़ के राणा भी साँभला से मित्रता बनाये रखते थे।

इसी पठार पर एक जागीरदार शक्तावत कुल का था। आम्बा उसकी जागीर थी। यह ठिकाना चारों ओर भील ठिकानों से घिरा था। साँभला से सिसोदिया के सम्बन्ध भी अच्छे थे। साँभला की लड़की शालकी उस समय की मानी हुई वीरांगना थी। उसने भील युवतियों की एक छोटी-सी सेना टुकड़ी भी बना रखी थी। उस समय अरावली पठार पर विधर्मियों का बहुत आतंक था। उनकी छावनियाँ पठार पर लगती थीं। शिकार होता और शराबखोरी तथा नाच-गाना होता था। कहते हैं- दिल्ली और माण्डवगढ़ के सरदार यहाँ इकट्ठे होते थे। इस क्षेत्र के पशु-पक्षी उनका शिकार बनते थे। जब तक जंगल के पशु खत्म नहीं हो जाते, तब तक शिकार छावनियाँ कायम रहती थीं। पठार पर शिकार के अलावा ये शिकारी सरदार, स्त्रियों की इज्जत पर भी धावे बोलते थे। विशेषकर आदिवासी समुदाय की युवतियों को फुसला-बहकाकर अथवा ज़ोर-जबरदस्ती करके छावनियों में ले जाया जाता था। शालकी ने कई बार छावनियों पर धावे बोलकर उन दरिन्दों के चंगुल से युवतियों को छुड़वाया था। मेवाड़ के कुछ ठिकानेदार भी उन विधर्मियों के साथ मौज़-मस्ती करने में शामिल रहते थे। वस्तुतः मेवाड़ी सरदार ही उन पठान सरदारों को मेहमान बनाकर बुलवाते थे। सारी व्यवस्था यहाँ के राजपूत सरदार ही करते थे।

आम्बा ठाकुर की कुँवरानी शालकी की सखी थी। दोनों घोड़ों पर बैठकर कई बार जंगल में शिकार करने भी जाती थी। वहीं पर शस्त्रास्त्र का अभ्यास ही होता था। राजकुमारी मेवाड़ के किसी सेनानायक के लड़के से प्यार करती थी। कहीं-कहीं उसे राठौर ठिकानेदार का राजकुमार भी कहा गया है। दोनों जंगल में मिला करते थे। आम्बा ठाकुर को इस प्रेम-प्रसंग का पता था। वे भी उनके विवाह के लिए सहमत थे। इसी बीच एक बार कुँवरानी और शालकी अपनी सखियों सहित जंगल में शिकार करने गयी हुई थीं, तभी एक पठान सरदार ने अपने साथियों के साथ उन्हें घेर लिया। उनका प्रयास था राजकुमारी और शालकी समेत सभी युवतियों का अपहरण कर शिकार छावनी में ले जाना। ऐसा मौका वे कैसे छोड़ते। राजकुमारी और शालकी कई दिनों से उनके निशाने पर थीं।

शालकी ने ललकार लगाई। तलवारें बज उठीं। पठान सरदार को इस प्रकार के प्रतिरोध की कल्पना नहीं थी। एक पहर तक तलवारें चलीं। पठान के सिपाही बड़ी संख्या में थे। शालकी और राजकुमारी पूरी वीरता से युद्ध कर रही थी। उसकी सारी साथिनें वीरगति पा गयीं। राजकुमारी और शालकी भी बुरी तरह से घायल हो गईं। राजकुमारी तो घोड़े पर निठाल होकर गिर पड़ी। शालकी ने हिम्मत नहीं हारी। उसने एक भरपूर वार पठान पर किया और उसका सिर काट लिया। राजकुमारी को घोड़े पर डालकर आम्बा ठिकाने पहुँचाया। ठिकाने से लौटकर वह अपने साथियों सहित शिकार छावनी पर टूट पड़ी। छावनी में हाहाकार मच गया। एक भी व्यक्ति ज़िन्दा नहीं बच पाया, तब तक पूरे इलाके के भील और आम्बा ठिकाने के सैनिक भी छावनी पर चढ़ आये। राठौर राजकुमार भी आ पहुँचा। छावनी तहस-नहस कर दी गयी। सभी युवतियों को मुक्त करवा लिया गया।

इस युद्ध में शालकी वीरगति को प्राप्त हो गयी। भील समुदाय ने उसका थानक देवी के रूप में बनवाया। थानक पर उसकी इष्टदेवी बीस भुजा माता की मूर्ति स्थापित की गयी। यही शालकी अपनी इष्टदेवी बीस भुजा माता महिषासुर मर्दिनी के रूप में लोक में पूज्य है। आम्बा जागीरदार शालकी माता या बसुमाता को अपनी इष्टदेवी के रूप में पूजते हैं। यह माता समूचे क्षेत्र की रोग-शोक मेटणी माता के रूप में सम्पूज्य है।

सादल भाट ने अपनी विरदगाथा 'आदभवानी गोरजाँ की' में उपरोक्त अन्तर्कथा का उल्लेख किया है।

*हे मातंगी बाराबंकी, हे धूमावति माती।*

*कँवराणी की लाज वचाताँ, तू धाराँ लग गी दाती ॥ 17 ॥*

*अम्बावंती वीशंती तू, गढ़मेहलाँ की रखवारी।*

*हे भेंसासरी, तिरसूल धारणी, खडग कामठा वारी ॥ 18 ॥*

*राणा को मेवाड़ धुजायो, कँवराणी ती कँवर मलायो।*

*जिंदो नी बच पायो भवानी, जो भी थारे सामे आयो ॥ 19 ॥*

*पात सा को किल्लो भाँग्यो, घोड़ो होयो सिंघ सवारी।*

*सो पे पड़ी एकली भारी, खूब मचाई मारा-मारी ॥ 20 ॥*

वाऽरी माता कामठा वाऽरी, वाऽरी माता आम्बावारी।  
 कँवराणी ने नाख घोड़ले, मेडहलाँ के भीतर पोंचायो ॥ 21 ॥  
 काट्यो मुंड पात साह को, घोड़ा की बी गाबड़ काटी।  
 किलकारी कर मगरे छड़गी, हिम्मत राखी पूरी गाठी ॥ 22 ॥  
 थारी सगति, तू इ जाणे, कइ जाणे यो दासो।  
 सतियाँ को सत राखण बारी, थारो म्हारे हिरदे आसो ॥ 23 ॥

(पद क्र.-17 से 23, विरदगाथा, डॉ. पूरन सहगल)

ऐसी कई यशगाथाएँ पठार की लोकमाताओं की बखानी जाती रही हैं। धीरे-धीरे सब भूल-भुलैया में खो रही हैं। शालकी की यशगाथा भी उन्हीं में से एक हैं। इस लोकमाता का स्थान आज भी जागृत है। यह स्थान वन में अपनी रमणीयता और आस्था का मुख्य केन्द्र है।

### अम्बा रतनगढ़ की अम्बामाता

दड़ौली से पाँच किलोमीटर मुख्य सड़क से पश्चिम में बहने वाली एक स्थानीय नदी के तट पर गहन हरियाली के बीच में स्थापित अम्बामाता के नाम से विख्यात भैंसासरी माता का यह मन्दिर एक शान्तिदायक एवं शक्तिदायक स्थल है। यहाँ पहुँचते ही मन में अपूर्व शान्ति और ऊर्जा का संचार स्वतः होने लगता है। पुजारी पन्नालाल रामनारायण भील के अनुसार यह स्थान लगभग एक हजार वर्ष पुराना है। मेवाड़ के राणा भी यहाँ धोकने आते थे। नवरात्रि में तो यहाँ बहुत भीड़ लगती है। दड़ौली के स्व. श्री कन्हैयालाल जी नागोरी को माता पर पूरा विश्वास था। वे जब भी दड़ौली आते थे। माता के दर्शन करने अवश्य आते थे। मन्दिर का यह स्वरूप उन्हीं ने बनवाया था।

यह माता वैसे तो समस्त मनोकामनाएँ पूरी करती है, किन्तु मुख्य रूप से यह वर्षा की देवी है। यह माता काल-सुकाल को बताती है। यहाँ पर भील कन्या ने तपस्या की थी। उसमें बहुत शक्ति थी। खाण्डा लेकर युद्ध में जाती थी। घोड़े पर बैठकर युद्ध करती थी। पहले भीलों के दस-पन्द्रह गाँवों का एक मुखिया होता था। वह ठाकुर कहलाता था। जब भी इन गाँवों पर

हमला होता था। ढोल बजाया जाता था। सब तैयार होकर दुश्मन पर टूट पड़ते थे। वह भील कन्या आगे रहकर युद्ध करती थी। नायक के बेटा नहीं था। बेटा ही थी। वही पूरे क्षेत्र में मान्यता रखती थी। उसने विवाह नहीं किया।

एक बार यहाँ तपस्या करते हुए नवरात्रि में घेर ली गई। अकेली थी। खाण्डा पास रखा था। दुश्मन पर टूट पड़ी। लाशें बिछा दीं। बहुत घायल हो गईं। दुश्मन के हाथ पड़ने की नौबत आ गई। सामने वाले कुण्ड में कूद गईं। कुण्ड गहरा नहीं है, लेकिन दुश्मन उसे नहीं पा सका। वह तो शक्ति माता की बेटा थी। उसी के पास लौट गईं।

यहाँ उनका चबूतरा बनाया गया। वह भाव रूप में भोपा के शरीर में आती हैं। वह क्या आती हैं, स्वयं भैंसासरी आती हैं। सबकी अर्जियाँ सुनती हैं। न्याय करती हैं। कोटा-चित्तौड़, नीमच और सिंगोली, तिलसवाँ तक के यात्री आते हैं। मनोकामना पूरी होने पर दाल-बाटी का भोग लगाते हैं। बलि भी चढ़ती है। जैसी जिसकी इच्छा होती है, माता वैसा भोजन स्वीकार कर लेती है। पुजारी के अनुसार वह खेर गोत्र की कन्या थी। हम भी खेर गोत्र के हैं। हमारी बहन बेटा थी। नवरात्रों में यह धाम ज़ोरदार ढंग से मनाया जाता है।

*अम्बा थारी चाकरी, जस खाण्डे की धार।*

*देवगिरी के चार मास, बरसो बारहुँ मास ॥*

हमारी माता से यही अर्ज रहती है।

### ऊमर की माता

सिंगोली-रावतभाटा मुख्य सड़क से पश्चिम में ऊमर गाँव के निकट वनक्षेत्र में ऊमर की माता विराजित हैं। माता का स्वरूप महिषासुर मर्दिनी का है। यह माता पहले खेड़ा के पास होने से खेड़ा की माता कही जाती थी। उस गाँव को भी 'माता का खेड़ा' कहा जाता था। तब यहाँ कच्चा चबूतरा था। एक घटना के पश्चात् खेड़ा उजाड़ हो गया। उसके ढूँढे (खण्डहर) आज भी दिखते हैं।

यह स्थान बहुत पुराना है। ऊमर बसने से पहले का है। ऊमर की बसाहट लगभग 600 वर्ष पुरानी है। ऊमर बसने के बाद यह मन्दिर बना। धाकड़ समाज माता पर बहुत आस्था रखता है। यहाँ पूजा भील बगदीराम-नानूराम दायमा की है। आदिकाल से भील ठाकुर खानदान ही माता की सेवा करता चला आ रहा है। माता के मन्दिर के दाहिनी ओर रेबारी बावजी का देवरा है। दो पटों पर ऊँट सवार खुदे हैं। वर्तमान पुजारी के काकाजी बसनलाल दायमा को इनका भाव आता है।

पुराने लोगों का कहना है कि खेड़ा गाँव में भील मुखिया के घर घाड़ा पड़ा था। उसकी बालिका भी बहुत सुन्दर तथा बहादुर थी। घाड़े में पूरा गाँव व आसपास के भीलों ने युद्ध किया। औरतें भी लड़ी। भील मुखिया के तरफदार दो रेबारी भी थे। वे भी लड़े। सब मारे गये। घाड़ेती माल व कन्या को लेकर भाग निकले। कन्या घायल थी। जिस ऊँट पर उसे पकड़कर रखा गया था, उसके सवार को कन्या ने अपने पक्ष में कर लिया। उसने सवार से कहा- तुम मुझे लेकर वापस भाग चलो। मेरे घर में खूब धन गड़ा है, हम निकाल लेंगे, फिर साथ-साथ अपना घर बसा लेंगे। ऊँट सवार भील कन्या की बातों में आ गया। वह ऊँट को घुमाकर खेड़ा गाँव की ओर भागा। किसी को कुछ समझ नहीं पड़ा। वह सवार ही खास घाड़ेती था। कुछ सवार उसके पीछे हो लिये, कुछ माल लेकर निकल गये। खेड़ा पहुँचते-पहुँचते भील कन्या ने अपनी कटार के वार से उस घाड़ेती को मार डाला। बाकी सवारों से उसने युद्ध किया और उन्हें भी मार डाला। गाँव में घायल पड़े भीलों ने सब देखा। उनका कलेजा ठण्डा हुआ। बाद में वह बालिका ऊँट से नीचे कूदी और अपने माँ-बाप को ढूँढ़ा। माँ-बाप मिल गये। सब घायल थे। बालिका भी घायल थी। उसके वदन से बहुत खून बह चुका था। वह नीचे गिर पड़ी और अचेत हो गयी, फिर वह नहीं उठी। जहाँ उसने देह छोड़ी, वहाँ माता का चबूतरा बना दिया। वहीं उन रेबारियों का भी चबूतरा बना, जिन्होंने भीलों का साथ देकर अपने प्राण दिये थे।

भैंसासरी माता के दर्शन करने दूर-दूर से दर्शनार्थी आते हैं। मन्नत लेते हैं, मनौती करते हैं। अपनी इच्छा के अनुसार प्रसादी करते हैं। भाव

आता है। नवरात्रि बैठती है। बलि होती है। धार भी लगती है। हर तीसरे साल पाड़ा चढ़ाया जाता है। रेबारी समाज व भील समाज विशेष पूजता है। धाकड़ समाज की आस्था देवी है। माता बहुत चमत्कारिक है। सबकी मनोकामना पूजती है। कृषि रोगों व पशु रोगों की विशेष अर्जा लगती है।

### वनदेवी माला माता

रतनगढ़-सिंगोली से ऊपर अरावली के चरणतल में माँ 'माला देवी' का स्थान है। यह स्थान सिंगोली-कोटा मार्ग पर सिंगोली से लगभग आठ किलोमीटर चलकर तथा पूर्व में लगभग पाँच किलोमीटर वनमार्ग पार करने के बाद एक छोटा-सा वनग्राम गुलाबगंज है। इससे फिर लगभग दो किलोमीटर भीतर गहन वन में विराजित हैं माला देवी। चतुर्दिक् गहन हरियाली। जलकुण्ड से निरन्तर बहता पानी। पशुओं के लिए जल व्यवस्था। शिव, हनुमान की छोटी-छोटी मन्दिरियाँ। तल से लगभग 10 फुट ऊँची रुण्डी पर माताजी का सुन्दर मन्दिर। सन् 1987 तक यहाँ एक चबूतरा मात्र था। इसे सेवाजी अहीर तिलसवाँ वाले ने भव्यता प्रदान की। सेवाजी अपने समय का बहुत बड़ा डाकू था। सारा क्षेत्र उससे भय खाता था। स्वयं पुजारी नगजीराम खाटकी भील भी उसकी बन्दूक का शिकार होते-होते कई बार बचा। उसे मालदेवी का इष्ट था। सदा हथियार बन्द रहने वाला सेवाजी अहीर डाका या लूट करने के पूर्व तथा पश्चात् माता की पूजा करता था। माता के समक्ष बलि चढ़ाना और दारू धार देना, उसका नित का काम था। किसी समय उससे माँ के मन्दिर में एक अत्यन्त घृणित और अनैतिक काम हो गया। फलस्वरूप माता ने उसे श्राप दे दिया। अगले दिन तिलसवाँ में कुछ दुकानदारों ने उसे मार डाला। उसकी बन्दूक, तलवार और पिस्तौल, कटार किसी काम नहीं आये। उसकी स्वयं की सन्तान नहीं थी। गोद आये भतीजे पन्ना अहीर ने मन्दिर का शेष काम पूरा करवाया। मन्दिर का शिखर तथा अन्य कार्य उसी ने करवाया।

माला माता से केवल आठ किलोमीटर ऊपर तिलसवाँ गाँव है। यहीं तिलसवाँ महादेव का प्रसिद्ध तीर्थ है। यह क्षेत्र राजस्थान का 'ऊपर माल'

कहलाता है। माल का सीधा-सीधा अर्थ वन होता है। वर्तमान तलहटी वाला क्षेत्र भी ऊपर माल का ही भाग रहा। यदि हम भौगोलिक एवं राजनैतिक विभाजन के कारण माला माता वाले भाग को ऊपर माल क्षेत्र का भाग न मानकर मेवाड़ का भाग भी माने, तब भी यह तिलसवाँ का सबसे निकट का क्षेत्र होने के कारण 'माल' या वन का क्षेत्र ही है। इसी कारण यह माता 'माल की माता' अथवा 'माला माता' कहलायीं। आज भी इस मन्दिर की आर्थिक सहायता तिलसवाँ से ही होती है। इस प्रकार यह ऊपर माल का ही वनक्षेत्र माना जाता है। यहाँ विराजित वनदेवी या माल की माता अथवा माला माता सम्पूर्ण मालवा-मेवाड़ और ऊपर माल की आस्था देवी हैं। तिलसवाँ से सीधा मार्ग यहाँ से 2-3 किलोमीटर ही होता है। माला देवी से जुड़ी एक कथा अत्यन्त रोचक, किन्तु प्रेरक है-

वर्तमान माला देवी स्थल से ऊपर अरावली शीर्ष पर एक भील बस्ती थी। बस्ती के चारों ओर एक प्राचीर बनी थी। उसके अवशेष आज भी देखे जा सकते हैं। उस प्राचीर को गढ़ा कहा जाता था। एक परिवार के चारों ओर बनी प्राचीर गढ़ी कहलाती थी। इसमें केवल भीलनायक और उसके निजी परिवार एवं रक्षक रहते थे। कई परिवारों का समूह यदि प्राचीर में होता था, तब उसे गढ़ा कहा जाता था। यह गढ़ा, गढ़ या दुर्ग का ही स्वरूप होता था। अरावली पर ऐसी कई गढ़ियाँ, गढ़े और गढ़ बने हुए हैं। ये सभी किसी समय भील गढ़े थे, जिन्हें या तो राजपूत राजाओं ने नष्ट कर दिया अथवा अधिकार करने के पश्चात् मजबूत गढ़ या गढ़ी बनाकर अपनी सत्ता स्थापित कर ली।

ऐसा ही एक गढ़ा भील गोमा नायक का था। वह चौबीस गाँवों का मुखिया था। गोमा की एक कन्या थी, उसका नाम था 'सावगी'। सावगी जितनी सुन्दर थी, उतनी ही वीरांगना भी थी। उसे दुर्गा माता हिंगलाज का इष्ट था। अरावली की एक गुफा में बैठकर वह माता की तपस्या करती थी। गुफा के बाहर उसकी अंगरक्षिकाएँ तीर-कमान लेकर पहरा देती थीं। दो पराणी दिन चढ़ आता, तब वह आँखें खोलती थी। उस समय जो भी दुखिया आकर अर्ज लगाता, उसकी अर्ज पूरी होती थी।

कई भील युवाओं ने अर्ज लगायी। सावगी ने उन्हें मुस्कराकर मना कर दिया। मैं विवाह नहीं कर सकती। माता का यह आदेश है। यदि माता की आज्ञा होगी, तो मैं विवाह अवश्य करूँगी। जब भी विवाह करूँगी, अपनी 'जात' में ही करूँगी, माता-पिता की आज्ञा से ही करूँगी। भील युवक उसके उत्तर से कभी निराश नहीं हुए। सबके मन में सावगी के लिए सम्मान का भाव था। सावगी लक्ष्मी रूप में पूजी जाती थी, जबकि उसे इष्ट हिंगलाज का था। वह धन और धान देने वाली देवी थी। उसके पिता के पास बहुत-सी गायें थीं। वह प्रतिदिन पीढ़के पर बैठकर छाछ और मक्खन बाँटती थी। यही उसका प्रसाद था।

उसी क्षेत्र में एक तांत्रिक आया। सावगी की ख्याति से वह चिढ़ा हुआ था। उसने राणा को भड़काया। सावगी की सुन्दरता का बखान किया। उसने यह भी कहा कि गोमा भील अपनी शक्ति बढ़ा रहा है। वह आपके इलाके पर कब्जा करेगा। राणा ने अचानक गोमा के गढ़े पर आक्रमण कर दिया। अभी दिन नहीं उगा था। सावगी तपस्या करने जा चुकी थी। राणा की बड़ी सेना। गोमा का छोटा-सा दल। सावगी की तपस्या में ही परचा हो गया। उसने माँ हिंगलाज से प्रार्थना की। राणा की सेना काठ बन गई।

तांत्रिक सब जान गया। वह राणा को लेकर गुफा में घुस गया। उन्हें भँवर मक्खियों ने घेर लिया। सावगी तपस्या से उठी और उसी गुफामार्ग से आगे चल पड़ी। जहाँ अभी देवी का मन्दिर है, वहाँ गुफा का दूसरा द्वार खुलता था। सावगी इस मार्ग से बाहर आ गई और एक कुण्ड में बैठकर तपस्या करने लगी। उसे कोई भी नहीं ढूँढ़ सका। सात वर्षों तक सावगी ने वहाँ कुण्ड में बैठकर तपस्या की। एक दिन अचानक वह कुण्ड पानी से भर गया। सब चरवाहों ने देखा। सावगी पानी पर ऊपर तैर गई। वह आलकी-पालकी मारकर आँखें बन्द करके बैठी थी। मुख पर सूरज की चमक थी। थोड़ी देर में वह तपस्या से जागी और कुण्ड से बाहर आ गई। जहाँ अभी मन्दिर है, वहाँ वह विराज गई। वहीं उसने अपनी नश्वर देह त्याग दी। जोत में जोत मिल गई। बाद में उसके परिवार ने व समाज ने वहीं उसका चबूतरा बना दिया। कई वर्षों तक वहाँ चबूतरा खाली रहा, फिर वहाँ



पिण्डी स्थापना हुई। एक बार कुछ भील कहीं से एक सुन्दर मूर्ति पाड़ों पर लादकर उठा लाये। उन्होंने यहीं मुकाम दिया। बहुत बड़ा भील दल था। मूर्ति को उन्होंने इसी रुण्डी पर रख दिया। सबने सोचा, इसे यहीं स्थापित कर दें। कुछ लोग इसे गढ़ा में स्थापित करना चाहते थे। मूर्ति वहाँ से उठ नहीं पायी। अन्ततः सबने उसे उसी चबूतरे पर स्थापित कर दिया।

आज तक उसे भील समाज महिषासुर मर्दिनी और हिंगलाज माता नाम से पूज रहे थे। बलि तब भी होती थी, आज भी होती है। बकरे से लगाकर पाड़े तक की बलि होती है। मूर्ति कमल पर विराजित लक्ष्मीजी की है। शीर्ष पर दोनों ओर गज सूँडों में कलश लिए माता का अभिषेक कर रहे हैं। कमल से नीचे समुद्र मंथन का कोरावण भी है। सावगी स्वयं ही लक्ष्मी स्वरूपा थी। इस कारण संयोगवश उसकी मूर्ति भी लक्ष्मी की ही स्थापित हुई। यह भी संयोग ही था। मूर्ति का स्वरूप कुछ भी हो। माता को जिसने जिस भाव से पूजा, उसे माता ने स्वीकारा और मन माँगा फल दिया।

आज माता का दर्शन करने दूर-दूर से लोग आते हैं। मन्नत-मनौती करते हैं। सबकी अर्ज माता सावगी माला देवी के रूप में सुनती है और मनवांछित फल देती है। दोनों नवरात्रि में जवारे बोये जाते हैं। पूरी धूमधाम के साथ नवरात्रि की पूर्णाहुति होती है। हज़ारों आस्तिक यहाँ दर्शन करने आते हैं। रात में यहाँ कोई नहीं रहता। भील पुजारी गुलाबगंज का है। वह संध्या को पट बड़े करके घर लौट जाता है। कहते हैं- रात भर यहाँ बन्दर माता के समक्ष बैठकर कीर्तन करते हैं। कभी-कभी अपनी वनदेवी के दर्शन करने शेर भी आ जाता है। पक्षीगण अपना कलरव कर प्रातःकाल में माता के गुणगान करते हैं। समग्र दशपुर जनपद में गजलक्ष्मी की यह एकमात्र मूर्ति यहाँ स्थापित है। वनदेवी का यह मनोरम और आध्यात्मिक तीर्थ पूरे क्षेत्र के लिए आस्था और विश्वास का तीर्थ है।

### आवरी ( आसावरी माता )

आवरी माता मेवाड़ और मालवा की आस्था देवी हैं। दशपुर अंचल से जो भी श्रद्धालु साँवरियाजी जाता है, वह आवरी माता के दर्शन करने

अवश्य जाता है। दशपुर अंचल की सात लोकमाताओं में आवरी माता एक हैं।

*आद धाम आँतरी।*

*मोड़ी तखत मंडाण।*

*मसरौली मेहमा घणी, महुए मात परवाण।*

*भादवा जोत ज्वाल की।*

*सतियाँ रो सत जाण।*

*साँगाखेड़ा आवरी, दूदाखेड़ी सकराण।*

*भँवरा रो भालो उठे चामुण्डा रो उठे निसाण।*

तथा

*आँवरी आसापुरी, दूभर ज्वाल भाण पर की आण।*

*पातूखी मात सतवंती, सतियाँ री ओल खाण।*

इस प्रकार दशपुर अंचल के लिए लोकमाता आवरी वैसी ही आस्था की देवी हैं, जैसी भादवा माता, आँतरी माता, दूदाखेड़ी माता, रूपण माता, साँगाखेड़ा माता अथवा अन्य लोकमाताएँ। इन्हें सात बहनें कहा जाता है। मालवा में इन्हें 'मालवियाँ माई' भी कहा जाता है। जब कोई रोगी एक धाम पर ठीक नहीं होता, तब उस धाम की माता दूसरे धाम की लोकमाता को न्यौतकर बुलाती है। यह ठीक उसी प्रकार है, जिस प्रकार वैद्य या डॉक्टर रोग निवारण हेतु परस्पर आमंत्रित करते हैं।

वस्तुतः आसावरी उस गाँव का नाम है, जहाँ यह लोकमाता विराजमान है। आसावरी माता मूलतः एक राजपूत कन्या थी। इनका मूल नाम केसर कुँवर था। इनकी माता का नाम सुखवन्त कुँवर और पिता का नाम आशासिंह था। वह कन्या माँ गोरज्या की परमभक्त थी।

उसके विवाह के लिए एक साथ सात बारातें आ पहुँचीं। उसके मंगेतर की युद्ध में घात हो गयी। जब केसर कुँवर को पता चला कि उसके मंगेतर के साथ विश्वासघात हुआ है। ये सातों दूल्हे उनके विश्वासघाती हैं और अब परस्पर बैर भाव लेकर यहाँ चढ़ आये हैं। यहाँ भयंकर रक्तपात होगा। यह सोचकर केसर कुँवर ने माता गोरज्या की पूजा के निमित्त पूजा की

थाली सजायी और सखियों के साथ महलों से बाहर निकल पड़ी। जहाँ वर्तमान में माता आसावरी का स्थान है, वहाँ आकर उसने माता को पुकारा। धरती फटी और केसर कुँवर धरती में समा गई। साड़ी का पल्लू बाहर रह गया। सखियों ने महलों में सूचना दी। सबने आकर चमत्कार देखा। सब नतमस्तक हो गये। संघर्ष टल गया। रक्तपात होने से बच गया। जहाँ केसर कुँवर ने धरती प्रवेश किया, उस क्षेत्र में पाँच बड़ले (वट) उगे। उन्हीं बड़लों के मध्य आसावरी माता की स्थापना की गयी। माता सबकी आशाएँ पूरती हैं। यह कह पाना कठिन है कि आस पूर्ण करने वाली माता के नाम पर गाँव का नाम आसावरी हुआ अथवा गाँव के नाम के कारण माता का नाम हुआ। सम्भावना यह लगी है कि जहाँ माँ ने धरती प्रवेश किया, वहाँ बस्ती नहीं थी। माँ के प्रताप और यश-ख्याति के बाद वहाँ बस्ती हुई। वह बस्ती माँ आशापूरा या आशावरी के नाम से ख्यात हुई। जो भी हो, आसावरी (आवरी) लोकमाता मेवाड़ के चित्तौड़ अंचल की ही नहीं, समग्र दशपुर जनपद और मालवा की भी आस्था देवी हैं। इस माता की छह बहनें दशपुर जनपद में विराजती हैं। आसावरी माता का आगमन अनेक बार इस अंचल में होता रहता है। अनेक गाँवों में आसावरी माता के थानक बने हुए हैं।

यह लोकमाता आरोग्यदायिनी एवं दूध-पूत की दात्री है। लकवा के कई मरीज इनकी शरण में आते हैं और ठीक होकर अपने घर वापस स्वयं चलकर जाते हैं। यह वरदायिनी माता रात्रि में स्वयं पधारकर अपनी शरण आये मरीजों को आशीषती है। इनकी सवारी प्रति-रात्रि निकलती है। मूल रूप से यह माता भी भील आस्था की ही देवी है। भीलों की बस्तियों में आसावरी या आवरी माता के देवरे बनाये जाते हैं। पूर्व में कई थानक पालों/फालों में स्थित हैं, जहाँ आवरी माता की नियमित पूजा होती है।

### आसन दरियानाथ की 'हिंगलाज माता'

हिंगलाज माता का मूल स्थान अफगान के कोटड़ी में है। वहाँ आज भी इसकी पूजा एक अफगान परिवार करता है। यह मुसलमान परिवार चोगला चारणों का ही मूल है, जिसने धर्म परिवर्तन कर लिया था। वहीं से

किसी समय जोत लाकर भारत के अन्य भागों में हिंगलाज माता के देवरे और मन्दिर स्थापित किये गये। एक विरद के अनुसार हिंगलाज माता को आदिशक्ति का प्रथम अवतार माना गया है। अफगान में हिंगलाज माता की पूजा कन्या ही कर सकती है। इस परिवार का मुखिया कोटड़ी का पीर कहलाता है।

*प्रथम रूप देवी तू प्रसन्न भई, जाय हिंगलाज केवणी।*

*नाग, किन्नर, देव, असुर ती सदा पुजाणी।*

*हिंगलाज ती हिंगलाजगढ़ थेपाणी।*

*अड़सठ तीरथ अगले, जाई जल में रेवाणी।*

*परगट पाट धराणी।*

*जदकी देवल चारणी तोहे जाणी।*

देवी हिंगलाज का शास्त्रीय रूप जो भी मान्य हो, लोक आस्था की यह माता आदिशक्ति का प्रथम अवतार मानी गयी है, जिसे नाग, किन्नर, देव, असुर सभी आदिकाल से पूजते आ रहे हैं। हिंगलाज माता के दशपुर जनपद में और भी स्थान हैं। इनमें प्रमुख स्थान अठाना (जावद) में आसन दरियानाथ है। वस्तुतः दरियानाथ का आसन बना उस समय जब वहाँ भीलों की बस्तियाँ मौजूद थीं। यह आसन अरावली से निकट तल में स्थित है। दरियानाथ और उनके बाद आये सभी नाथ तांत्रिक विद्या में सिद्ध थे। दरियानाथ जी ने यह आसन यहाँ संवत् 1331 विक्रमी में स्थापित किया। यहाँ के अनेक चमत्कार लोकजीवन में प्रसिद्ध हैं। आसन के ही पास सुखानन्द का प्रसिद्ध शिवतीर्थ है। यह तीर्थ भी आदिवासी समुदाय के दशपुर जनपद में दस प्रमुख तीर्थों में से एक है।

ऐसा 'भील ठिकाणा की विरदगाथा' के पद-40 में कहा गया है।

*संकोदारो केदारो, अंतारी आमद सुखधाम।*

*साकर्यो बुज राँपरो, भानपर सालरमालो गाम॥*

*खास ठिकाणा हे भीलां का, ई दस तीरथ धाम।*

*छोटा गामड़ा हजारणा, मोटा छप्पन नाम॥*

(विरद वखाण, डॉ. पूरन सहगल)

आसन दरियानाथ में स्थापित हिंगलाज माता भी भील समुदाय की ही आराध्य देवी हैं। वह क्षेत्र आसन की ज़ागीर में आ जाने के कारण वहाँ के नाथों ने वहाँ पूर्व में स्थित देवी का मन्दिर बनवा दिया और विधिवत् पूजा करने लगे। नाथ-सिद्धों की इष्टदेवी भी हिंगलाज ही बखानी गयी है। इस कारण आसन के नाथों ने भील समुदाय द्वारा स्थापित हिंगलाज माता को विशेष महत्त्व दिया। मान्यता यह है कि यहाँ बसने वाली आदिवासी जातियों ने हिंगलाजगढ़ से जोत लाकर यहाँ माता की स्थापना की थी। ऐसे अनेक उदाहरण हैं कि किन्हीं कारणों से कोई देवस्थान आदि किसी भी क्रय की गयी ज़मीन में आ गया, तो नये भू-स्वामी ने उसे व्यवस्थित करवा दिया और समय-समय पर उसकी पूजा भी करते हैं।

हिंगलाज का वर्तमान दुर्ग किसने बनवाया और इस पर आज तक किस-किस राजा की सत्ता रही, यह खोज करना यहाँ अभीष्ट नहीं है। हिंगलाजगढ़ जहाँ आज स्थित है, वहाँ किसी समय भीलों की सत्ता थी। भीलों के कुछ परिवार वहाँ आकर बसे।

### हिंगलाजगढ़ की हिंगलाज माता

लोक चर्चा एवं भील ठिकाणा की विरदगाथा में यह मान्यता प्रकट की गयी है कि यहाँ भीलों ने गाँव बसाया। अरावली का यह पठार सुरक्षा की स्थिति से तो महत्त्वपूर्ण है ही, तारवली और मण्डेसरी नदियों के बहने तथा तारखाजी के कुण्ड के कारण पानी की सुविधा भी यहाँ पर्याप्त है। इस पठार पर भीलों के अनेक गाँव होने के कारण भी इस बात की पुष्टि होती है कि जहाँ आज हिंगलाजगढ़ है, वहाँ पहले भील बस्तियाँ रही होंगी।

*हींगल रे भई हींगल, भैंसासरी जी मात ।*

*पेलां थापी जगराणी, पछे जिमाड़ी जात ॥*

*जात जिमाड़ी धापमा, ऊँचो राख्यो नाम ।*

*पेल्या पूज्या हींगल मात ने, पछे वसायो गाम ॥*

(विरद वखाण, डॉ. पूरन सहगल, पद -31-32, )

इसी विरद में हींगल गाँव को बसाने वाले किसी कटारा भील का वर्णन आया है। इस विरदगाथा पद 33 से 39 में हींगल माता और कटारा भील का वर्णन मिलता है। आज भी इस वन-दुर्ग के पश्चिमी द्वार का नाम 'कटारा पोल' विरदगाथा में 'गढ़ नाथ' कहा गया है। कटारा पोल के बाहर जो भैरव स्थान है, उसे कटारा भैरव कहा जाता है। गढ़ में स्थापित हिंगलाज माता का मन्दिर आज भी जागृत है। यहाँ नियमित रूप से खेतर माता अथवा होकड़ी माता की पूजा भी होती है। इन्हीं भीलों में एक ताखी या ताखली भी थी, जो बहुत वीरगना थी। किसी युद्ध में वीरगति को प्राप्त हो गई। उसकी जोत हिंगलाज माता में विलीन हो गई।

*वाँ ती उड़ी गई गढ़ भीतर, बना सीस की लोत ।*

*हींगल मात के सरणे होई, मली जोत में जोत ॥*

*पूजे भील कामठावारी, चढ़े कूकड़ो धार ।*

*पूत दूध हुआग भाग की, जामण राखण हार ॥*

*सतियाँ को सत राखे, बाझण ने देवे पूत ।*

*फसलाँ अन्न अतरो निपजावे, जाँ की कोइनी कूत ॥*

*संकोदर में थापन करी, खुद जा रामे भील ।*

*हुआग भाग धन अन्न बकसावे, सुख्यो राखे डील ॥*

(विरद वखाण, डॉ. पूरन सहगल, पद 78-81)

इसी ताखी माता को बाद में खेतर माता और होकड़ी माता भी कहा गया है।

*ताखी मात की जै, खेतर मात की जै ।*

*ओकड़ी मात की जै, भीलण मात की जै ॥*

(विरद वखाण, डॉ. पूरन सहगल, पद 82)

### खेतर माता अथवा होकड़ी माता

खेतर माता या तारवली माता ही ओकड़ी या होकड़ी माता है। यह माता शंखोद्धार तीर्थ पर स्थित देवी थी। भील समुदाय इस माता को विशेष रूप से पूजता रहा है। विशेष रूप से विवाह के पश्चात् नवविवाहिता उसमें

भी पूर्व पत्नी की मृत्यु के बाद नयी पत्नी को यहाँ आकर पूरी धूमधाम से होकड़ी माता को पूजना अनिवार्य था। यह मूर्ति एक विशेष रूप वाली मूर्ति थी। शंखोद्धार तीर्थ पर चर्मक ऋषि की समाधि के दाहिनी ओर एक छोटी-सी मन्दिर में एक फुट चौड़ाई और दो फुट ऊँचाई वाले शिलापट पर उकेरी गयी यह मूर्ति भीलों की आराध्य देवी थी। इस मूर्ति के दाहिने हाथ में दरौंती, बायीं बगल में टोपली, टोपली में गेहूँ की बालियाँ, शाक-सब्जियाँ, गन्ने की हरी साँट, इस टोपले वाले हाथ में भी गेहूँ की बालियाँ, पीठ-काँधे पर कामठा व बाण-तुणीर, घुटनों तक घाघरी, काँचली, लूगड़ी, माथे पर रखड़ी - ऐसी छवि थी ओकड़ी माता अथवा खेतर माता की। यह माता भी अन्य अनेक समाधियों और मूर्तियों के साथ गाँधीसागर जल विस्तार में डूब गयी।

**भैंसासरी माता**-हिंगलाजगढ़ में हिंगलाज माता के निकट ही एक लोकमाता का और स्थान भी है, जिसे भैंसासरी माता कहा जाता है। यह भी मान्यता है कि इसी माता की जोत ले जाकर रामपुरा के भील राजा रामा ने शंखोद्धार तीर्थ में खेतर माता (ओकड़ी माता) की स्थापना की। लोक मान्यता के अनुसार रामा भील को ऐसा करने के लिए स्वयं हिंगलाज माता ने परचा दिया। हिंगलाज माता की पूजा के समय अनेक लोकगीत प्रचलित हैं। उनमें से यह एक लोकगीत दृष्टव्य है-

*रातीजोगो सती सेवां हिंगलाज*

*सतियाँ रा डेरा हवा बाग में कणिपत सेवां हिंगलाज*

*बावड़ लो नी बीड़ो पान को*

*कणिपत मेल्या सासू-सुसरा, हे म्हारी सतियार*

*कणिपत मेल्या माय न बाप, हो मोटा का जाया वावड़...*

*हाँसत मेल्या सासू-सुसरा ने, रोयत मेल्या माय न बाप*

*मोटा का जाया वावड़...*

*कणियारी घसी अम्मर पाल, हे म्हारी सतियार*

*सजनारी घसी अम्मर पाल, मोटा का जाया वावड़...*

*कणिपत मेल्या ऊंडा ओवरा,*

*कणिपत मेल्या सूरजपाल मोटा का जाया...*

*अरे घोड़े चड़ी ने बाग मरोड़ी म्हारी सतियार,*

*कणिपत सेवाँ हिंगलाज, मोटा का जाया,*

*बावड़ लो नी बीड़ो पान को*

अरी हिंगलाज माता! सतियों का डेरा हवा बाग में है, किस तरह उनकी सेवा करें। अरी बहू! पान बीड़ा तो लो। अरी सती! आपने सास-ससुर को किस तरह छोड़ा और माता-पिता को भी कैसे छोड़ा? अरी समर्थ की संतान! खुशी-खुश सास-ससुर को छोड़ा और माता-पिता को रोते हुए छोड़ा। अरी सती! अमर पाल (मर्यादा) किस प्रकार उज्ज्वल हो गयी? प्रियतम की मर्यादा उज्ज्वल हुई। गहरे मकान किस प्रकार रखे? किस प्रकार सूर्य की मर्यादा रखी? किस प्रकार देवर-जेठ को छोड़ा और कैसे अपने छोटे बच्चों को छोड़ा? मेरी सती ने घोड़े पर बैठकर लगाम थामी। किस प्रकार हिंगलाज की पूजा की? अरे समर्थ की संतान! पान का बीड़ा फिर से लो न।

### **मोड़ी की भैंसासरी माता ( पतूखी माता )**

मोड़ी की पतूखी माता गाँधीसागर बाँध के जल विस्तार में विलीन मोड़ी नगर महाभारतकालीन नगर माना जाता था। कहते हैं- यह नगर किसी समय मकरध्वज की राजधानी रहा था। इस नगर का नाम ही मकरध्वज नगर था। मकरध्वज से मोड़ी नामकरण की यात्रा निश्चित ही बहुत लम्बी रही होगी। यहाँ के विशाल भवन, मन्दिर आदि देखकर उसके वैभवशाली अतीत का अनुमान सहज ही लगाया जा सकता था। मोड़ी में तेरहवीं शताब्दी के शिवालय के शिखर निर्माण की अभियांत्रिक युक्ति, जिसे उड़ीसा में 'मोड़/मूड़' कहा जाता है। ऐसी शिखर शिल्प की अभियांत्रिक युक्ति अर्थात् मूड़ यहाँ बहुत थे। सम्भवतः इसी 'मोड़' शिल्प के कारण यह नगर 'मोड़ी' कहलाया हो। मोड़ी के अनेक बहुमंजिले भवनों और मन्दिरों में एक विशाल मन्दिर मोड़ी माता का भी था। यह माता पूरे क्षेत्र में पूज्य थी। महिषासुर मर्दिनी की स्थापना के विषय में इतिहास भले ही मौन हो, किन्तु

लोकजीवन में व्याप्त माता के यश की अनेक घटनाएँ आज भी चर्चित हैं। भले ही मोड़ी नगर जलविलीन हो गया हो, किन्तु माता का यश तो लोकजीवन में अमर है। तंत्रशास्त्र के अनुसार यह नगर तांत्रिकों का साधनास्थल रहा है। यहाँ तंत्रविद्या के अनेक स्थल उपलब्ध थे।

मोड़ी गाँव का ज़ागीरदार प्रजापालक था। उसे माता का इष्ट था। महिषासुरी माता उसकी इष्टदेवी थी। मोड़ी राज्य बहुत ही सम्पन्न राज्य था। पूरे क्षेत्र में वैसे महल नहीं थे। मोड़ी के ज़ागीरदार का सौतेला भाई कई बार राज्य हथियाने के लिए षड्यंत्र कर चुका था। हर बार वह मात खा चुका था। उसे कहीं से एक सिद्ध तांत्रिक मिल गया। वह नाथ सम्प्रदाय का था। उसने अपनी तंत्रविद्या से राज्य में विपत्तियाँ खड़ी करनी शुरू कर दीं। उसी राज्य के निकट एक भील गाँव था। वहाँ का मुखिया पूरे भील चौघड़े का नायक था। उसकी बेटी का विवाह मोड़ी में हुआ था। आणा नहीं हुआ था। भील मुखिया की बेटी सोमल माता की अनन्य भक्त थी। उसने नवरात्रि में माता का तप किया। माता प्रसन्न हुई। परचा दिया। सोमल ने कहा- 'माता! मैंने आपको माता माना है। मेरी इच्छा है कि आप भी मुझे माता पुकारें। मेरी कोख सुकारथ करें। मैं आपको अपने आँचल में ढककर स्तनपान करवाऊँ। बस यही मेरी इच्छा है।' माता भैंसासरी ने आशीर्वाद दे दिया। माता ने कहा- 'कल तुम्हारा परण्या तुम्हें लेने आये तो मना मत करना, खुशी-खुशी साथ हो लेना।' सोमल ने हामी भर दी। यह सभी बात उसने अपने माँ-बाप को भी बता दी। सारा गाँव बंदनवारों से सजाया गया। गीताचार शुरू हो गये। आसपास के भील रिश्तेदार इकट्ठे हो गये। सोमल प्रभात से ही अपनी सखियों के साथ द्वार पर पहुँचकर अपने परण्ये की प्रतीक्षा करने लगी।

माता ने मोड़ी में सोमल के परण्ये को भी परचा दिया- 'प्रभात में जाकर अपनी परणी को ले आओ। वह तुम्हारी प्रतीक्षा करेगी। देर मत करना।' सोमल के परण्ये का नाम भारुल था। वह भी माता का भक्त था। माता की पूजा उसके परिवार के जिम्मे थी। वह अपने पिता आदि सहित प्रभात को सोमल के गाँव की ओर चल पड़ा। ढोल-ढमाके, माँदल-झाँझर बज उठीं। बारात जैसा समारोह था। सोमल द्वार पर प्रतिकारत थी। ढोल-

ढमाकों की ध्वनि उसने सुन ली। इधर भी ढोल-ढमाके बज उठे। भारुल घोड़े पर बैठकर द्वार पर पहुँचा। बहुत उत्साह और उमंग के साथ अगवानी हुई। सोमल के पिता ने अपनी हैसियत के मान से सबको भोजन कराया। उसी दिन सोमल अपने परण्ये के साथ विदा हो गई।

मोड़ी पहुँचकर दोनों माता के मन्दिर में पहुँचे। दोनों ने आँखें बन्द करके माँ से मनौती माँगी। माँ ने प्रसन्न होकर आशीर्वाद रूप में एक पाती और एक फूल दिया। सोमल ने पाती उठायी और माथे पर छुआकर लुगड़ी के पल्ले में बाँध ली। भारुल ने फूल उठायी और माथे पर छुआकर पगड़ी के पल्ले में बाँध लिया। दोनों ने एक दूसरे की ओर देखा। दोनों मुस्कराये। सोमल ने कहा- माँ ने पहले मुझे पाती (पत्ती) दी है, इसलिए पहले मेरी पाती फलेगी। हमारे घर माँ का अवतार होगा। फिर फूल फलेगा। वह माँ का लाड़ला होगा। माँ की शक्ति रहेगी उसमें। हम अपनी लड़की का नाम 'पतूखी' रखेंगे और लड़के का 'फूलक्या'। समय परवाणे सोमल के दोनों बच्चे हुए। दोनों माता के भक्त। पतूखी तो माता की शक्ति रूप ही थी। फूलक्या भी माता का आशीर्वाद था।

जब तांत्रिक मोड़ी पर कहर बरसा रहा था, तब पतूखी पन्द्रह बरस की थी और फूलक्या चौदह बरस का। मोड़ी के ज़ागीरदार जब चारों ओर से परेशान हो गये, तब उन्होंने अपनी इष्टदेवी महिषासुरी के दरबार में आर्त पुकार लगायी। सोमल का पति माता का भोपा था। माता ने भाव रूप में उसके शरीर में प्रवेश कर कहा कि- 'उस तांत्रिक का मुकाबला पतूखी और फूलक्या करेंगे'।

ज़ागीरदार ने पतूखी से कहा- 'पतूखी! राज्य की प्रजा दुःखी है। तुम मदद करो। माँ का हुकुम हुआ है।' फूलक्या से भी ज़ागीरदार ने निवेदन किया। पतूखी ने कहा- आप अब उस तांत्रिक की चिन्ता न करें। अगर उसके गणराज्य पर आक्रमण करेंगे तो मेरा भाई उनका अकेला मुकाबला करेगा। अगर वह अन्य बाधाएँ राज्य में खड़ी करेगा, तो माता के प्रताप से मैं मुकाबला करूँगी।

तांत्रिक ने खड़ी फसलें सुखा दीं। पतूखी ने भूखी माता का आह्वान

किया, फिर अन्नपूर्णा से भण्डार भरने की अर्जी लगायी। भूखी माता प्रकट हुई। पतूखी ने उन्हें महिषासुरी माँ के निकट आसन दिया। अकाल टल गया। अन्नपूर्णा ने सबके भण्डार भर दिये। तांत्रिक ने महामारी फैला दी। पतूखी ने मरी माता का आह्वान किया। मरी माता प्रकट हुई। पतूखी ने उन्हें भूखी माता के निकट आसन दिया। मरी माता के प्रताप से 'मरी' (महामारी) समाप्त हो गयी। तांत्रिक ने अगले प्रहार में फिर रोगों को फैलाने और बच्चों को मृत्यु के मुँह में धकेलने के रोग फैलाये। बड़ों में उदररोग फैलाकर उनकी जठराग्नि मन्द कर दी। सबने खाना-पीना छोड़ दिया। ताखली ने इस बार परी माता का आह्वान किया। परी माता प्रकट हुई। ताखली ने उन्हें मरी माता के निकट आसन देकर निवेदन किया कि- 'हे लोकमाता परी देवी! तेरे 'बालूड़े' संकट में हैं। तेरे भक्त संकट में हैं। उनकी रक्षा करो।' परीमाता ने तत्काल कलशा भर पानी दिया। यह जल सभी कुँओं में डाल दो। जो भी उन कुँओं में नहायेगा, वह निरोग हो जायेगा। ताखली ने माता के सामने की बावड़ी में कलश का जल डाल दिया। उस जल से नमण ले जाकर सबने स्नान किया। सब निरोग हो गये।

तांत्रिक ने फिर बच्चों पर प्रहार किया। बच्चों में चेचक प्रकट हो गयी। उन्हें कूकर खाँसी हो गयी। सब घबरा गये। पतूखी ने कहा- घबराओ मत। एक भी बालक रोग से नहीं मरेगा। माता रखवाली है। उसने सीतला माता और खाँस खोसरी माताओं के सामने अर्जी लगायी। दोनों माताएँ प्रकट हुईं। पतूखी ने दोनों को प्रणाम किया। सीतला का चबूतरा बनवाकर उन्हें वहाँ आसन दिया। खाँस खोसरी माता का आसन परी माता के पास लगाया। दोनों लोकमाताओं की कृपा से सारे बालक रोगमुक्त हो गये।

तांत्रिक खीज उठा। इस बार उसने बड़ा प्रहार किया। उसने बच्चों और माताओं को ही निशाना बनाया। बच्चों में सूखा रोग फैल गया। सबके शरीर पर लाल-सफेद चकत्ते उभर आये। गर्भिणी महिलाओं के गर्भ विचलित होने लगे। पतूखी ने तत्काल लोकमाता टोकड़िया, लोकमाता लालबाई-फूलबाई और औलाद माता का आह्वान किया। चारों माताएँ एक साथ प्रकट हो गईं। पतूखी ने उन्हें क्रम से खाँस खोसरी माता के निकट आसन दिया।

उनकी कृपा से सारे संकट टल गये। जब तांत्रिक का कोई भी बस नहीं चला, तब उसने राज्य में लकवा फैला दिया।

इस बार तो पतूखी भी असमंजस में थी, वह अब क्या करे? उसने माता भैंसासरी का आह्वान किया। माता ने परचा दिया। पतूखी घबराओ मत, आँतरी माता, भादवामाता, गोरजां माता, वीशंती सावन माता, आवरी माता, साँगाखेड़ा माता, मोड़ी माता, रूपण माता की सेवा में अर्जी लगाओ। सभी लोकदेवियाँ मेरा स्वरूप हैं। पतूखी ने तत्काल फूल लेकर सभी लोकमाताओं का आह्वान किया। सभी देवियाँ जोत रूप में प्रकट हुईं और भैंसासरी की मूर्ति में विलीन हो गईं। देवियों ने कहा- पतूखी! तू चिन्ता मत कर, तू हमें स्नान करवा और वह नमण बावड़ी में पधरा दे। बावड़ी के जल से जो भी स्नान करेगा, वह निरोग होगा। तू सावधान हो जा। अब तांत्रिक का अन्त आ गया है। फूलक्या से कहो वह उसे ललकार लगाये। सारे राज्य में सुख-शान्ति हो गयी।

फूलक्या ने तांत्रिक को ललकार लगायी। उस पर बाण वर्षा कर दी। उसकी माया प्रकट हुई। उसके चारों ओर रक्षा कवच बन गया। बाणों की वर्षा व्यर्थ हो गयी। तांत्रिक ने फूलक्या पर प्रहार कर दिया। चारों ओर से साँपों ने उसे घेर लिया। झट से 'मंछा माता' प्रकट हुई। माता ने नागों को दूर हटाया। तांत्रिक ने फिर से विषधरों से प्रहार किया। इस बार हिंगलाज माता प्रकट हुई, उन्होंने सारे विषधरों को परे हटा दिया, तब पतूखी स्वयं वहाँ प्रकट हुईं। माता भैंसासरी ने उसे अपना त्रिशूल दिया। पतूखी ने तांत्रिक को ललकारा। वह खड्ग लेकर पतूखी पर लपका। फूलक्या ने अपने खड्ग पर उसका वार झेल लिया। तीन प्रहर तक युद्ध चला। जब पतूखी ने जान लिया कि तांत्रिक के पास माया की शक्ति प्रबल है, फूलक्या उसे मार नहीं पायेगा, तब उसने भैंसासरी का आह्वान किया। माता भावरूप से उसके शरीर में प्रकट हो गईं। पतूखी माता ने अपने त्रिशूल के एक ही प्रहार से तांत्रिक का वध कर दिया। पतूखी माता की जय-जयकार होने लगी।

ढोल-ढमाकों के साथ पतूखी माता को मन्दिर तक ले जाया गया। मोड़ी की माता पतूखी माता के नाम से ख्यात हुई। मोड़ी गाँव के कारण वह



मोड़ी माता कहलायी। माता के निकट विराजित नौ मूर्तियाँ (पिण्डियाँ) नौ लोकमाताओं के रूप में मान्य हुईं। वे नौ माताएँ सात महासतियों का स्वरूप हैं। इसलिए उन्हें अछरा माता का नाम दिया गया है। वे ही सप्तमातृकाएँ भी हैं।

### दूदाखेड़ी माता

दशपुर में लोकमाताओं में सात बहनें मानी जाती हैं। इन सात में— आँतरी माता, भादवामाता, साँगाखेड़ा माता, मोड़ीमाता, रूपण माता, गोरजा माता—जावद और फुव्वारी माता—संजीत। इन्हें मालवियाँ माता अथवा सत माता भी कहा जाता है।

कहीं-कहीं नौ बहनों का उल्लेख लोक मानस में मान्य है— आवरी माता और दूदाखेड़ी माता। इसी प्रकार कुछ लोग सावन (नीमच) की वीशंतीमाता की गणना भी इन लोकमाताओं में करते हैं। मूलतः वीशंतीमाता भी भील आस्था की देवी हैं, किन्तु यहाँ से भील समुदाय का पलायन होने के कारण यहाँ की पूजा नाथ परिवार (समाज) करता चला आ रहा है। माता दूध-पूत की दात्री हैं। सारे रोग-शोक नाशनी है। भैंसासरी माता भयहारिणी हैं। दूदाखेड़ी माता का महत्त्व दशपुर जनपद तथा बाहर भी बहुत आस्थापूर्ण है। नीमच तहसील की भादवा माता के समान यहाँ का महत्त्व माना जाता है। भानपुरा तहसील में गरोठ मार्ग पर यह एक भव्य एवं भयहर तीर्थस्थल है। यहाँ का दर्शन मोड़ी माता के अनुसार ही है। ऐसी पुष्ट मान्यता है कि यह स्थान मोड़ी माता (भानुपरा-गरोठ) की ज्योति से स्थापित हुआ। जैसा कि भादवा माता का स्थान मोड़ी माता (जावद) की ज्योति से जागृत हुआ है।

यह भी संयोग है कि दोनों स्थानों पर मुख्य रूप से लकवा पीड़ित रोगी निरोग होते हैं। दोनों नवरात्रों में यहाँ भव्य मेले का आयोजन होता है। दूदाखेड़ी माता भी भादवामाता की तरह लकवा के रोग तथा समस्त रोग-शोक निवारण करती हैं। वह दूध-पूत की देने वाली हैं। यह भैंसासरी माता भी भयहारिणी माता हैं।

एक लोक मान्यता के अनुसार दूदाखेड़ी के ज़ागीरदार राव दूदा के पुत्र का विवाह मोड़ी के ज़ागीरदार की बेटी से हुआ था। प्रधानुसार मोड़ी ज़ागीरदार प्रथम प्रसव के अवसर पर अपनी बेटी को मोड़ी ठिकाने ले आये। किन्हीं कारणों से दोनों ठिकानों में मन-मुटाव हो गया। दूदाखेड़ी ठिकाने का कुँवर अपनी पत्नी को लेने के लिए मोड़ी आया। मोड़ी ठाकुर ने बिना विवाद के अपनी बेटी कुँवर के साथ विदा कर दी। कुँवराइन दमनी पर तथा कुँवर घोड़े पर सवार थे। मार्ग में माता का मन्दिर आया, तो कुँवराइन ने दमनी रुकवाकर माता के दर्शन करने चाहे। इस पर कुँवर खीज गये। उन्होंने कहा— ऐसे देवरे दूदाखेड़ी में बहुत हैं। वहाँ चलकर खूब दर्शन कर लेना। विवश कुँवराइन दमनी से नीचे नहीं उतरी। दमनी आगे बढ़ गयी। मार्ग में ही कुँवराइन की तबीयत बिगड़ गयी। कुँवराइन का प्रसवकाल निकट था। मार्ग में कोई व्यवस्था नहीं थी। कुँवर घबरा गये। कुँवराइन की तबीयत ज़्यादा बिगड़ गयी। वह बेसुध हो गई। उन्हें लकवे जैसी बीमारी हो गई। दमणी तेज दौड़ाना भी खतरे भरा था। कुँवराइन को थोड़ी सुध आई तो उन्होंने दमणी वापस मोड़ी की ओर मोड़कर माता के मन्दिर में ले जाने का आग्रह किया। कुँवर ने बात मान ली। मोड़ी अधिक दूर नहीं था। माता के मन्दिर में पहुँचकर जैसे-तैसे कुँवराइन को माता के चरणों में लिटा दिया गया। ठिकाने पर खबर करवायी गयी। वहाँ से ठकुराइन और दाई माँ तत्काल पहुँच गईं। ठकुराइन ने माँ से क्षमा माँगी। रात हो आई। कुँवराइन बेसुध थी।

आधी रात को माता फेरी पर आई। उन्होंने कुँवराइन के सिर पर हाथ फेरा। वे एक वृद्धा के रूप में थीं। उन्होंने दाई माँ को उठाया। कुँवराइन ठीक हो गई। दाई माँ उन्हें वहाँ से बाहर एक कमरे में ले गईं। वहाँ कुँवराइन का प्रसव करवाया। प्रातः जब सबको मालूम पड़ा, तो सब लोग माँ की कृपा मान उनके चरणों में नमित हुए। प्रभात में ठाकुर दूदा राव व उनका परिवार भी वहाँ पहुँच गया। सबने माँ की कृपा मानी। सूरज पूजने के पश्चात् ढोल-ढमाके से जच्चा-बच्चा को माँ के चरणों में धोकाया। राव दूदा ने माँ से प्रार्थना की— 'माँ! आप मेरे ठिकाने पधारो। मैं ठिकाने तभी जाऊँगा, जब आप साथ

चलने की सहमति प्रदान करेंगी।' माँ ने परचा दिया। सहमति फरमाई। राव दूदा माँ की जोत लेकर अरवाणे पाँव ठिकाने पहुँचे। वहाँ माता की स्थापना करवायी। तब से मोड़ी की माता पतूखी 'दूदा की माता' कहलायी। दूदा से कालान्तर में दूधा हो गया। माता का पुजारी मोड़ी ठिकाने के भील पुजारी के परिवार से वहाँ गया। राव दूदा ने मन्दिर बँधवाया, पुजारी की ज़ागीर निकाली। मन्दिर की भी ज़ागीर निकाली। मोड़ी के राव ने दूधाखेड़ी का कुण्ड बनवाया। दूदाखेड़ी को केसर माता या केसरबाई भी कहा जाता है।

भीलों के पुजारी परिवार ने किसी पीढ़ी में माता की पूजा में लापरवाही बरतना शुरू कर दी। आचरण शुद्ध नहीं रहा। तब माता ने भाव रूप में एक नाथ के शरीर में प्रवेश कर उसे पूजा का आदेश दिया। तब से नाथ परिवार माता की पूजा करता चला आ रहा है। दूधाखेड़ी का यह शक्तिपीठ गरोठ भानपुरा की ओर चौदह किलोमीटर एवं भानपुरा से गरोठ की ओर बारह किलोमीटर की दूरी पर मुख्यमार्ग से पूर्व में स्थित है। लोक मान्यता के अनुसार यह मूर्ति अति प्राचीन है। अहिल्याबाई होल्कर ने इस मन्दिर का जीर्णोद्धार करवाया। होल्कर राजवंश के लिए यह स्थल सदा आस्था तीर्थ के रूप में पूज्य माना जाता रहा। भानपुरा से स्वयं महाराज यशवन्तराव होल्कर यहाँ दर्शन करने आते थे। भानपुरा से यशवन्तराव होल्कर की छत्री से दशहरा पर्व पर निकलने वाली सवारी माताजी के जवारे चढ़ने के बाद निकाली जाती थी।

लोक आस्था का प्रतीक यह धाम धीरे-धीरे विशालता प्राप्त करता जा रहा है। यहाँ श्रद्धालुओं द्वारा 33 करोड़ देवी-देवताओं का वास इस शक्तिपीठ पर माना जाता है। यहाँ की बावड़ी-तालाब में स्नान करने से सप्त तीर्थों, सप्त सागरों और सप्त नदियों के पवित्र स्नान का फल मिलता है। सब रोग-शोक मिट जाते हैं। सारे दोरम-सोरम मिट जाते हैं। नवदुर्गाओं का वास इसी धाम में है। माता दूदाखेड़ी दशपुर जनपद की सात बहनों में से एक मानी जाती हैं। इन सात बहनों में भादवा माता, आँतरी माता, आवरी माता, साँगाखेड़ा माता प्रमुख हैं। इन सात बहनों को मालवियाँ माई भी कहा जाता है। माताजी के स्थान पर अनेक चमत्कारिया प्रसंग लोक प्रचलित हैं।

## चोरों की आम्बा माता

भानपुरा से उत्तर-पश्चिम में प्रवाहित गोलाम्बा नाला बहुत ही गहन नाला है। यह चोरों के मिलन और मिलकर योजना बनाने का गुप्त नाला माना जाता था। यहाँ दिन में भी अँधेरा रहता था। इसी नाले में चोरों की देवी भैंसासरी विराजित थी। स्थापना के नाम पर केवल एक त्रिशूल गाड़ा हुआ था। सिन्दूर से इस त्रिशूल की माँडना की गयी थी। आज भी माँ का यह अदृश्य रूप मौजूद है। चोरों की गोपन वृत्ति के कारण उनकी माता भी गुप्त थी। यहाँ किसी समय प्रतिदिन बलि होती थी। शराब चढ़ती थी। चोरों ने एक भील पुजारी को नित पूजा के लिए निर्धारित कर रखा था। चोरों की यह मान्यता थी कि भैंसासरी भील की सेवा से शीघ्र प्रसन्न होती हैं।

वहीं पुजारी लोह भी करता था। विश्वसनीय भी था। यह भी सम्भव है कि वह इन चोरों का भेदिया अथवा सहकर्मी भी रहा हो। चोरों की इस देवी की पूजा आज भी होती है। कौन सिन्दूर लगाता है, कौन धूप ध्यान करता है - कोई नहीं जानता। यदा-कदा बलि होने के चिह्न भी देखे गये हैं। स्थान जागृत है। यह नाला पुरातात्विक दृष्टि से भी महत्वपूर्ण है।

## भानपुरा की गढ़ माताएँ एवं नागर माता

भानपुरा नगर, जहाँ मातृशक्तियों का मुख्य स्थल है, वहीं यह क्षेत्र तांत्रिकों का साधना क्षेत्र भी रहा। विशेष रूप से शाक्त एवं शैव नाथ तांत्रिक सम्प्रदाय के अनेक साधक मुकुन्दरा (अरावली) के पठार पर तथा सम्पूर्ण विस्तृत स्थलों पर अपने-अपने पीठों पर तांत्रिक साधनाओं में लीन रहे हैं। मुख्य रूप से यह क्षेत्र भील समुदायों का सत्ता केन्द्र रहा है। जितने भी शक्तिपीठ रहे हैं, भीलों के सत्ता से बाहर हो जाने के पश्चात् नाथ तांत्रिकों ने इन स्थलों को अपना साधनास्थल बनाकर वहाँ की पूजा-अर्चना का अधिकार प्राप्त किया।

### भैंसासरी माता

भानपुरा का क़िला (नगरकोट) संवत् 1647 विक्रमी में बना, ऐसी इतिहासकारों की मान्यता है। यह नगरकोट चन्द्रावतों के सत्ताकाल में बना। इससे पूर्व भी यहाँ बस्ती थी। वह बस्ती भील समुदाय की थी। नगरकोट तब भी वहाँ था, किन्तु वह इतना विस्तृत नहीं था। यह भील बस्ती हिंगलाज पठार से उतरकर यहाँ बसी थी। दूभर नामक भीलनायक ने यहाँ अपनी सत्ता स्थापित की थी। वह कटारा का वंशज था। इसके अधिकार में पच्चीस गाँव थे। बोधन ने भी अपनी सत्ता इसी क्षेत्र में स्थापित की। सम्भवतः उसका सत्ता क्षेत्र वर्तमान भवानी मण्डी क्षेत्र में रहा। दूभर और बोधन दोनों सगे भाई थे। दूभर ने अपनी कुलदेवी हिंगलाज और भैंसासरी की मूर्तियाँ

अपनी राजधानी भानपुरा में आकर स्थापित कीं। ऐसी भी मान्यता है कि दूभर ने जब यहाँ भील बस्ती बसायी, उससे पहले भी इस स्थान का नाम भानपुरा ही था। वह एक बेचिराग बस्ती थी। उसी बस्ती को भानपुरा नाम से ही दूभर ने आबाद किया। वह बहुत ही वीर योद्धा था। अपनी आस्था देवियों की स्थापना में उसने पूरी जात जिमाई। बहुत बड़ा जश्र मनाया गया। बकरों और पाड़ों की बलि दी गई। शराब के कलसे चढ़ाये गये। उसके बाद तीसरी पीढ़ी में भाना हुआ। उसकी सत्ता का विस्तार बहुत फैला। उसका भाई शामा था, जिसने शामपुर बसाया। यही शामपुर बाद में शामगढ़ कहलाया। शामा ने भी अपने महल में अपनी कुलदेवी भैंसासरी की स्थापना की। किसी समय यह स्थान नगर के मध्य में था।

भाना और शामा से चन्द्रावतों ने सत्ता छीनकर भीलों का प्रभाव समाप्त कर दिया। दोनों भाई मारे गये। धीरे-धीरे भील समाज यहाँ से पलायन कर गया। भानपुरा कोट के मध्य भैंसासरी और हिंगलाज की दोनों मूर्तियाँ वहाँ स्थापित हैं। भील समुदाय के पश्चात् माली समाज इस शक्तिपीठ को पूजता रहा। वर्तमान में यहाँ की पूजा नाथ समाज के पुजारी परिवार के पास है। यह मान्यता है कि वर्तमान मन्दिर का निर्माण संवत् 1515 में कभी हुआ। भानपुरा नगर के कोट में चारों द्वारों पर लोकमाताओं के पीठ स्थापित हैं।

### रामपुरा दरवाजे की दूदाखेड़ी माता

रामपुरा दरवाजे में प्रवेश करते ही दाहिने हाथ की ओर दूदाखेड़ी माता का स्थान है। ऐसी मान्यता है कि इसकी स्थापना भी भील पुजारियों ने की थी। लोक साक्ष्य के आधार पर लगभग चार सौ वर्ष पूर्व यहाँ दूदाखेड़ी माता का स्थान निर्मित किया गया। यह मोहल्ला तमोली समाज बहुल है। इस माता पीठ की पूजा वर्तमान में नाथ समाज का पुजारी करता है।

### माता पोल दरवाजे की भैंसासरी माता

मातापोल दरवाजा राजघाट दरवाजा भी कहलाता है। माता की स्थापना के कारण यह मातापोल कहलाता है तथा रेवा के तट पर बने घाटों के कारण

यह घाटा दरवाजा कहलाता है। राजपरिवार के लोग इन घाटों पर स्नान करते थे एवं पुण्य पर्वों पर दान-पुण्य करते थे। इसी कारण उसे राजघाट दरवाजा कहा गया है। इसी घाट पर भानपुरा के शंकराचार्य मठ के प्रथम पीठाधीश्वर विश्वेश्वरानन्दजी गिरि की समाधि बनी है। दरवाजे के पास अष्टभुजा महिषासुर (भैंसासरी माता) का मन्दिर है। मराठा काल में इस मन्दिर पर ज़ागीर भी निकाली गयी। पुजारी के लिए भी पृथक से ज़ागीर है। वर्तमान में महाराष्ट्रीयन ब्राह्मण कुल के वारिस श्री हिंगे इसकी पूजा व्यवस्था सँभालते हैं।

### लोटखेड़ी दरवाजे की लालबाई-फूलबाई माता

लोटखेड़ी पर लालबाई-फूलबाई माताओं का स्थान है। ये दोनों देवियाँ भी भील समुदाय की आस्था देवियाँ हैं। इस पूरे जनपद में लालबाई (केसरबाई)-फूलबाई के अनेक स्थल हैं। वर्तमान में इस स्थानक की पूजा व्यवस्था तेली समाज के जिम्मे है। इस थानक का पुजारी नाथ समाज का है। गंगाराम नाथ के अनुसार लगभग तीन सौ वर्षों से उनका परिवार इन माताओं की पूजा करता चला आ रहा है। यहाँ पर भैरव भी स्थापित हैं।

### नीमथूर दरवाजे की भैंसासरी माता

इस द्वार पर भैंसासरी लोकमाता की मूर्ति स्थापित है। यह भी मूल रूप से भील समाज की आस्था देवी हैं। वर्तमान में यहाँ का पुजारी भी नाथ समाज का ही है। यह द्वार नगर का पूर्वी प्रवेशद्वार है। यह माता नगर के मध्य स्थापित माता की जोत लाकर स्थापित की गयी थी। भील समाज विशेष अवसरों पर यहाँ बलि व धार देता था।

### नागर माता

दशपुर अंचल में नागपूजा का महत्त्व आदिकाल से रहा है। यहाँ अनेक ऐसी जातियाँ हैं, जो नाग टोटमयुक्त हैं। उन्हीं में से एक जाति सूर्यवंशी कुमरावत तमोली समाज भी है। इस समाज की अराध्य देवी नागर माता अथवा नागमाता हैं। यही नागा माता, महामाता, नागमाता, मैनसिल माता

आदि नामों से सम्पूज्य है। भानपुरा में रेवा नदी के उत्तर में छोटा महादेव मन्दिर मार्ग पर नागर माता का मन्दिर स्थित है। उसी माता को नानादेवी के नाम से भी पूजा जाता है। ईसा पूर्व प्रथम सदी में नानादेवी का उल्लेख मिलता है। कनिष्क के सिक्कों पर नानादेवी शब्द उत्कीर्ण है। इस क्षेत्र के समस्त पान कृषकों (तमोली समाज) द्वारा यह माता प्राचीनकाल से ही आस्था का केन्द्र है। भानपुरा में नागर माता की इस प्रतिमा की स्थापना लगभग सत्रहवीं शताब्दी के मध्य में हुई। ऐसा अनुमानित है। इस मन्दिर की प्रतिमाओं में नागराज वासुकि, नागदेवी (नाग पत्नी) अर्थात् नागमाता एवं उनकी पुत्री नागवल्ली की मूर्तियाँ उत्कीर्ण हैं।

जब विवाह योग्य नागपुत्री नागवल्ली अपने पिता वासुकि एवं माता नानादेवी (नागदेवी) के साथ उचित वर की तलाश में पाताललोक से नागलोक पधारी। उसी दृश्य को यहाँ दर्शाया गया है। भानपुरा में नागर माता का यह लोकतीर्थ समग्र समाज के लिए समान रूप से आस्था तीर्थ है। इसी क्षेत्र में तक्षेश्वर (ताखाजी), कुकड़ेश्वर का कोटेश्वर आदि तक्षक तीर्थ इस क्षेत्र को नाग जातियों के आदिधाम के रूप में देखने की दृष्टि प्रदान करता है। इस विषय पर पृथक से शोध की आवश्यकता है। दशपुर जनपद के नाग देवों या मन्दिरों का बहुतायत से होना एक महत्त्वपूर्ण प्रश्न है। ऐसा लगता है भानपुरा का यह तांत्रिक सिद्ध क्षेत्र है, जिस प्रकार शाक्तों और शैवों का सिद्धि साधक क्षेत्र रहा है, उसी प्रकार नाग जातियों का भी प्रभाव क्षेत्र रहा है।

### तक्षेश्वर ( ताखाजी )

लोक मान्यता है कि यही वह स्थान है, जहाँ ब्राह्मण स्वरूपधारी तक्षक एवं भगवान धनवन्तरी की भेंट हुई थी। इसका उल्लेख भागवत पुराण में स्वयं वेदव्यासजी ने किया है। इसी स्थान पर धनवन्तरीजी का अवतार काल पूर्ण हुआ। वे श्रीजी भगवान विष्णु के स्वरूप में विलीन हो गये। इसी पावन स्थल पर तक्षकराज की प्रतिमा स्थापित है। भगवान धनवन्तरी का पावन निर्वाण स्थल भी यही है। इस महाभारतकालीन क्षेत्र पर अभी भी पुरातात्विकों और इतिहासविदों ने पर्याप्त शोध नहीं किया है। इस क्षेत्र के

एक-एक पत्थर तक में अनेक अन्तर्कथाएँ निहित हैं। उन्हें रेवा के कल-कल नाद में सुनने का प्रयत्न इस क्षेत्र के तथा अतिथि शोधार्थियों व विद्वानों को तत्काल प्रारम्भ कर देना चाहिए। पूर्व के शोधकार्यों का अन्तिम शोध एवं उपलब्धि कैसे माना जा सकता है? लोक साक्ष्य का भी तो सम्मान होना चाहिए।

## घसोई की लोकमाताएँ

घसोई किसी समय अत्यन्त वैभवशाली नगर रहा होगा। इस क्षेत्र में दूर-दूर तक बिखरे अनेक शिलाखण्ड, मूर्तिखण्ड एवं अन्य खण्डहर इसका प्रमाण है। यह कह पाना कठिन है कि इतना विशाल और वैभवशाली नगर किस प्रकार खण्डहर बना होगा।

लोक मान्यता के अनुसार यह महाभारतकालीन नगर था, तब यहाँ गन्धर्वसेन नाम का राजा राज्य करता था। एक लोककथा के अनुसार किसी गन्धर्व ने इस नगर को कोपवश उलट दिया था। हो सकता है कि यह नगर किसी प्राकृतिक हलचल के कारण ध्वस्त हुआ हो अथवा किसी महायुद्ध के कारण। जो भी हो, आज भी जब मकान बनाने के लिए नींव खोदी जाती है, तब नीचे से अनेक प्रकार के शिलाखण्ड, मूर्तियाँ तथा अन्य प्रस्तर खण्ड निकलते हैं। वर्तमान में नगर के बाहर टेकरी पर देवड़ा राजपूतों का ठिकाना है। इससे लगता है कि किसी समय यह वर्तमान ठिकाना देवड़ा राजपूतों की ज़ागीर रहा होगा। यहाँ पर भग्न घाटों वाला विशाल तालाब तथा उसके आसपास विस्तीर्ण अनेक शिलाखण्ड एवं भग्न मूर्तियाँ यहाँ की पुरासम्पदा है।

### भैंसासरी ( महिषमर्दिनी )

यह गढ़ की रक्षिका देवी है, जिसकी पूजा वर्तमान में गोपीनाथ करते हैं। माता मन्दिर के निकट ही एक भैरव स्थल है। यह स्थल अब खण्डहर

हो गया है। पूजा नहीं होती। पास में अनेक विशाल प्रस्तर खण्ड बिखरे पड़े हैं। माता मन्दिर के निकट एक छोटी-सी सराय भी है। मान्यता है कि प्रतिदिन गढ़ रक्षिका देवी मन्दिर स्थल की सीढ़ियाँ उतरकर अपनी जोगनियों के साथ स्नान करती थी, तब भैरव अपने छप्पन अनुचरों के साथ पहरा देते थे। स्नान करने के पश्चात् माता अपने पाट पर विराज जाती थीं। पश्चात् भैरव अपने गणों के साथ पूजा-अर्चना कर आरती उतारते थे। भैरव आरती के पश्चात् गढ़ का राजा माता की पूजा करता था। प्रति रविवार बलि होती थी। बाद में यह बलि तालाब के किनारे पर स्थित महिषासुर मर्दिनी के सामने होती थी। महिषासुर मर्दिनी की यह अत्यन्त सुन्दर प्रतिमा खण्डित स्थिति में अभी भी तालाब के किनारे पड़ी है। भैंसासरी (महिषमर्दिनी) की यह खण्डित प्रतिमा दुर्गा सप्तशती के श्लोक 40 से 44 में वर्णित माता द्वारा महिषासुर मर्दन के वर्णन को साकार करती हुई रूपतीत है। मूर्ति इतनी प्रभावयुक्त है कि लगता ही नहीं यह प्रस्तर प्रतिमा है, बल्कि ऐसा लगता है कि साक्षात् माता महिषासुर मर्दन को आतुर हमारे समक्ष उपस्थित हैं।

### गुफा माता

घसोई गाँव से पूर्व में लगभग एक किलोमीटर पर यह गुफा स्थित है। गुफा का मुख्यद्वार पूर्व में खुलता है। यह द्वार अत्यन्त सँकरा है। यही प्रवेशद्वार गुफा के भीतर लगभग 6 फुट ऊँचे एवं 4 × 4 फुट क्षेत्रफल के एक कक्ष में ले जाता है। ऐसा ही एक और गुफा कक्ष भी है। यहाँ का रास्ता लगभग 13 वर्ष पूर्व (सन् 1992 ई.) में खोला गया है। किन्तु गुफा का मुख्यद्वार अभी भी उतना ही सँकरा है। 1992 ई. में इसे थोड़ा-सा चौड़ा करने का प्रयत्न किया गया है। मुख्य कक्ष में जाने के लिए पहले सरककर (रेंगकर) तथा अब लगभग सवा दो फुट झुककर पन्द्रह फुट लम्बी सुरंग को पार करना पड़ता है। ऊपर वर्णित छोटे-से कक्ष में हर सिद्धि माता, अन्नपूर्णा माता और कालिका माता की मूर्तियाँ स्थापित हैं। तीनों मूर्तियों पर सिन्दूर पुता है। भीतर गहन अँधेरा है। प्रकाश के साधन लेकर ही भीतर जाया जा सकता है। माताओं के इस मन्दिर में प्रवेश करने पर थोड़ी देर बाद

बाहर का संसार भूल-सा जाता है। भीतर एक दीपक प्रज्वलित है। यह व्यवस्था पिछले कुछ वर्षों से देवड़ा परिवार द्वारा की गयी है। स्वयं करणसिंहजी देवड़ा प्रतिदिन यहाँ दर्शन करने आते हैं एवं अखण्ड ज्योति की देखभाल करते हैं। कहते हैं- पहले एक शेर भी प्रतिदिन माता के दर्शन करने आता था। अनेक साधुओं की यह स्थल तपोभूमि रहा है। गुफा के बाहर धूनिस्थल है। एक धूनिस्थल गुफा के भीतर अन्य गुफा में स्थित है। यह गुफा मानव निर्मित गुफा है। पर्वत के पत्थर को खोदकर इसका निर्माण किया गया है। मान्यता यह है कि इसके भीतर की गुफा उज्जैन तक जाती है।

इस मान्यता में कितनी प्रामाणिकता है, यह कह पाना कठिन है। इतना सत्य लगता है कि यह गुफा किसी समय के विशालगढ़ महलों से होकर वहाँ वन में निकलती होगी। यह गढ़ों-महलों में से आपातकाल आने पर सुरक्षित निकलने का मार्ग रहा होगा। गुफा के भीतर से माताओं के कक्ष से एक अन्य गुफा द्वार का होना स्पष्ट दिखाई देता है। गुफा के बाहर महिषासुर की एक प्रतिमा स्थित है, जो खण्डित है। सम्भव है यह मूर्ति किसी समय गुफा के भीतर स्थित हो और खण्डित होने के कारण इसे बाहर स्थापित कर दिया गया हो। इस गुफा रूण्डी के नीचे विशाल तालाब है, जो नगर के मुख्य तालाब का ही विस्तार है।

गुफा के शीर्ष पर जहाँ एक बड़ खड़ा है। तोरण द्वार कहलाता है। इस बड़ को तोरण बड़ला कहा जाता है। हो सकता है किसी समय यहाँ तोरण द्वार हो और बाद में यहाँ के प्राचीन वटवृक्ष को तोरण बड़ या बड़ला कहा जाने लगा हो। यहाँ के तालाब को तड़क्या अर्थात् फूटा तालाब कहा जाता है। संवत् 1325 विक्रम लिखा है। सम्भवतः यह शिलालेख तालाब के निर्माण के समय को दर्शाता हो। लोक मान्यता है कि जहाँ आज हनुमान मन्दिर है, वहाँ पहले हर सिद्धि की मूर्ति थी। माता हरसिद्धि प्रतिदिन गुफा मार्ग से उज्जैन के मुख्य पाट पर हाजिरी देने जाती थी, एक दिन एक तपस्वी ने उन्हें ऐसा करते देख लिया। तब से माता गुफा में जहाँ की तहाँ रुक गयीं। आज भी वे गुफा में स्थित हैं।



घसोई का समूचा क्षेत्र महिषमर्दिनी माताओं की अनेक मूर्तियों से रक्षित था। यह शक्तिशाली शक्तिपीठ आज भी पुरातत्त्व शोधार्थियों को अपने अनेक रहस्य बताने के लिए आतुर दिखता है। यह वर्तमान घसोई गाँव तीसरी आबादी का गाँव है। इसके नीचे दो स्तरों की बस्तियाँ धराशायी होकर अपना इतिहास अपने भीतर सँजोये सो रही है।

### तोरण बड़ला

घसोई में स्थित भगवती गुफा की कथा भी बहुत आश्चर्यजनक एवं गरिमामय है। गुफा में किसी समय महिषमर्दिनी साक्षात् विराजती थीं। चारों ओर ऊँचे-ऊँचे पहाड़ कोट से आवेष्टित गुफा में कार्तिवीर्य प्रतिदिन माता के दर्शन करने आता था। गुफा के पर्वतकोट के तोरण द्वार पर एक देव वृक्ष था। इसी वटवृक्ष को आज लोकजीवन में तोरण बड़ला कहा जाता है। आज तो उस देव वृक्ष के अवशेष भी शेष नहीं रहे। किन्तु किसी समय वह देव वृक्ष एक फर्लांग के घेरे में विस्तृत था। इस वृक्ष के नीचे सभी देवियाँ रात्रि के समय गरबा खेलती थीं। उसी वट के नीचे शिव-पार्वती, विष्णु-लक्ष्मी, कार्तिकेय, गणपति अपनी समस्त रिद्धियों-सिद्धियों सहित विराजते थे।

उस वृक्ष का सुरक्षा भार वहाँ के भील राजा भारवन को सौंपा गया था। भील राजा अपने प्रमुख वीरों सहित तीर-कमन्टे लेकर प्रतिदिन पहरा लगाता था। स्वयं भगवान शिव अथवा माँ गवरॉ को भी उस भील राजा भारवन की अनुमति लेकर वहाँ आना पड़ता था। गुफा के चारों ओर पहाड़ कोट के तोरण द्वार को लाँघना भारवन की आज्ञा के बिना सम्भव नहीं था। यद्यपि भारवन की नियुक्ति कार्तिवीर्य ने की थी, तथापि सभी देवता भारवन की सेवा से प्रसन्न थे। भारवन भील की क्या शक्ति वह देवताओं को माता से भेंट करने के लिए रोके, किन्तु देवतागण भारवन भील को मान देकर उससे अनुमति प्राप्त करते थे। वह माता महिषासुरी का प्रिय था। भारवन का मूल गाँव रूणीजा था और उसकी पत्नी का गाँव ढाबला महेश था। कोई नहीं जानता, तब इन दोनों गाँवों के नाम क्या रहे होंगे। ढाबला महेश तो माता महिषासुरी का ससुराल भी था। भगवान शिव वहीं विराजते थे। भारवन

भील का राज्य रूणजा था और वहीं इसकी इष्टदेवी भारवनी माता का स्थान था। एक कच्चा कोट उसके महलों के आसपास बना था। भारवनी नाम भारवन की इष्टदेवी होने के कारण हुआ। भारवनी की पूजा वह प्रतिदिन करता था। उसे यह वरदान प्राप्त था कि जब वह भारवनी माता के दर्शन करने जाता था, तब उसकी छाया तोरण बड़ले की रक्षा करती थी। इस रहस्य को कोई भी नहीं जानता था। माँ महिषासुरी और भारवन की पत्नी राजली यह रहस्य जानती थी।

ढाबला महेश में भी माँ महिषासुरी की प्रतिमा स्थापित थी। ढाबला तो माताओं का रहवास था। स्वयं शिव (महेश) सपरिवार वहाँ बसते थे। यहीं राजली का भाई संगीरा भील भी रहता था। वह भी बहुत वीर व माता का भक्त था। तोरण बड़ला उस क्षेत्र के लिए कल्पवृक्ष था। उस पर पाताल के राजा अहिमान की दृष्टि थी। अहिमान नागों का राजा था। उसकी इच्छा थी कि यह तोरण वट उसके राज्य में हो।

चैत नवरात्रि में भारवन तोरण बड़ले की रक्षा में अपनी छाया को तैनात कर रूणीजा गया हुआ था। वह प्रतिवर्ष अपनी इष्टदेवी की आराधना नौ दिनों तक करता था। दसवें दिन जवारे उठाये जाते, जवारे भाव भारवन के साथ घसोई माता लाये जाते थे। उधर ढाबला महेश से भी संगीरा भील जवारा उठाकर घसोई माता पहुँचता था। गुफा माता महिषासुर (भैंसासरी), हरसिद्धि और कालका माता की पूजा होती थी। बहुत बड़ा मेला पड़ता। यह मेला नौ दिन पड़ता। कार्तिवीर्य माता के चरणों में बैठकर नवरात्रि करता था। फिर हवन-पूजा होती और बलिपूजा भी होती थी। बलिपूजा रूणीजा और ढाबला महेश में भी होती थी।

इस बार अहिमान ने अपनी कुलदेवी मनसा को मनाया। मनसा माता ने अहिमान को सब शक्तियाँ दे दीं। अहिमान दस हजार अहि सैनिक लेकर घसोई पर चढ़ आया। भारवान को पता चला, उसने सारे भीलों कम्बो तोरण बड़ले की रक्षा में लगा दिया। ढाबला से संगीरा की भील सेना भी आ चढ़ी। आसपास भीलों के कई ठिकाने थे। सब चढ़ दौड़े। कार्तिवीर्य की बड़ी सेना थी। वह भी आ डटी। भारवान की छाया युद्ध करती रही। उसने अहिमान

को तोरण बड़ले से बाँध दिया। युद्ध बन्द हो गया। सारी सेनाएँ वापस अपने-अपने स्थानों पर लौट आईं। अहिमान ने क्षमा माँग ली। उसे मुक्त कर दिया गया। जब सब लोग चले गये, तब अहिमान ने माया के बल पर तोरण बड़ले को उखाड़ा और उसे छोटा रूप देकर वहीं से पाताल में प्रवेश कर गया।

जब भारवान को अहिमान के छल का पता चला, तब उसने कहा कि मैं अहिमान को बन्दी बनाकर पाताल से ले आऊँगा। तोरण बड़ले को जहाँ का तहाँ स्थापित करूँगा। उसने गुफा माता भैंसासरी से शक्ति माँगी। भैंसासरी ने अपना सिंह दिया। भारवान ने हरसिद्धि माता और काली माँ से भी शक्ति माँगी। हरसिद्धि ने उसे तीर कमान दिया। कालिका ने उसे खड्ग दिया। उसकी पत्नी राजल ने उसके गले में रक्षा कवच बाँधा। भारवान शक्ति सम्पन्न होकर पाताल पर आक्रमण करने अकेला चल पड़ा। जहाँ से अहिमान नाग राजा पाताल में गया था, वहीं से वह भी गया। वह पहले नाग माता मनसा के पास गया। उसने माता की आराधना की, माता प्रसन्न हुई। उसने उसे अनेक शक्तियाँ दीं।

इसके बाद उसने नागराज अहिमान को ललकारा। नागराज और भारवान का युद्ध तीन दिन और तीन रात चला। आखिर भारवान ने नागराज को अपने शक्तिपाश से बाँध दिया। फिर उसने तोरण बड़ले से हाथ जोड़कर प्रार्थना की कि- 'आप जैसे यहाँ पधारे, वैसे ही अपने स्थान पर वापस पधारो।'

इस प्रकार भारवान भील राजा तोरण बड़ले को वापस अपने स्थान पर ले आया। विधि-विधान से उसकी पूजा की और सभी देवताओं का मान किया। अहिमान को उसने वहीं तोरण बड़ले के नीचे बाँध दिया। वह सदा वहीं बाँधा रहा। उसके वंशज आज भी वहीं रहते हैं। किसी को सताते नहीं। उन्हें भारवान की आन लगती है।

समय के साथ भारवान पंचतत्त्वों में समा गया। कार्तिवीर्य भी बीत गया। भारवान की तीन पीढ़ियाँ बीत गयीं। कार्तिवीर्य की तीसरी पीढ़ी में उसके पुत्र समवंदन ने देव वट का अपमान किया। उसने तोरण बड़ले के

नीचे शिविर लगाकर ढोलने नचाई। बुरे काम किये। किसी युद्ध की विजयोत्सव के जश्र में सब किया। तोरण बड़ले के सब देवता कुपित हो गये। उन्होंने घसोई को नष्ट कर दिया। रूणीजा और ढाबला को भी उलट दिया। तीनों गाँव भूमि में दब गये। सब कुछ धूल-धाणी हो गया। देवता सब विदा हो गये। बड़ला सूख गया। न रहा कीर्तिवीर्य वंश, न भारवान और न संगरा का वंश। सब कुछ खण्डहरों में बदल गया।

### रूणीजा की भैंसासरी माता

प्रचलित मान्यता के आधार पर वर्तमान रणछोड़नाथ मन्दिर रुनिजा, पूर्व में माँ भैंसासरी माता का मन्दिर था। पुजारी गुर्जर जाति का रहा है। पास ही गाँव गूजरखेड़ी बसा था। आज वह गाँव बेचिराग मौजे के रूप में जाना जाता है। माता पहले मात्र चबूतरे पर विराजित थी। पास में जंगल और कुछ खेती हुआ करती थी। यह माता आसपास बसे राजपूतों, भीलों, सौंधियों और गुर्जरों की आराध्य देवी रही होंगी।

मूर्ति अति-प्राचीन एवं चमत्कारिक है। यवनों के आक्रमण के कारण राजस्थान से राजपूत और सौंधिया इस जंगल में आसपास बस गये थे। माँ के चमत्कारों से प्रभावित होकर भक्तजनों ने विशाल मन्दिर का निर्माण करवाया, जिनमें मुख्य रूप से सिरोही से आये देवड़ा सरदार श्रीमान् साईदास की भूमिका अहम रही, जिनकी बसई में साहब के नाम से प्रसिद्धि है। स्थापत्य कला की दृष्टि से माता का ही मन्दिर था। किंवदन्ती के आधार पर ज्ञात हुआ कि माता की ख्याति सुनकर एक रंगरेज भक्त की पुत्र प्राप्ति की मन्त्रत पूर्ण होने पर उसने अपनी ओर से मन्दिर में एक खम्बा बनवाया, जो आज भी मौजूद है तथा धार्मिक समभाव का प्रतीक है। जिसे 'रंगरेज के खम्बे' के नाम से जाना जाता है। सुना है पूर्व में यहाँ बकरे तथा पाड़े की बलि चढ़ाई जाती थी।

रावले सा. श्रीमान् साईदासजी ने रुनिजा में अपना ठिकाना बसाकर भवन निर्माण किया। उनके साथ आये अन्य राजपूत सरदार घसोई, बोरेखेड़ी, ढाबला देवल (महेष), अंगारी, चाँपाखेड़ी, लकवाँ, धानखेड़ी, तरनोद,

ढाबला भगवान, ढोढ़र, किशोरपुरा, देवरिया विजय, गोरधनपुरा, गुराड़िया विजय, बसई तथा देवरिया मोड़ी में बसकर ज़ागीरदार तथा ज़मींदार बन गये। उन्हीं में से आज से लगभग चार सौ साल पूर्व महाराज सिंधिया ग्वालियर महाराजा के समकालीन रावले श्रीमान् साईदासजी भी कृष्ण भगवान के अनन्य भक्त थे। तब रुनिजा में ग्वालियर राज्य का तहसील और पुलिस थाना था। चूँकि पास ही राजस्थान की सीमा लगी थी। सुना है द्वारिकापुरी में दोनों समय की आरती में शारीरिक तौर पर रावले साहब श्रीमान् साईदासजी देवड़ा मौजूद होते थे। शरीर से रुनिजा में भी रहते थे। सिंधिया महाराजा की ओर से उनकी ख्याति सुनकर रावले सा. को विशेष मर्तबा प्राप्त था। कृष्ण भक्ति की मिसाल आज भी किंवदन्ती के रूप में प्रचारित है।

एक दिन की घटना है। रात्रि नौ बजे दूर-दूर के राव-उमराव, ठिकानेदार रुनिजा रावले में मौजूद होकर चर्चार्त् थे कि अचानक श्रीमान् साईदासजी रावले मौन होकर भक्ति मुद्रा में बैठे और अपनी दोनों हथेलियों को आपस में मसली, तो हाथ काले हो गये। राव-उमरावों के पूछने पर उन्होंने फरमाया कि 'द्वारिका में भगवान की पोशाक में आग लगने से मुझे बुझाना पड़ी'। बाद में द्वारिका से लौटे तीर्थयात्रियों ने इस घटना की पुष्टि भी की। बस इससे रावले सा. की श्रीकृष्ण भक्ति प्रसिद्ध हो गई। चूँकि द्वारिका के पुजारी ने भी पोशाक में आग लग जाने की पुष्टि की थी।

कहते हैं- भगवान भाव के भूखे होते हैं। इसी के आधार पर श्री द्वारिकाधीश भगवान ने श्री रणछोड़नाथ के रूप में रुनिजा के फकीरों के दोह में प्रातःकाल चार बजे संत श्री साईदासजी रावले की बाँहों में स्नान करते समय प्रकट हुई विशाल मूर्ति बाँहों से उठाकर किनारे पर ले आये। देखा तो अति सुन्दर विशाल चमत्कारिक प्रतिमा थी। उठाकर रावले में ले जाकर मन्दिर निर्माण की अभिलाषा थी, परन्तु उठा नहीं सके। रावले में जाकर दमणी (छोटी बैलगाड़ी) लाये। देखते ही देखते बात हवा की तरह पूरे गाँव, क्या आसपास के गाँवों में फैल गई। हज़ारों नागरिक जमा हो गये, गाँव के बीच बहने वाले नाले पर। ढोल-ढमाके और गाजे-बाजों के साथ दमणी में

भगवान का जुलूस गाँव में चला। गाँव के मध्य स्थित माँ भैंसासरी माता मन्दिर के सामने दमणी रुक गई। कई और बैलों की जोड़ी जोतकर चाहा कि भगवान को रावले तक ले जाया जाये, परन्तु दमणी आगे नहीं बढ़ी। ऐसी किंवदन्ती भी है कि दमणी माता के मन्दिर के समक्ष रुक गई। माँ ने अपने भोपे के माध्यम से फरमाया कि पहले मेरा मूल पुजारी भील समुदाय था, वह भ्रष्ट हुआ। मैंने उन्हें दरकिनार किया। फिर गूजर जाति आई, उन्होंने मेरी अच्छी सेवा की। कुछ पीढ़ियों बाद गूजर भी बेपरवाह हो गये। मेरा स्वरूप ढाबला में भी था। वहाँ भी भील सेवक थे। बाद में गूजरों ने सेवा की। दोनों बेपरवाह हो गये। मैं वहाँ ज़मीन में समा गई। मुझे वहाँ से निकालो, मैं अब वहीं जाकर रहूँगी। यहाँ रणछोड़ मेरे 'पामणे' आये हैं। इन्हें यहाँ स्थापित करके विशाल मन्दिर बनाओ। कृष्ण द्वारिका से पधारे हैं। साईदास से मिलने की हुस भगवान में थी। साईदास मेरे भी परमभक्त हैं। ये प्रतिदिन द्वारिका भगवान रणछोड़ के दर्शन करने जाते थे। भगवान स्वयं यहाँ पधार गये। इनका सत्कार करो। माँ की आज्ञा से गाँव वालों ने निर्णय लिया कि 'माँ भैंसासरी के मन्दिर में मूर्ति स्थापना कर दी जाये'। जनभावना के अनुरूप वही हुआ। माता को बाहर विराजित कर भगवान श्री रणछोड़नाथ को मन्दिर में स्थापित कर दिया। कहते हैं- ऐसी प्रतिमा भारतवर्ष के तमाम धार्मिक स्थानों में कहीं भी नहीं है। तीर्थयात्रियों का ऐसा मानना है।

आज़ादी के बाद भी सन् 1948 तक रुनिजा के होली चौक में श्रीमान् बसई रावले साहब की ओर से पाड़े की बलि दी जाती रही है, माँ भैंसाश्री माता को। श्रीमान् रावले सा. संत साईदासजी के ब्रह्मलीन होने के पश्चात् तत्कालीन गादीनशीन रावले सा. ने शायद बसई को अपना ठिकाना बनाया। उनके वंशजों में आज रावले श्रीमान् शार्दुलसिंहजी देवड़ा मौजूद हैं। सन् 1948 के बाद दशहरे के दिन पाड़े की बलि वाली परम्परा समाप्त हो गयी। माता ने बलि लेना अस्वीकार कर दिया। परन्तु माँ भैंसासरी माता की नवरात्रि में नौ दिन तक भूतपूर्व ज़मींदार श्री पूरणमलजी पटेल (धाकड़) के वंशज श्री गुलाबचन्दजी पटेल द्वारा अखण्ड ज्योत तथा पूजा-अर्चना करके गाँव की खुशहाली के लिए मन्त्र और प्रार्थना की जाती रही है। आज भी

माता के आस्तिक गण माँ के नाम की बलि अन्यत्र स्थान पर देते हैं। माता वह बलि स्वीकारती हैं और भक्तों की मन्नत-मनौती पूरती हैं। मुख्य थानक पर भगवान रणछोड़ के कारण बलि नहीं स्वीकारती।

### गैलाना की आसापुरी

ग्वालियर स्टेट के कस्बा रुनिजा से उत्तर में पाँच किलोमीटर दूर ग्राम गैलाना की पहाड़ी पर स्थापित देवड़ा राजपूतों की कुलदेवी माँ आसापुरी का मन्दिर है। पूर्व में मूर्ति एक साधारण चबूतरे पर विराजित थी, जिसकी पूजा चन्द्रावत सरदार श्री भँवरसिंहजी सेमली काँकड़वाले किया करते थे, जिन्हें पण्डाजी नाम से जाना जाता था। प्रति रविवार पण्डाजी यहाँ आया करते थे। सैकड़ों नर-नारी दर्शन करने आते रहे हैं। निस्संतान औरतों की भीड़ अधिक होती थी। माँ की कृपा से उनकी आशाएँ पूरी होती हैं। पण्डाजी के स्वर्गवास के बाद जात्रा समाप्त प्रायः हो गयी है। पूर्वानुसार आशा (मन्नत) पूरी होने पर बकरों की बलि का चलन आज भी विद्यमान है।

माँ आशापुरी माता की ख्याति मन्दसौर जिले के साथ ही राजस्थान के झालावाड़ जिले तक लोकप्रिय है। दुखियों के दुःख निवारण होते हैं। दर्शन करके भक्तों को आत्मशान्ति मिलती है। प्रतिवर्ष नवरात्रि में जागरण, भजन कीर्तन, नाट्यकला का आयोजन होता है।

### भैंसासरी माता आम्बा

रुनिजा (मन्दसौर) से पाँच किलोमीटर दूर आम्बा के जंगल में एक चबूतरे पर विराजित यह चमत्कारिक मूर्ति विगत कई सालों से मौजूद है। कहा जाता है कि यहाँ चोरी-डकैती में संलग्न अन्य जातियों तथा आसपास के चोरों द्वारा चोरी सफल हो जाने की मन्नत की जाती रही है। मन्नत पूरी होने पर वे लोग माताजी के यहाँ बकरे की बलि चढ़ाने आते थे। परन्तु विगत दस-पन्द्रह सालों से कुछ शिक्षित और जागरूक भक्तगणों ने (जिसमें आम्बा, असेपुर, डोकरखेड़ी तथा रुनीजा) चबूतरे पर विशाल मन्दिर, धर्मशाला और तोरणद्वार बनाकर प्रशंसनीय कार्य किया है। आज प्रति रविवार को

सैकड़ों माता-बहनें और भक्त पूजा-अर्चना कर दर्शन करने आते हैं और अपने पारिवारिक कष्टों के निवारण की मानता करते हैं। मानता पूरी होने पर अब बकरे की बलि नहीं दी जाती, अपितु दाल-बाटी का सहभोज आयोजित होता है।

आसपास के नागरिकों के लिए धार्मिक स्थान के साथ ही पर्यटन स्थल का स्थान ले चुका है। भैंसासरी का यह स्थान अत्यन्त चमत्कारिक है। भयहरण करने वाली माता की अनेक चमत्कारिक घटनाएँ लोकजीवन में प्रसिद्ध हैं। बलि प्रथा आज भी भैंसासरी माता के नाम से होती है तथा छद्म रूप से भावरूप में भोग भी लगाया जाता है। शराब की धार भी दिशा से दी जाती है। इस क्षेत्र में चौर्य कर्म में लिप्त जातियों का बाहुल्य रहा है। यहाँ का घना जंगल इसका कारण था, फिर यह राजस्थान का सीमावर्ती इलाका होने के कारण भी संरक्षण में सुविधा पर्याप्त थी। आज चोरों की यह देवी चोरों व साहूकारों दोनों के लिए श्रद्धा व आस्था का केन्द्र है।

## ढाबला की लोकमाताएँ

### भैंसासरी माता

ढाबला महेश सुवासरा तहसील का एक छोटा-सा गाँव। सुवासरा से पाँच किलोमीटर तथा मुख्यमार्ग से लगभग दो किलोमीटर पश्चिम में। इस गाँव को ढाबला महेश कहने के पीछे यहाँ शिव-पार्वती का भव्य मन्दिर है। पूर्व में यह गाँव आदिवासियों का रहा, फिर बेचिराग हुआ। खण्डहरों में बदल गया। आदिवासियों के बाद गूजर आये। सम्भवतः ये गूजर यहाँ रुणीजा से आकर बसे। जो भी हो, गूजरों ने बेचिराग गाँव को चिरागाँ किया। जगह-जगह पड़े खण्डहरों को भी धीरे-धीरे सँवारा। महेश-पार्वती की मूर्ति को फिर से स्थापित किया और सारे गाँव के समस्त वर्गों के सहयोग से महेश-गौरी का भव्य मन्दिर बनाया गया, तब से ढाबा के साथ में महेश का नाम जुड़ा और इसे नया नाम 'ढाबला महेश' मिला।

इसी मन्दिर के निकट एक ढूण्डे पर कुछ प्रस्तर खण्डों के साथ एक बड़ी प्रतिमा औंधे मुँह पड़ी थी। यह प्रतिमा सम्भवतः पूर्व ढाबा के बेचिराग होने के समय से ही पड़ी थी। सीतला सप्तमी के दिन गाँव की औरतें-सीतला माता मानकर - पानी चढ़ाकर पूजती थीं। गाँव की एक युवती का पारिवारिक जीवन अस्त-व्यस्त हो गया था। उसने भी सीतला सप्तमी के दिन अन्य औरतों के साथ उस पत्थरों के ढेर पर जल चढ़ाया और मन ही मन आर्त होकर अपने सुहाग-भाग के खुशहाल होने की मन्नत माँगी।

उसी रात उसे सपना आया। उसने देखा कि- स्वयं अष्टभुजा माता उसके सामने खड़ी-खड़ी मुस्करा रही हैं। माता ने उससे कहा कि- 'बेटी! मेरी बात सुनो, तुम्हारा दुःख मैं मेटती हूँ। तू मेरा दुःख मेट। सीतला माता के ढूण्डे के नीचे मेरा स्वरूप औंधे मुँह दबा पड़ा है। सबेरे तेरा पति तुझसे सीधे मुँह बात करेगा। आज से वह सुमार्ग पर चलेगा। तू अपने पति को ले जाकर मेरा स्वरूप सीधा करवा। गाँव वालों का सहयोग लेकर उस स्वरूप की स्थापना करवा।' सबेरे उस सुहागिन ने माता के आदेश अनुसार सब किया। गाँव वालों ने जब माता का सुन्दर स्वरूप देखा, तो ढोल-ढमाकों के साथ पूरा गाँव 'भैंसासरी' की जय-जयकार कर उठा। महेश मन्दिर के एक भाग में माता की स्थापना हुई। महिषासुर मर्दिनी की भव्य एवं सुन्दर प्रतिमा दर्शनीय है। गाँव का समूचा चरित्र ही माता ने बदल दिया।

गूजर बहुल इस गाँव की सीमा के भीतर शराब व माँस का चलन बन्द हो गया। यदि कोई जिद्दी व्यक्ति शराब व माँस का सेवन करता है, तो वह बीमार हो जाता है। उसे माता के मन्दिर में अपनी भूल स्वीकार करने पर ही शान्ति मिलती है। माता की पूजा ऊँकारलालजी गूजर करते हैं। इन्हें माता का भाव भी आता है। चौकी होती है। यह माता क्षेत्र में रोगहरिणी रक्षाकरिणी माता कहलाती हैं। नन्दाजी व कन्हैयालालजी गन्धर्व माता की विरद गाते हैं। किसी समय माता के मन्दिर में बलि होती थी। अब बिल्कुल नहीं होती। कुछ लोगों का कहना है कि सीमा के बाहर नाम से बलि होती है, किन्तु बलि माँस का उपयोग सीमा के बाहर ही होता है। कुछ अन्य गाँव के लोग अपने-अपने गाँवों में इस भैंसासरी माता के नाम से बलि चढ़ाते हैं। यह किसी समय की भील आस्था आज जगत के समस्त क्षेत्र के जन-जन की आस्था है। दोनों नवरात्रि पर विशेष आयोजन होता है। पूरे गाँव में भाव निकाला जाता है। भाव में सबके दुःख कटते हैं।

### मंछा माता

भैंसासरी मन्दिर के निकट मार्ग पर ही एक शिलापट्ट गड़ा है, जिसे नागदेवी मनसा माता के नाम से पूजा जाता है।

## खोखरी माता

खाँस खोरनी माता का स्थान मुख्य मन्दिर से दूर एक खेत के किनारे है। इसी के निकट हनुमानजी का मन्दिर है।

## अछरा माई (सममातृका)

खाँखोरी माता के निकट एक शिलापट्ट पर बायें वेणुवादक कृष्ण, पार्वती, मनसा, वराही, कालका, फिर नृत्यरत गणपति। समस्त मूर्तियाँ एक ही शिलापट्ट पर कुरेदी हुई हैं। पत्थर बीच से टूटा हुआ है। बीच का एक टुकड़ा 'ब्रह्माणी' (ईष्या) माता का पृथक पड़ा है तथा एक टुकड़ा इन्द्राणी का भी पृथक पड़ा है।

सातवाँ टुकड़ा वैष्णवी माता का है। यह भी निकट पड़ा मिला है। यहीं पर सरस्वती एवं कौमारी के दो खण्ड भी पड़े मिले। इन मातृकाओं को 'अछरा माई' भी कहा जाता है। 'खाँस खोसरी माता' (कूकर खाँसी की माता) का शिलाखण्ड इन माताओं के निकट पृथक से रखा है, जिसकी पूजा महिलाएँ नवरात्रों में तथा होलिका दहन के पश्चात् 'ठण्डे दिनों' में करती हैं।

## मरी माता

यह माता गाँव के पश्चिम में एक शिलाखण्ड पर अंकित है। मरी माता को महामारी की रक्षिका के रूप में पूजा जाता है।

## परी माता

ढाबला महेश में एक स्थान भैंसासरी मन्दिर से उत्तर-पूर्व मार्ग पर एक शिलापट्ट पर अंकित माता का है। यही परी माता अर्थात् वात रोगों तथा मानसिक रोगों (भूत-प्रेत, भ्रम) की निवारक माता कहलाती हैं। भैंसासरी माता के उजागर होने के बाद इस स्थान का महत्त्व कम हो गया है। यहाँ के सभी उपचार अब भैंसासरी के दरबार में होते हैं।

## गाज माता

गाज अर्थात् बादलों का गर्जन। बादलों का घनघोर गर्जन और बिजली की कड़कड़ाहट भय पैदा करने वाली है। आदिवासी समुदाय की बस्तियाँ गिरिकानन में। बिजली गिरे तो सब जलकर राख हो जाये। बादल गरजे तो हिया काँप जाये। इस प्राकृतिक भय से मुक्ति पाने के लिए आदिवासी भील समुदाय ने 'गाज माता' की कल्पना की। गाज माता की पूजा 'भादवा सुदी बीज' के दिन की जाती है। कहीं-कहीं भादवा सुदी द्वादश के दिन भी गाज माता पूजी जाती हैं। दशपुर अंचल में इसे 'गाज बीज' कहा जाता है।

घर के आँगन में गौ-गोबर से लीपकर चौक पूरा जाता है। कलश स्थापित किया जाता है। ऋतु वन फलों और वन फूलों से गाज माता पूजी जाती हैं। दीपक-अगरबत्ती से सत्कार कर आरती उतारी जाती है। आदिवासी महिलाएँ गीताचार से गाज माता को मनाकर प्रार्थना करती हैं कि हमारे क्षेत्र में 'गाज नहीं गिरे'। हमारे परिवारों व पशुओं की रक्षा करना। इस प्रार्थना के साथ गाज माता को सामर्थ्य के अनुसार भोजन करवाकर विदा किया जाता है। कई गाँवों में गाज माता के थानक भी हैं।

## शामगढ़ की चामुण्डा माता

तीन भाई - रामा, भामा और शामा। रामा ने मनासा के वर्तमान बड़े तालाब से लेकर वर्तमान रामनगर तक रामपुरिया बसाया। दोनों भाई आगे बढ़ गये। बाद में रामा ने भी रामपुरिया से आगे बढ़कर अरावली की तली में रामपुरा बसा लिया। कुछ भील बचे रहे। उन्होंने भी रामपुरिया से उठकर भीलपुरिया बसा लिया। उन्हीं के साथ थे भील मीणा समुदाय के लोग। उस समुदाय ने मीणावास बना लिया। इनकी आबादी अधिक थी। यही मीणावास बाद में मीणासाथ और मीणासा होकर मणासा-मनासा हुआ। भील समुदाय की देवी वर्तमान नारसी माता स्थापित हुई और मीणा समुदाय ने रुण्डी पर अपनी कुलदेवी स्थापित की।

रामपुरा में रामा भील ने अपना परकोटा खींचा और शक्ति बढ़ाकर अपनी सत्ता स्थापित कर ली। भामा ने आगे बढ़कर अरावली के तल में



भामपुरा बसाया। यही भामपुरा बाद में भानपुरा कहलाया। भामा ने भी अपना परकोटा खींचा और सत्ता स्थापित कर ली। शामा ने भामा से कहा— मैं कहाँ जाकर बस्ती बनाऊँ? तुम दोनों भाइयों ने तो अपना इलाका ले लिया। मैं अरावली के ऊपर जाकर हींगल में अपनी सत्ता स्थापित करूँगा। रामा और भामा ने उसे समझाया कि हींगल पर पहले से ही भील सत्ता है। तुम वहाँ मत जाओ। हम तुम्हारी मदद करेंगे, तुम भामपुरा से थोड़ा दक्षिण में बढ़कर शामपुर बसा लो। तब शामा भील ने वर्तमान शामगढ़ की टेकरी पर शामपुरा बसाया। यही शामपुरा विस्तार पाकर रुण्डी से नीचे फैल गया। राजपूतों के आगमन पर तीनों भीलों की सत्ता समाप्त हुई और शामपुरा शामगढ़ कहलाया।

शामा ने बस्ती बसाने से पहले परम्परानुसार अपनी इष्टदेवी हिंगलाज की स्थापना की। शामा के बाद उनके वंशजों ने भैंसासरी की स्थापना कर दी। भील परम्परा के अनुसार अनेक अवसरों पर पशु बलि देना अनिवार्य होता है। हिंगलाज माता पशु बलि नहीं स्वीकारती। पशु बलि केवल भैंसासरी ही स्वीकारती हैं। दोनों का लोक स्वरूप एक ही है। शामा के ही वंशजों ने वर्तमान मेलखेड़ा में कंकाली माता की स्थापना कर बलि कार्य वहाँ करना शुरू किया।

दशहरे पर तीनों भाई एकत्र होते थे और क्रम से रामपुरा, भामपुरा और शामपुरा में बड़ा उत्सव मनाया जाता। तीन दिन तक दशहरा मनाया जाता था। भील सत्ता समाप्त होने के पश्चात् राजपूत सत्ता कायम हुई। राजपूत सामन्त ने भी माता को अपनी गढ़रक्षक देवी मानकर पूजा-अर्चना जारी रखी। धीरे-धीरे राजपूत सत्ता भी शिथिल हो गई। माता की पूजा-अर्चना में उपेक्षा होने लगी।

अभी कुछ वर्षों पूर्व शामगढ़ के कुछ माताभक्त चौहान बन्धुओं ने माता के इस पीठ को फिर से जागृत किया और विधिवत् पूजा-अर्चना जारी करवायी। स्थान का पुनर्निर्माण करवाया। यह स्थान चामुण्डा माता के नाम से विख्यात है। इस माता के विषय में विख्यात है कि यह माता स्वयं सपने में परचा देकर दुःखों का समाधान करती है।

### फुवारी माता

संजीत वर्तमान में मल्हारगढ़ तहसील, जिला मन्दसौर का सीमावर्ती कस्बा है। चम्बल (गाँधीसागर बाँध) के जल विस्तार में मूल संजीत डूब गया। यह संजीत नयी आबादी के रूप में बसा हुआ नया संजीत है। पहला संजीत रेतम के परले पार उत्तर में था और आज का संजीत नदी के उरले पार बसा है। बिल्कुल आँतरी की तरह। किसी समय इसकी विस्तार सीमा दक्षिण में बिल्लौद तक और उत्तर में चचौर तक थी। यह गाँव सम्पन्न होकर भी मुख्य सभ्यता से सदा कटा हुआ था। जावरा राज्य का यह गाँव जावरा नवाब की सैरगाह और शिकारगाह के रूप में भी उपयुक्त था। नवाब स्वयं कई दिन तक यहाँ ठहरकर शिकार करता था और रंगरेलियाँ मनाता था।

यह स्थान शिव एवं शक्ति का प्रमुख आस्था क्षेत्र है। कहते हैं— स्वयं सदाशिव यहाँ विराजकर शक्ति माँ पार्वती के संग विश्राम के लिए पधारते थे। चम्बल और रेतम का संगम स्थल 'पसेवा महादेव' आज भी आसपास के ग्रामीणों के लिए आस्था तीर्थ है। यहाँ सभी जातियों व धर्मों के लोग भाईचारे से रहते हैं।

वर्तमान संजीत से दक्षिण में एक शक्तिपीठ फुवारी माता का है। यह स्थान अतिप्राचीन है। बारेठ की वंशावली के अनुसार जीवाजी - नन्दा जी - रंगलाल जी - (रंगलालजी के चार पुत्र फकीरचन्दजी, देवीलालजी, मोहनलालजी एवं मांगीलालजी) वर्तमान में माता की सेवा में हैं। पारिवारिक

व्यवस्था के अनुसार देवीलालजी आजकल फुवारी माता की बारेठी कर रहे हैं। देवीलालजी का कहना है कि इससे पहले के पूर्वजों के नाम उन्हें याद नहीं हैं। लेकिन हमारा परिवार माता की स्थापना से ही माता का बारेठ है। इसके पुजारी भी भील मीणे हैं। (ये वर्ग अब स्वयं को भील वर्ग में न मानकर रावत वर्ग में मानता है।) पुजारियों की वंशावली में – किशन पटेल – गिरधारी पटेल – नानालाल पटेल – भेरूलाल पटेल – वर्तमान में बालमुकुन्द तथा रामकिशन माताजी की पूजा पारम्परिक रूप से करते चले आ रहे हैं। पारिवारिक व्यवस्था में वर्तमान में रामकिशनजी मीणा माता की पूजा करते हैं।

एक लोक मान्यता के अनुसार इस नगर की स्थापना महाभारतकाल की है। इसे महाभारत के 'संजय' ने बसाया था। इसकी सीमा अतिविस्तृत थी। बाद में यह किन्हीं कारणों से ध्वस्त हुई तथा कई बार बसी। संजय के कारण ही इसका नाम 'संजीत' हुआ। चित्तौड़ में मान मौरी के पतन के पश्चात् इधर मीणा वर्ग का आना अधिक हुआ। पूर्व में यहाँ आदिवासी भील समुदाय का ही बाहुल्य था। दोनों समुदायों के अनेक गोत्र यहाँ बसते थे।

माता के स्थान व माता के यश रूप में अनेक चमत्कारिक प्रसंग चर्चित हैं। कहते हैं- एक बार एक बारात फुवारी माता के स्थान पर आकर रुकी, तब यहाँ माता का स्थान नहीं था, खुला मैदान था। महुए के अनेक वृक्ष थे। रात हो जाने से बारात का पड़ाव यहाँ डाला गया। एक कच्ची-पक्की कुण्डनुमा बावड़ी भी वहाँ थी। पानी का साधन व खुला स्थान देखकर बारात वहाँ रुकी। रात को बारात पर आसपास के भील-मीणों ने मिलकर धाड़ा डाल दिया।

जब यह बात वहाँ की एक भील युवती सोमती ने सुनी, तो वह आक्रोश में भर उठी। तब आसोज के नवरात्रों के दिन थे। सोमती नवरात्रों में गोरजाँ माता का तप तपती थी। निराहार रहकर माता की आराधना करती थी। लोग उसके प्रति देवीतुल्य आस्था रखते थे। जैसे ही उसने धाड़े का समाचार सुना, वह खड्ग लेकर दौड़ पड़ी। वहाँ पहुँचकर उसने ललकारा- खबरदार! किसी ने तलवार चलायी तो, बारात हमारी मेहमान है। मेहमानों

की रक्षा मैं प्राण देकर भी करूँगी। ऐसा कहने पर भी धाड़वी नहीं माने, तब सोमती दुर्गा की तरह धाड़ेतियों पर टूट पड़ी। उसने देखते-देखते सभी धाड़ेतियों को मार डाला। वह बहुत घायल हो गई थी। उसने बारात की रक्षा कर ली, स्वयं वीरगति को प्राप्त हो गई। सबेरा होने पर सबने देखा वहाँ लाशें ही लाशें थीं। बारात सुरक्षित बच गयी। जहाँ सोमती का शव गिरा, वहाँ उसकी देवी रूप में स्थापना कर दी। वह दुर्गा रूप में लड़ी थी, इस कारण उसके धाम को सबने दुर्गा या भैंसासरी का धाम घोषित किया। मीणा पटेलों (भीलों) ने अपनी 'बायाँ माता' की पूजा शुरू कर दी। बाद में माता ने सपना देकर परचा दिया कि मेरा शरीर क्रोध से जल रहा है, उस पर पानी डालो। तब संकेत समझकर सकल ग्रामवासियों ने सीतला रूप में माता की पूजा शुरू की। जलाभिषेक से माता तृप्त होती हैं। माता के कई चमत्कार लोकजीवन में बखाने जाते हैं।

'एक बार रंगलालजी बारेठ, नारायणलालजी शर्मा-गामोठ, सीतारामजी सुतार तथा गिरधारीलालजी पटेल पुरानी संजीत से माताजी की पूजा के लिए जा रहे थे। अँधेरा घना था। सबके मन में वनैले पशु और लुटेरों का भी भय था। माता ने प्रकट होकर एक वृद्धा के रूप में उनको राह दिखाई और प्रकाश दिखाकर अपने धाम तक ले गई। फिर वह धाम की ही बावड़ी में गुप्त हो गई।'

'सन् 1949-50 के आसोज में लोटवास से एक पंजाबी बिहारीलाल वहाँ आया। नवरात्रि का समय था। वह संध्या के पश्चात् वहाँ पहुँचा। तब सब लोग उस स्थान से अपने-अपने घर जा चुके थे। बिहारीलाल की नौ वर्ष की लड़की की आँखें माता प्रकोप से चली गयी थीं। वह पूरी आस्था लेकर वहाँ आया। रात को भयंकर वर्षा हुई। वह माता के दरबार में डटा रहा। कई डरावनी आवाजें हुईं, बादल गरजे, बिजली कड़की। बिहारीलाल ने माता से अरदास की कि- 'माता! तू कितना भी डरा। मैं तेरे दरबार से अपनी मुराद पूरी करके ही जाऊँगा।

माता ने आधी रात के बाद प्रभात होते-होते उसे परचा दिया। 'मैं तेरे विश्वास पर प्रसन्न हुई। तेरे विश्वास की जीत हुई। तेरी लड़की की आँखें

उसके जागते ही ठीक होना शुरू हो जायेंगी। नवें दिन वह पूरी तरह देख सकेगी।' ऐसा ही हुआ। उसने माता का प्रति नवरात्रि धाम पर रहकर पूजन किया और सराय बनवायी।

फुवारी माता मन्दिर के अनन्य आस्थावान पुरोहित पण्डित रामविलासजी शर्मा बताते हैं कि- उस वर्ष पूरे नगर में विशाल जुलूस निकाला गया था। माताजी के स्थान से घाटीमाता तक का जुलूस था। वैसा जुलूस उसके बाद कभी नहीं निकला। सभी धर्मों व समाज के लोग उसमें शामिल थे। बरेठ रंगलालजी ने उस जुलूस में जैसा ढोल बजाया, वैसा ढोल भी फिर कभी नहीं बजा।

माता का वर्तमान स्थल फुवारी गाँव संजीत से दक्षिण में स्थित है। बहुत ही सुन्दर पक्का मन्दिर बना है। फुवारी माता के मूल स्थान के उत्तर पार्श्व में मामादेव भैरव स्थापित हैं। दक्षिण पार्श्व में लालबाई-फूलबाई तथा खाँखोरी माता विराजित हैं। इन देवियों और मामादेव का वर्णन इसी पुस्तक में पृथक से दिया गया है। उत्तर में बाहर महुए-पीपल के नीचे एक चीरा देव है। उसे धोकने से माता की धोक पूरी मानी जाती है। पक्की बावड़ी बनी है। उसमें स्नान करने से समस्त रोग-शोक शमित होते हैं। माता के स्थान पर नव-ब्याहता जोड़े धोकने आते हैं। माँ सबको प्रसन्न करती है। धन-धान्य, दूध-पूत प्रदान करती है। भूत-प्रेत, डाकिन आदि प्रेतात्माओं से मुक्ति दिलाती है। यहाँ भाव नहीं आते और न चौकी होती है।

माता के समक्ष अरज लगाने से मन की मुरादें माँ स्वयं पूरा करती हैं। यहाँ दोनों नवरात्रों में धाम चलती है। प्रतिदिन भी यहाँ अनेक यात्री दर्शन करने आते हैं। यह माता सकल समाज की आस्था देवी है। विशेष अवसरों पर गामोठ शर्मा रामविलासजी यहाँ पूजा-हवन की व्यवस्था करते-करवाते हैं।

यहाँ विशाल मेला आदिकाल से पड़ता चला आ रहा है। एक समय यहाँ आँतरी, शंखोद्वार और फुवारी के मेले बड़े महत्त्व के माने जाते थे। फुवारी माता का यह मेला आज भी उसी विशालता से अपना महत्त्व बनाये हुए है।

## घाटी माता

घाटी माता, जैसा कि नाम से पता चलता है कि, घाटी पर स्थित माता है। यह महिषासुर मर्दिनी (भैंसासरी माता) का स्थान है। यह स्थान भी अतिप्राचीन है। यह पुरानी संजीत का ही स्थान है। मूल रूप से यह स्थान भीलों द्वारा स्थापित और पूजित रहा है। किन्हीं कारणों से भील परिवारों का यहाँ से पलायन हुआ। स्थान बहुत समय तक उपेक्षित पड़ा रहा। फिर संजीत के राठौर (तेली) समाज ने माता के स्थान की व्यवस्था अपने हाथों में ली और ओटले पर मन्दिर बनाया। पूर्व में भीलों द्वारा पूजित होने के कारण यहाँ बलि भी होती थी। भाव भी होता था। चौकी-न्याय भी होता था। अब यह सब नहीं होता।

## संजीत माता

ऐसी ही एक महिषासुर मर्दिनी की मूर्ति गाँव के गामोठ श्री रामविलासजी शर्मा को पुराने संजीत से प्राप्त हुई। यह मूर्ति एक शिलापट्ट पर बहुत ही सुन्दर कोरावन से बनायी गयी है। पुरानी संजीत में जहाँ गूजर गौड़ ब्राह्मणों की गुवाड़ी थी, वहाँ किसी समय भील समुदाय की गुवाड़ी हुआ करती थी। वस्तुतः वहाँ पर भीलों का मुखिया और तत्कालीन संजीत का ज़ागीरदार करमाण भील ठाकुर का ठिकाना था। यह माता उसी भील ठाकुर करमाण भील ठाकुर की कुलदेवी थी। एक युद्ध में करमाण व उसके सातों बेटों सहित परिवार के अन्य सम्बन्धी भी मारे गये। भील ठाकुर करमाण का वंश समाप्त हो गया। वहाँ के नवीन सत्ताधारी ने शेष भीलों को भी वहाँ से मार भगाया। यह माता जो तब संजीत की आस्था देवी थी, इसे संजीत माता कहकर पूजा जाता था।

भीलों के पलायन के पश्चात् उस स्थान पर गूजर गौड़ ब्राह्मणों का मुकाम हुआ। ब्राह्मणों ने माता की पूजा-अर्चना पूरे विधि-विधान से करना शुरू की। कई पीढ़ियों तक ब्राह्मण वर्ग ने संजीत माता की पूजा की। संजीत के डूब में आने के कारण ब्राह्मण तो वहाँ से पलायन करके इधर-उधर बस गये, माताजी वहीं रह गई। समय के फेर से ब्राह्मणों की गुवाड़ी खण्डहर हो

गयी। माताजी का ओटला भी खण्डहर हो गया। सम्भवतः ब्राह्मणों ने जाने से पहले माताजी को सुरक्षित ज़मीन में गाड़कर ऊपर तुलसी क्यारा बना दिया। इस प्रकार तुलसी के माध्यम से संजीत माता महिषासुर मर्दिनी पूजित होती रहीं। जब संजीत डूब में आई, तब सब लोग पुरानी संजीत छोड़कर नयी संजीत में बस गये। माता की पूजा बन्द हो गयी।

सन् 1960 में माता ने गामोठ रामविलासजी शर्मा को परचा दिया। इन्होंने वहाँ जाकर ढूँढ़ लगायी। माता के बताये तुलसी क्यारे को खोदा तो नीचे से माता प्रकट हुई। रामविलासजी ने पूरे विधि-विधान से माता की स्थापना अपने घर में की। आज पुरानी संजीत की यह भैंसासरी माता गामोठ रामविलासजी शर्मा के निजी निवास में स्थापित है। महाराज सात्त्विक रूप से माता की पूजा करते हैं। इन्होंने माता को वेदमाता गायत्री का रूप मानकर उसी विधि से पूजा का विधान किया है। यह एक उदाहरण है कि बलि से प्रसन्न होने वाली भील आस्था वाली करमाण भील की माता संजीत की आस्था देवी भैंसासरी से तुलसी रूप में पूजित हुई और आज वेदमाता गायत्री के रूप में पूजित हैं। उनके पास शर्माजी ने भैरव की भी स्थापना की है। संजीत माता भैंसासरी आज भी संजीत माता के रूप में ही पूजित हैं। यह माता बहुत चमत्कारी हैं।

### सारदा माता

मल्हारगढ़ तहसील का एक गाँव गोपालपुरा रेतम नदी के तट पर बसा एक छोटा-सा गाँव है। यह गाँव वैसे तो सभी समाजों की बस्ती है, किन्तु बंजारा समाज का यहाँ बाहुल्य है। यहीं पर एक स्थान है सारदा माता का देवरा। यह देवरा एक चन्देल गोत्र के परिवार में ही एक कच्चे खपौल के घर में स्थित है। देवरे के कच्चे चबूतरे पर कोई भी मूर्ति स्थापित नहीं है। वर्तमान पुजारी, जिनकी उम्र लगभग अस्सी वर्ष की है, ये चन्देल बंजारा गोत्र के वंशज हैं। इनका नाम गौरीलाल चन्देल है। श्री चन्देल का कहना है कि लगभग दो सौ वर्ष पुराना यह स्थान है। गाँव की बस्ती से भी पहले का है। चन्देल वंश इसकी पूजा कई पीढ़ियों से कर रहा है। गाँव बसने से पहले

माताजी की स्थापना किसने की और कौन इसकी पूजा करता था, यह पता नहीं है। इस माता के कई रूप हैं – कालका, शीतला, जोगणियाँ, नारसी, बीजासनी और शारदा। दुर्गा के सभी रूपों में यह पूजित है। यही भैंसासरी हैं, यही कालका हैं। यही यहाँ सब रूपों में विराजित हैं, जो जिस रूप में पूजता है, माता उसी रूप में उसकी अर्ज सुनती हैं। यहाँ किसी को भाव नहीं आता। अर्ज लगा दो, सपने में स्वयं माता परचा देकर न्याय करती हैं।

खाखलदेव और भैरव भी इसी थानक में विराजित हैं। किसी की मूरत नहीं है। बलि नहीं होती। धार भी नहीं लगती। पुजारी भी खानपान शुद्ध रखता है। कोई भी दारू-शराब पीकर माता के देवरे में नहीं आ सकता। किसी को धार-बलि देनी हो तो बीजासनी, जोगणियाँ, कालका रूप मानकर दूर पूजा कर सकता है। सारदा माता लोकदेवी के रूप में पूरे क्षेत्र में सम्पूजित हैं। जो जैसी भावना लेकर आता है, माता उसे उसी रूप में सपने में परचा देकर मनोकामना पूर्ण करती हैं।

## मन्दसौर की लोकमाताएँ

### नालछा माता और खिड़की माता

मन्दसौर, जिसे दशपुर भी कहा जाता है। इसी दशपुर का एक गाँव नालछा। नालछा में नारसी माता का भव्य मन्दिर। एक ऊँची टेकरी पर स्थित यह लोकमाता नारसी, मालवा और राजस्थान के अनेक परिवारों और वर्गों की आस्था देवी हैं।

आसपास के महल खण्डहर व क़िला कोट के खण्डहरों से यह अनुमान लगाना कठिन नहीं है कि इस क्षेत्र में किसी समय सम्पन्न एवं नगरीय आबादी रही होगी। इस गाँव का नाम नालछा है। वर्तमान में यह गाँव माताजी की टेकरी से पश्चिम में अर्थात् मन्दिर के पिछवाड़े की ऊँची टेकरी पर बसा हुआ है। यही कोई तीस-चालीस घरों की बस्ती वाला यह गाँव माली समाज का गाँव है। अब तक के अनुभवों से यह ज्ञात हुआ है कि नगर सदा माताजी के सम्मुख बसा हुआ रहता है। माताजी का मुख पूर्व की ओर है। महल के खण्डहर भी मन्दिर के सामने ही हैं।

लोक मान्यता के अनुसार सामने वाला खण्डहर राजा दशरथ का था। इसे दशरथ महल पुकारा जाता है। इसी क्षेत्र में एक नाला बहता है, जिसे श्रवण नाला कहा जाता है। ऊँची-ऊँची पालों से यह अनुमान सहज ही लगाया जा सकता है कि यहाँ एक विशाल तालाब रहा होगा। उसी नाले-तालाब की पाल की खुदाई से कुछ खण्डित मूर्तियों के अलावा एक शिलालेख भी मिला है, जो लगता है तालाब की सुरक्षा व जल की सफाई

के उद्देश्य से लगाया गया होगा। इस शिलालेख का सन्देश/निर्देश यह है कि कोई भी यहाँ शिकार नहीं करे। शिकार का अर्थ तालाब के भीतर व किनारे के पशु-पक्षियों व मछलियों से है। इस शिलालेख पर उर्दू में भी यह निर्देश अंकित होना यह तो सिद्ध करता ही है कि मुस्लिम शासन में ही यह शिलालेख लगाया गया होगा। यह भी सम्भव है, यह तालाब भी उसी काल में बनाया गया हो अथवा पूर्व के तालाब की मरम्मत करवायी गयी हो।

राजा दशरथ और श्रवण नाले का सन्दर्भ हम यदि अयोध्या के राजा दशरथ से जोड़ें, तब तो यह आबादी बहुत प्राचीनता का संकेत करती है। मेरा उद्देश्य पुरातात्विक शोध नहीं है। फिर भी इतना लोक आधार से कहा जा सकता है कि माताजी की स्थापना लगभग पाँच सौ वर्ष पूर्व की है। दशरथ नाम किसी भी राजा का सम्भव है।

नारसी माता की मूर्ति की एक विशेषता यह है कि माता के दाहिने में ही भैरव की मूर्ति स्थापित है। अन्य मन्दिरों में भैरव पृथक से विराजित मिलते हैं। बहुधा भैरव मन्दिर के बाहर स्थित होते हैं। एक ही चौक पर माता और भैरव की स्थापना कहीं नहीं मिलती। मूल रूप से यह माता भीलों की इष्टदेवी है। उन्हीं की यह स्थापना है। उन्हीं के द्वारा पूजा होती थी। बलि खूब होती थी। लगभग प्रतिदिन बलि होती थी।

इस क्षेत्र के लोकजीवन में नालछा माता के लिए आज भी बहुत आस्था है। यह माता संतान दात्री तथा गौ रक्षक माता है। नारसी अर्थात् नाहर की सवारी वाली होकर भी यह माता नाहर पर विराजित नहीं दिखती। खूट मोटी सिन्दूर के परत के भीतर की माता की छवि क्या है, यह जानना कठिन है। कई बुजुर्ग लोगों से मिलने पर माता के बारे में जो अन्तर्कथाएँ मिलीं, उन्हें जोड़कर देखने पर यह संकेत मिलता है कि यह माता भी अन्य लोकमाताओं की तरह पूर्वकाल में एक भील कन्या होकर जीवित पात्र थी। गौ-चारण करना इसकी दिनचर्या थी एवं गौ-रक्षा करते हुए ही इसने वीरगति प्राप्त की। यह अन्तर्कथा इस प्रकार सुनने को मिलती है-

बहुत वर्षों पहले यहाँ किसी दशरथ नाम के राजा का राज्य था। क़िला कोट और सुन्दर महल भी था। एक बार एक भीलनायक ने जंगल में

दशरथ राजा की शेर से जीवन रक्षा की। प्रसन्न होकर राजा ने उस भील को अपना अंगरक्षक बना लिया। उसे वहीं महल के निकट क्रिले में रहने की व्यवस्था भी मिल गयी। उस भील की दो लड़कियाँ थीं। बड़ी का नाम वीरकी, छोटी का नाम धीरकी। दोनों परस-परस लम्बे फरसे लेकर जंगल में गायें चराती थीं। उनके पास तीन कोड़ी गायें (साठ गायें) थीं। आधी पीरकी (पीली), आधी धोरकी (सफेद)। शेर तो उनकी गंध सूँघकर ही भाग खड़ा होता था। कई बार उन्होंने बाघ को फरसों से मार गिराया था। उनकी गायें भी बाघ को घेरकर मार डालती थीं। श्रवणिया तालाब पर सुबह-सबेरे गायें पानी पीती थीं। उसी बड़े तालाब पर पूरे गाँव की गायें भी पानी पीती थीं। तालाब के क्षेत्र का गोबर भीलनायक के हक्र का था। यह राजा का हुकुम था। बदले में तालाब पर पानी पीने आने वाले जंगली पशुओं तथा पानी पर तैरने वाली बतखों, मुर्गाबियों तथा अन्य पक्षियों के अलावा मछलियों का शिकार कोई नहीं करे, इसका ध्यान भीलनायक रखवाता था। उसके दो आदमी दिन-रात वहाँ पहरा देते थे। रात को महल की छत पर बारी-बारी से वीरकी, धीरकी भी तीर-कामठा लेकर तालाब का पहरा देती थीं।

उन दिनों कुछ भील मीणे गायों को घेरने का काम करते थे। उनका आतंक बहुत था। नालछा में एक हजार गायों का चौपा नवलखा पर चरने जाता था। ऐसी सुन्दर और दुधारू गायें और कहीं भी नहीं थीं। गायों के उन डकैतों में और भी जातियों के लोग शामिल थे, मगर उनका मुखिया एक मीणा था, जिसका नाम था गोगा। गोगा मालवा से गायें घेरकर राजस्थान ले जाता और राजस्थान से गायें घेरकर मालवा में ले आता। उसे दोनों राज्यों के अनेक ज़ागीरदारों की मदद थी। उसके आतंक से मुक्त करवाने के लिए भीलनायक को तैनात किया गया। भीलनायक के दल में सवा सौ भील तीर-कामठाधारी, तलवारबाज और फरसा चलाने वाले थे। गोफण चलाने में सब माहिर, मीणानायक ने भरी दोपहर नवलखा बीड़ पर घेरा डालकर गायों को घेर लिया। उसके पास लगभग पाँच सौ आदमी थे। नालछा के भीलनायक ने मुकाबला किया। वीरकी और धीरकी ने तलवार के ऐसे हाथ

दिखाये कि डाकुओं के पैर उखड़ गये। आधे डाकू मारे गये, आधे भाग गये। वीरकी-धीरकी की बहादुरी से प्रसन्न होकर राजा ने उन्हें पाँच गाँव की ज़ागीर भेंट में दे दी। अपना आधा महल रहने को दे दिया। उस लड़ाई में भीलनायक वीरगति को प्राप्त हुआ। ज़ागीर की जिम्मेदारी वीरकी-धीरकी बहनों पर थी।

कुछ वर्षों बाद राजस्थान के डूंगरपुर से दो भाई नालछा में आये। दोनों वीर। भील युवक। उन दोनों से वीरकी और धीरकी का विवाह हो गया। वीरकी का एक बालक। उधर डाकुओं का दल फिर सक्रिय हो गया। उन्होंने पाँच सौ आदमियों की फौज़ बनाकर गाँव को घेर लिया। गायें सब घरों-बाड़ों में बन्द। तीन दिन युद्ध चला। वीरकी ने देखा अब सीधा मुकाबला करना होगा। गाँव के लोग घबरा गये हैं। गायें भूखी-प्यासी हैं। उसने धीरकी से कहा- तू पश्चिम में नीचे उतर जा और डाकुओं को घेरकर पीछे से टूट पड़। मैं सामने से हमला करती हूँ। गायें सब महल में घेर ली गयीं। डाकुओं पर दोनों बहनें टूट पड़ीं। वीरकी घोड़े पर सवार थी। पाँच वर्ष का बालक पीठ पर बँधा था। वीरकी तलवार ऐसे चला रही थी जैसे बिजली चमक रही हो। उधर धीरकी ने भी कहर मचा दिया। इसी बीच एक गद्दार भील ने डाकू सरदार गोगा से मिलकर गायों का फाटक खोल दिया। भूखी गायें बाहर भागीं। उन्हें डाकुओं ने घेर लिया।

वीरकी ने जैसे देखा कि गायें डाकुओं के घेरे में आ गयी हैं, तो वह तिलमिला कर उस गद्दार भील पर टूट पड़ी। उसे जा दबोचा और उसका सिर काट डाला। उसके साथियों को भी मार डाला। इसी बीच गोगा अपने दस साथियों समेत आ पहुँचा। वीरकी चारों ओर से घिर गई, लेकिन वह घबरायी नहीं। उसने अपनी इष्टदेवी जगदम्बा को पुकारा। जगदम्बा आ पहुँची। जगदम्बा उसके शरीर में प्रवृष्टि हो गई। वीरकी ने गोगा का सिर काट लिया। सारे डाकू मारे गये। उधर धीरकी भी वीरगति को प्राप्त हो गई। वीरकी बहुत घायल हो गई थी। उसका बालक भी घायल था। सबने उसे घोड़े से उतारा। गायों ने उसके चारों ओर घेरा बनाया। वीरकी ने कहा- गायों की रक्षा हो गई है। गद्दार भील सोजा ने गायों को डाकुओं के हाथों सौंपकर



बड़ा पाप किया है। उसके यहाँ दस घर हैं। वे सब गायों के अपराधी हैं। सबने मिलकर डाकुओं का मुकाबला नहीं किया। गायें सुरक्षित हैं। हो सके तो गायों की रक्षा करते रहना। मेरा अन्त आ गया है। धीरकी भी वीरगति पा गई है। आप यहीं टेकरी पर मेरी स्थापना कर देना। मेरे पास ही मेरे बच्चे की स्थापना भेरू रूप में करना। मैं सदा तुम्हारी रक्षा करूँगी। मेरे नाम की तांत गायों के गले में बाँधने पर गायों के रोग मिटेंगे। बाड़े के आसपास मेरे नाम का घेरा बनाने से साँप व शेर बाड़े में नहीं घुस पायेंगे। मैं निपूतियों की गोद भरूँगी। गाँव को रोग-शोक से बचाऊँगी।

मेरी बहन धीरकी शिवना के उस पार खिड़किया में वीरगति को प्राप्त हुई है। वहाँ उसका थानक बनाना। मेरी मन्नत तब पूरी होगी, जब धीरकी को भी धोक लगेगी। मैं संतान दूँगी। वह बालक की रक्षा करेगी। मैं गायों की वृद्धि करूँगी, वह गायों की रक्षा करेगी। मेरी धोक के बाद धीरकी की धोक लगाना आवश्यक होगा।

वीरकी 'नालछा की माता' कहलायी और धीरकी 'खिड़की की माता' कहलायी। माता की पूजा में कमी करने के कारण भील समुदाय यहाँ से चला गया। माता ने गाँव बेचिराग कर दिया। दुबारा मन्नत-मनौती से गाँव बसा। यहाँ के मूल भील धार-अमझेरा के मध्य जा बसे, वहाँ नालछा गाँव बसा लिया। आज भी मूल गाँव बेचिराग है। मालियों ने गाँव बसाकर माता की सेवा करना शुरू किया।

गंगधार का प्रामाणिक इतिहास केवल पाँचवी शताब्दी से ही प्राप्त होता है। गंगधार प्रसिद्ध गुप्तवंशी सम्राट चन्द्रगुप्त विक्रमादित्य के पुत्र कुमार गुप्त के समय के राजा विश्ववर्मन के मंत्री मयुराक्ष से सम्बद्ध रहा है। इनके समय में गंगधार मालवा प्रदेश का समृद्ध नगर था। स्वयं मयुराक्ष ने यहाँ वैष्णवों के विष्णु मन्दिर, तांत्रिकों के लिए मातृ देवियों तथा आम जनता के लिए शीतल-मधुर-प्रचुर जलकूप का निर्माण करवाया, इसका उल्लेख यहाँ से प्राप्त संवत् 480 के शिलालेख में है। गंगधार क्षेत्र में निम्न लोकमाताओं के मन्दिर हैं- महालक्ष्मी मन्दिर, माता महालक्ष्मी मन्दिर, भवानी माता का मन्दिर, विश्वन्त माता का मन्दिर, देवर माता का मन्दिर, दूधाखेड़ी माता का मन्दिर, कंकाली माता का मन्दिर, लालबाई माता का मन्दिर, आशापुरा माता का मन्दिर और डगेश्वर माता (डग की) का मन्दिर।

### महालक्ष्मी माता

सन् 1962 में पुरातत्त्वविद् डॉ. वाकणकर ने यहाँ से कुषाण तथा मौर्य युग के एवं सिन्धु सभ्यता के साम्य रखने वाले पुरावशेष प्राप्त किये थे। इस क्षेत्र में चक्र निर्मित मृद्भाण्ड लाल, काले, वाटर, सलेटी रंग के पात्रावशेष मिले, जिन्हें दो हजार वर्षों से पुराना माना जाता है। यहाँ पर एक टीले की खुदाई के समय एक प्रतिमा प्राप्त हुई थी। इस प्रतिमा के चार हाथ हैं, जिसमें दो हाथों में गदा या वीणा जैसा कुछ लगता है, अन्य दो हाथों में एक में कुम्भ

एवं एक हाथ खुला हुआ है, जो कि पैसे गिराने की मुद्रा में है। ऐसा अनुमान लगाया जाता है कि यह प्रतिमा माता लक्ष्मी की है, जो मयुराक्ष द्वारा बनवाये गये विष्णु मन्दिर में प्रतिष्ठित थी। वर्तमान में यह मूर्ति द्वारिकाधीश मन्दिर के पास स्थित है, जो कि मालपुरा रोड पर स्थित है। इस मन्दिर के पास भगवान महाकाल का मन्दिर भी स्थित है। कहा जाता है, भगवान महाकाल की स्थापना किसी गंगा भील ने की थी। इस मन्दिर की पूजा स्व. श्री मांगीलाल बैरागी के पुत्र मुकेश बैरागी द्वारा की जाती है। इस मन्दिर में समस्त जातियों द्वारा पूजा-अर्चना की जाती है।

### महालक्ष्मी माता

यह मन्दिर गढ़ मोहल्ले में तहसील के पास काली सिन्ध नदी के तट पर बना हुआ है। इस मन्दिर के पुजारी श्री सुरेश जी शर्मा से प्राप्त जानकारी अनुसार लगभग 140 वर्ष पूर्व इस मूर्ति की प्रतिष्ठा हुई थी। इस मन्दिर के बनने के बारे में बताया कि यहाँ पर पहले किसी महात्मा द्वारा राम-जानकी मन्दिर बनाने के लिए इसका निर्माण शुरू किया था, किन्तु वह महात्मा सिंहस्थ पर्व के दौरान कहीं चले गये। कई वर्षों तक यह मन्दिर आधा-अधूरा पड़ा रहा, तब यहाँ के श्री गौड़ गुजराती ब्राह्मण समाज के 30-35 घरों के लोगों ने एकत्रित होकर तत्कालीन झालावाड़ दरबार के पास जाकर माँग की कि- इस मन्दिर का निर्माण हम लोग करके माताजी की स्थापना करेंगे।

तब यह मूर्ति जयपुर से लायी गयी थी। इसकी प्राण प्रतिष्ठा के समय हाड़ौती, निमाड़, मालवा, गुजरात क्षेत्र का श्री गौड़ गुजराती ब्राह्मण समाज एकत्रित हुआ था एवं इस मूर्ति की शोभायात्रा हाथी पर निकाली गयी थी। यह मूर्ति कमलासन है, इसके आसपास दो हाथी अभिषेक करने की मुद्रा में तथा दो व्यक्ति चँवर डुला रहे हैं। इसकी चार भुजाएँ हैं। इस मन्दिर में समस्त जातियों द्वारा पूजा-अर्चना की जाती है। वर्तमान में इस मन्दिर का संचालन समाज द्वारा संचालित ट्रस्ट से होता है। इस मन्दिर का लेखा-जोखा का विवरण प्रतिवर्ष दीपावली के पश्चात् प्रथम रविवार को अन्नकोट के महोत्सव के अवसर पर समाज के सामने किया जाता है।

### विश्वन्त माता

यह मन्दिर गढ़ में स्थित है। यहाँ के पुजारी श्री कमलदास बैरागी हैं, इनकी नियुक्ति यहाँ के झाला परिवार (जो कुण्डला के राव हैं) द्वारा की गई है। वर्तमान में यह मन्दिर रखरखाव के अभाव में जीर्ण हो रहा है। इस मन्दिर के बारे में प्राप्त जानकारी के अनुसार मध्ययुग में गंगधार के प्रथम राजा रावत नरहरदास झाला रहे हैं। इन्होंने गंगधार को अपनी राजधानी बनाकर आसपास के क्षेत्रों पर प्रभाव स्थापित किया। यहाँ इन्होंने 1629 ई. में एक क़िला बनाकर उसमें कुलदेवी विश्वन्त माता का मन्दिर स्थापित किया। यहाँ पर आज भी नवरात्रि में झाला परिवार के लोगों द्वारा पूजा-अर्चना की जाती है।

### भवानी माता

यह मन्दिर गढ़ मोहल्ले में तहसील रोड पर क़िले के पास स्थित है। इस मन्दिर की पूजा-अर्चना कलाल समाज के द्वारा की जाती है। इस मन्दिर के नाम कृषि भूमि है, जिसके खर्च से पूजा की जाती है। प्रत्येक नवरात्रि में पूजा की जाती है। पूर्व में यहाँ पर पशु बलि दी जाती थी, वर्तमान में नहीं। यह मन्दिर भी अतिप्राचीन है। इसके बारे में प्रामाणिक सबूत एवं जानकारी प्राप्त नहीं है। इस मन्दिर में समस्त जातियों द्वारा पूजा-अर्चना की जाती है।

### देवर माता

यह मन्दिर क़िले के मुख्यद्वार, जो कि दक्षिण दिशा में है, के सामने स्थित है। यह मन्दिर लगभग 200 वर्ष पुराना प्रतीत होता है। इसके प्रामाणिक दस्तावेज़ नहीं हैं।

इस मन्दिर में दो देवियाँ खड़ी अवस्था में हैं। हाथ में त्रिशूल लिये हुए हैं। इस मन्दिर पर दशहरे के दिन यहाँ पर पशुबलि दी जाती है, जिसे देखने के लिए पूरा नगर उमड़ पड़ता है। नवरात्रि में नौ दिनों तक जात्रि की जाती है। यहाँ के पण्डे, जिन्हें देवी का घोड़ला कहा जाता है। वह पशुबलि जो कि एक झटके में होती है, तो उसका रक्तपान करते हैं। यदि बलि एक

झटके में हो तो ही पण्डों द्वारा रक्तपान किया जाता है अन्यथा नहीं। यह पशुबलि जो मान करता है, वह दिलवाता है। वर्तमान में इस मन्दिर की देखभाल नायक समाज के लोग इस माता को अपनी कुलदेवी या देराड़ी मानकर पूजा करते हैं। इस मन्दिर में समस्त जातियों द्वारा पूजा-अर्चना की जाती है।

### दूदाखेड़ी माता

यह स्थान गंगधर के प्राचीनकालीन रंगबाग में खुले चबूतरे पर नौ देवियों की मूर्ति गोल पत्थर पर सिन्दूर लगाकर रखी गयी है, जो कि खुले में है। यहाँ की पूजा सभी करते हैं। यह माताजी किसी व्यक्ति या जाति विशेष की आराध्य देवी के रूप में नहीं हैं। इस मन्दिर में समस्त जातियों द्वारा पूजा-अर्चना की जाती है। यह स्थान दूधाखेड़ी (भानुपरा) तहसील की ज्योति लाकर स्थापित किया गया था।

### कंकाली माता

यह स्थान गंगधर के माली मोहल्ले में स्थित है। इस मन्दिर में दो देवियों की मूर्तियाँ हैं- देवर माता और कंकाली माता। यहाँ पर नवरात्रों के पश्चात् दशहरे के दिन पशुबलि दी जाती है। यहाँ यह मन्दिर कच्चे मकान में स्थित है तथा माली समाज के लोग इसे अपनी कुलमाता के रूप में मानते हैं एवं पूजा-अर्चना करते हैं। वैसे इस मन्दिर में समस्त जातियों द्वारा पूजा-अर्चना की जाती है।

### लालबाई माता

यह मन्दिर मालपुरा बाजार में खुले चबूतरे पर स्थित है। यहाँ एक मूर्ति पत्थर की स्थापित है, उसे सिन्दूर लगाकर एवं लाल कपड़े से ढँककर रखा है। प्रामाणिक रूप से इसका कोई दस्तावेज़ उपलब्ध नहीं है। इस मन्दिर में समस्त जातियों द्वारा पूजा-अर्चना की जाती है।

### आशापुरी माताजी

यह मन्दिर मोहन मगरा स्थित स्थान पर है। पूर्व में माताजी राजपूतों की आराध्य देवी थीं, किन्तु वर्तमान में नीमा समाज के लोग इस माता को अपनी कुलदेवी के रूप में पूजते हैं। प्रत्येक नवरात्रि में यहाँ पूजा-अर्चना एवं जात्रि की जाती है। इसका इतिहास इस प्रकार है-

माँ आशापुरी माताजी गंगधर राजस्थान प्रान्त के सुदूर जिला झालावाड़ के अंचल में कल-कल निनाद करती छोटी काली सिन्ध नदी तट पर अवस्थित गंगधर ग्राम के मोहन मगरा की घाटी पर एक अतिप्राचीन मन्दिर है, जिसे माँ आशापुरी के नाम से जाना जाता है। इस प्राचीन मन्दिर का स्थान केसरबाई के बाड़े में था। वृद्धजनों द्वारा ऐसा कहा जाता है कि यह राजपूतों की देवी थी। यह सौँधिया राजपूत की गोत्र पड़ियार या परिहारों की कुलदेवी भी मानी जाती थीं। पाँच शताब्दी पूर्व राजा के सेनानायक सौँधिया वर्मन की स्थिति ठीक नहीं होने से तथा उनको राज्य से बहिष्कृत करने के बाद वह सेनानायक रात्रि में अंधकार में चुपचाप गंगधर छोड़कर चले। अपने विश्वस्त साथियों द्वारा सेनानायक को पता चला कि प्रातः इनको राजा भोज के बहाने क़िले में बुलाकर मिश्रित भोजन करवाकर सदा के लिए सुलाये जाने कि योजना बन चुकी है। अस्तु, वह अपने कतिपय विश्वस्त साथियों के साथ अपनी कुलदेवी को यहीं छोड़कर चले गये, तब से आज तक उनकी कोई सूचना नहीं मिली कि वे कहाँ गये। उनके परिवार का क्या हुआ। ऐसा माना जाता है कि सेनानायक को मय परिवार रास्ते में दूसरे राजा ने मौत के घाट उतार दिया। मोहन मगरा आबाद था, जिसमें जैन, नीमा, बैरागी, माहेश्वरी, ब्राह्मण, नाई, धोबी इत्यादि जाति के लोग निवास करते थे। प्रति नवरात्रि उक्त समस्त जातियों के लोग नौ दिन तक दीपक-अगरबत्ती लगाते तथा उनका पूजन करते।

श्री कन्हैयालालजी, जो कि इन्दौर में रहने चले गये थे, उनको देवी की सवारी आई और आज्ञा हुई कि मन्दिर निर्माण करो, तब झण्डेवाला परिवार ने मन्दिर का निर्माण करवाया। अब पिछले नौ वर्ष से प्रति नवरात्रि में जात्रि करते हैं और नौ दिन तक गरबे देते हैं। अखण्ड दीपक जलता है,

जवारे बोये जाते हैं। श्री कन्हैयालालजी को देवी की सवारी आती है। कई लोगों की मनोकामना पूरी हुई। ऐसी चमत्कारी मूर्ति माता आशापुरी की आज भी मोहन मगरा में अवस्थित है। विगत पाँच शताब्दियों से अवस्थित है। नवरात्रि में कई जात्रि आते हैं, उनकी मनोकामनाएँ माँ पूर्ण करती हैं।

### डागेश्वरी माता ( डग )

डग नगर एक समय मालवा का भाग होकर दशपुर जनपद का ही नगर था। यहाँ किसी समय भीलों की छोटी-सी बस्ती थी। उसका नाम था खेड़ी। उन्हीं दिनों डोगा नाम का एक भील सेनानायक भानपुरा के मुकुन्दरा पठार से विस्थापित होकर अपने सैनिकों एवं उनके परिवारों सहित उसी पठार पर आगे बढ़ा और गागरोन के पास बसी भील बस्तियों में अपना मुकाम किया। थोड़े दिनों में उसे वहाँ से भी हटना पड़ा। वह भटकता हुआ खेड़ी गाँव पहुँचा। वहाँ खाली ज़मीन खूब थी। जंगल भी था। उसने उस क्षेत्र पर अपना अधिकार जमाया और वहाँ अपने सैनिकों सहित बस गया। वहाँ के भीलों को उसने अपने मातहत कर लिया और नयी बस्ती को 'डग' नाम दिया।

विक्रम 1202 संवत् में डग और आसपास के क्षेत्र पर राठौड़ों का आधिपत्य हो गया। उन्होंने इस क्षेत्र का नाम दुधालिया रखा और वहाँ दुर्ग स्थापित किया। दुधालिया के राजा चन्द्रसिंह ने अपने छोटे बेटे जसवन्त सिंह को डग का क्षेत्र ज़ागीर में दे दिया।

**डागेश्वरी माता-** जसवन्त सिंह ने अपने दीवान अम्बालाल को राज्य का प्रबंधक नियुक्त किया और एक दुर्ग बनाने का हुक्म दिया। जहाँ दुर्ग बनना तय हुआ, वहाँ पर डोगा भील की इष्टदेवी डग माता भैंसासरी का चबूतरा था। खण्डित हो जाने के कारण उसका ध्यान किसी को नहीं रहा। संयोग से क्रिले की दीवार ओटले पर आ गयी। सबेरे दीवाल बनायी जाती थी, रात को वह गिर जाती थी। जब ऐसा कई बार हुआ, तब अम्बालाल ने अपनी इष्टदेवी का ध्यान किया। माता ने कहा- दीवार के नीचे मेरा स्वरूप दबा पड़ा है, उसे बाहर निकालो। वह डोगा की इष्टदेवी है। उसे स्थापित

करो और पूजा करो। तब अम्बालाल ने खुदाई करवाकर माता का स्वरूप बाहर निकलवाया और वहाँ पर डग देवी का मन्दिर बनवाया। उसका नाम डगेश्वरी रखा गया। मन्दिर को भीतर लेकर एक मजबूत धूलकोट बनवाया गया। राज्य का नाम भी डग ही रहने दिया गया। आगे जाकर माता की कृपा से डग का विकास हुआ और दूधालिया की प्रगति घट गयी। आज दूधालिया एक छोटा-सा गाँव रह गया है।

डग पर राठौड़ों के बाद मराठों, ढंढेरियों, बड़गूजरो, मुसलमानों, मेवातियों और रामपुरा-भानपुरा के चन्द्रावतों का शासन रहा। चन्द्रावतों का शासन यहाँ संवत् 1643 से 1722 विक्रम तक रहा। बाद में यह इलाका सूबाशाही शासन में चला गया। सूबाशाही के बाद यह इलाका पड़हारों, पूना के पेशवा और फिर पँवारों के शासन में भी रहा। पँवारों से जयपुर राज्य में और फिर पँवारों के पास आ गया। संवत् 1859 विक्रम में यह महाराजा होल्कर के अधिकार में आ गया। लेकिन संवत् 1864 विक्रम में यह कोटा राज्य में चला गया, फिर झालावाड़ राज्य में शामिल हुआ। दुर्ग का निर्माण कई बार होता रहा। विक्रमी संवत् 1888 को डग के पक्के दुर्ग का निर्माण कोटा राज्य ने करवाया।

इतने परिवर्तन देखने के पश्चात् भी डगेश्वरी माता का यश खण्डित नहीं हुआ। प्रत्येक शासक ने गढ़ देवी डगेश्वरी को पूरा मान दिया। डोगा भील की इष्टदेवी भैंसासरी माता सबके लिए वरदात्री सिद्ध हुई। इस माता की पूजा आदिकाल से भील परिवार ही करते आये। समय-समय पर तथा नवरात्रों में मदिरा की धार और बकरे-मुर्गे की बलि माता को चढ़ती रही। यह भील राणी से राजराणी और राजराणी से जगराणी बनी। सकल जगत के हृदयों पर डगेश्वरी का साम्राज्य आज भी स्थापित है।

### गरोड़ा की अम्बा माता

'गरोड़ा' ( भावगढ़ ) दशपुर जनपद की पश्चिमी राजस्थानी सीमा का एक कृषि सम्पन्न गाँव/ यहाँ पर अम्बामाता का भव्य मन्दिर/ जिसमें पश्चिमाभिमुखी सिंह वाहिनी अम्बामाता की सुदर्शन प्रतिमा/ यह मूर्ति अन्य

मूर्तियों से भिन्न छवि सम्पन्न है। माँ सिंह पर अश्वारोही की तरह आरूढ़ है। सिंह और माता दोनों का मुख पश्चिम में है। इसी को मालवी में 'घोड़ा फलाँग' सवारी कहते हैं। सिंह और माता दोनों की मुखमुद्रा शान्त एवं तृप्त स्वरूपा है।

अम्बामाता पाटीदार समाज की कुलदेवी के रूप में आराध्य हैं। आमवृक्ष पाटीदार समाज का पूज्य वृक्ष है। गरोड़ा का यह मन्दिर पच्चीस गाँवों के चौकड़े का आराध्य मन्दिर है। गरोड़ा से लगाकर दलौदा सागर, रीछालाल मुँहा के दायरे में पाटीदार समाज बहुल इन पच्चीस गाँवों में रहने वाले पाटीदार परिवार माता के इस मन्दिर की व्यवस्था में योगदान करते हैं। ज्येष्ठ अमावस्या पर यहाँ पच्चीस गाँव के इस चौकरे के प्रतिनिधिगण इकट्ठे होते हैं। वर्ष भर के आय-व्यय का विवरण प्रस्तुत होता है। नये प्रस्ताव पारित होते हैं।

माता की मूर्ति की स्थापना विक्रमी संवत् 1711 वैशाख सुदी 3 शुक्रवार को प्रातः दस बजे गरोड़ा में की गयी। यहाँ घी के दीपक की अखण्ड ज्योति दीपित है।

माता के गरोड़ा विराजने के पीछे भी एक अन्तर्कथा प्रचलित है। कहते हैं- यह प्रतिमा गुजरात के कारीगर बैलगाड़ी पर लादकर ला रहे थे। उन्हें गरोड़ा के निकट ग्राम बनी में जाना था। वे गरोड़ा में रात्रि विश्राम को रुके। प्रातः जब गाड़ी जोतकर आगे बढ़ना चाहा, तब बैलों के पूरा जोर लगाने पर भी गाड़ी आगे नहीं बढ़ सकी। गाँव से और व्यवस्था जुटाकर तीन-चार जोड़ी बैल और जोड़े गये। गाड़ी तब भी नहीं आगे डिगी। अन्ततः माता की इच्छा जानकर गरोड़ा में ही वर्तमान स्थल पर माता की स्थापना कर दी गई। मन्दिर का भूमिदान श्री दौलतरामजी पाटीदार रंगपुरा ने किया।

पूर्वकाल में पाटीदार समाज में दस वर्षों में विवाह होते थे। तब लग्न की पाती ऊमरया माता, उत्तर गुजरात से बड़ी खरसोद (बड़नगर) आते थे। फिर यहाँ से गोरड़ा माता आते थे तथा यहीं से घोषित किये जाते थे। इस प्रकार अम्बा माता का तीर्थस्थल सकल पाटीदार समाज के लिए आस्था का केन्द्र है। गाँव गरोड़ा के वयोवृद्ध पुजारी पं. उदयलालजी भेरूलालजी उपाध्याय

आयु नब्बे वर्ष एवं युवा पुजारी विनोदजी उपाध्याय ने बताया कि उनका परिवार कई पीढ़ियों से माताजी की पूजा करता है। माता आज भी पाती प्रदान करती हैं तथा समस्त मनोकामनाएँ पूर्ण करती हैं।

### मगरा माता

भावगढ़ क्षेत्र के गाँव करजू, अकोदड़ा, करनाखेड़ी, गरोड़ा, रांकोदा आदि बारह गाँवों के मध्य अकोदड़ा गाँव के निकट एक मगरी (ऊँची पहाड़ी) पर कालका माता का यह मन्दिर सर्वपूज्य आस्था का मुख्य केन्द्र है। यह सम्पूर्ण अरावली क्षेत्र किसी समय आदिवासी भील समुदाय के सत्ता क्षेत्र में रहा है। आदिवासी सामन्त पहाड़ियों पर कच्चा कोट बनाकर गाँव-खेड़े को सुरक्षित कर लेते थे। इस परकोटे को वे 'गढ़ा' कहते थे। जहाँ आज मगरा माता कालका का मन्दिर है, वह देवरा पहले गढ़ा के भीतर था। इस प्रकार माता गढ़ की माता के रूप में पूज्य थी। माता का मुख पूर्व को है। मन्दिर के पीछे पश्चिम में लगभग दो सौ कदम की दूरी पर 'शगस' का स्थान है। इन्हें गढ़ के देवता अथवा 'गढ़ के शगस बावजी' कहा जाता है। मन्दिर के भीतर भी कालिका की सुगढ़ आकृति वाली प्रतिमा न होकर पिण्डी स्थापित है।

पुजारी (भोपा) स्व. मोहनलालजी धनगर के सुपुत्र दिलखुश धनगर हैं। सरपंच गौरीशंकरजी हंसवाल एवं भुवानीरामजी डीलर ने बताया कि दर्शन में जो पाँच प्रतिमाएँ हैं, उनमें दूसरे नम्बर की बड़ी मूर्ति कालका माता का रूप है। दाहिनी ओर प्रथम मूर्ति (पिण्डी) हिंगलाज माता हैं। इस क्षेत्र में हिंगलाज माता भील समुदाय एवं नाथ समुदाय की पूज्य देवी मान्य हैं। हिंगलाजगढ़ भी पहले कटारा भील का 'गढ़ा' था। उन्होंने ही अपनी कुलदेवी हिंगलाज माता की स्थापना की थी। शेष तीन पिण्डियाँ भैरव की हैं- काला भैरव, गोरा भैरव और कुल भैरव। बायीं तरफ की पिण्डी गुणा बावजी की है। मुख्य माताजी के साथ शेष पिण्डियाँ सतियों की हैं। यद्यपि यहाँ कालिका की स्वरूप वाली कोई मूर्ति नहीं है। लोक अवधारणा ही सर्वमान्य है। पं. दुर्गाशंकरजी उपाध्याय के अनुसार यह स्थान लगभग साढ़े तीन सौ वर्ष

## लोक आस्था द्वारा स्थापित माताएँ

पुराना है। जब यहाँ देवरा था एवं छोटी-सी मन्दिरि बनी थी, तब कहते हैं कि- किसी काल में यहाँ बलि होती रही हो तो आश्चर्य नहीं है। लगभग एक सौ वर्षों से तो यहाँ बलि होते नहीं सुना या देखा गया। यह जागृत स्थान है। चैत्र नवरात्रि को मेला पड़ता है। दोनों नवरात्रियों पर यहाँ विशेष पूजा होती है। भोपा को भाव नहीं आता। नवरात्रि के दिन माता की सवारी निकलती है, तब भाव भी आता है। श्री किशनलालजी धनगर को भाव आता है। दूर-दूर के लोग यहाँ मन्नत लेने आते हैं। मन्नत पूरी होने पर मन्नत उतारते हैं।

माता के सामने शीतला माता का ओटला है। यहाँ पर लकवा के रोगी भी आते हैं एवं ठीक होकर जाते हैं। सपने में परचा देकर माता शंका निवारण करती हैं। निपूतों को सपूता बनाती हैं। मन्दिर का निर्माण हुए लगभग पाँच वर्ष हुए हैं। यज्ञ-हवन के कार्यक्रम यहाँ समय-समय पर होते रहते हैं।

### होलिका माता

होली का डाँडा फाल्गुन अमावस्या को ही गाड़ दिया जाता है। इसके लिए होलिका स्थल को शुद्ध किया जाता है। गाँव के समस्त वर्ग के मुखियाजन सेमल की डाँडी काटकर लाते हैं तथा उसे गाड़कर उसका पूजन किया जाता है। फाल्गुन पूर्णिमा के दिन होलिका दहन होता है। होलिका दहन से लगाकर चैत्र सुदी नवमी तक माता के ही दिन होते हैं। इसी में धारड़ी अर्थात् धूलिवन्दन। इसे धरा माता या पृथ्वी माता की पूजा का पर्व भी कह सकते हैं। इसी धरती माता ने भरपूर फसलें दी हैं। अन्न-धन्न के भण्डार भरे हैं। इस कारण सबसे पहले इसी माता का वन्दन किया जाता है। इसी मध्य शीतला सप्तमी (कहीं-कहीं अष्टमी), दशा माता, नवदुर्गा, गणगौर सभी माताओं की पूजा होती है। होलिका माता मातृशक्तियों (लोकमाताओं) के पूजन की प्रारम्भिक प्रथम पूज्य लोकमाता है।

लोकमाता होलिका हिरण्य कश्यप की बहन होकर असुर कुल की थी। जब हिरण्य कश्यप ने होलिका से कहा कि तुम प्रह्लाद को गोद में लेकर बैठो, अग्रिरक्षक लोई ओढ़कर। तुम सुरक्षित रह जाओगी और प्रह्लाद आग में जल जायेगा। होलिका ने ठीक उसी समय हाँ कर दी, जिस प्रकार मारीच ने रावण के भय से स्वर्ण मृग बनने के लिए हाँ की थी। मृत्यु निश्चित थी। वह असुर के हाथों या भगवान के।

होलिका जब चिता में बैठी और प्रह्लाद को उसकी गोद में बैठाकर चिता में आग लगा दी गई, तब होलिका ने अपनी लोई प्रह्लाद को ओढ़ा



दी। फलस्वरूप प्रह्लाद बच गया और होलिका जलकर राख हो गई। कहते हैं- अन्त भला सो सब भला। होलिका ने ईश्वर प्रेरणा से प्रह्लाद की रक्षा कर 'बुआ धर्म' की भी रक्षा कर ली। पारिवारिक रिश्ते की रक्षा करने के कारण तथा भगवान विष्णु के परमभक्त प्रह्लाद की रक्षा करके भगवान के प्रति आस्था प्रकट करने के कारण होलिका मरकर भी लोकमान्य होकर अमर हो गई। भगवान ने जैसी सदबुद्धि और सद्गति होलिका माता को दी, वैसी सबको दे।

### शीतला माता

होलिका दहन के पश्चात् चैत वदी सातम के दिन शीतला माता की पूजा की जाती है। यह सर्वमान्य लोकमाता है तथा शीतलता प्रदान करने वाली देवी है। इसी कारण इसकी पूजा भी शीतल अन्न (बासी भोजन) तथा शीतल जल से की जाती है। इस दिन चूल्हा नहीं जलाया जाता। इस माता का नाम 'सेड़ल माता' भी है। महिलाएँ छठ की रात में शीतला माता के गीत गाकर रातीजगा देती हैं, माता का यश बखानती हैं। माता से दूध-पूत देने की याचना करती हैं। उसी रात ढोकले, ओलिया, चावल, पूड़ियाँ बनायी जाती हैं। प्रातः कंकू, हल्दी, सुपारी, लच्छा, धान आदि से माता की पूजा कर जल सिंचन करती हैं। इसी दिन रात पाँच कंकरियाँ एकत्रित कर पथवारी की भी पूजा की जाती है। पथवारी पूजने जाते समय व शीतला पूजने जाते समय महिलाएँ समूह में जाती हैं और मंगलगीत गाकर सुख-समृद्धि और दूध-पूत की कामना करती हैं।

विशेष प्रकार के दानेदार एवं चमकदार पत्थरों का ढेर माता शीतला की मूर्ति का प्रतीक होता है। इन पत्थरों को 'डेवटिया' भी कहा जाता है। कहीं-कहीं पीपली, जण्डी और खेजड़ी को भी शीतला के रूप में पूजा जाता है। जब माता के दाने आकरे निकलते हैं तो माता का नमण लगाकर व्याकुलता शान्त की जाती है। माता की मनौती और लच्छा बाँधने से भी दानों में शीतलता आ जाती है। शीतला के पाँच/सात स्वरूपों की कल्पना लोकमान्य है। इनके सामूहिक स्वरूप को 'अछरा माता' कहा जाता है। माता

का वाहन गर्दभ है, जो सहन शक्ति का प्रतीक है तथा उसमें चन्द्रगुण की प्रधानता होने के कारण शीतल स्वभाव का भी प्रतीक माना जाता है। माता के एक हाथ में झाड़ू तथा एक हाथ में कलश कल्पित है। झाड़ू स्वच्छता का प्रतीक तथा कलश सप्तसागरों, सप्ततीर्थों, सप्तद्वीपों का प्रतीक है। कलश में ब्रह्मा-विष्णु-महेश का वास माना जाता है।

माता के दानों का प्रकोप सात प्रकार का होता है। कौमारी - एक दिन का दर्शन, वराही में - सात दिन के दर्शन, ब्राह्मी की भी सौम्य स्थिति मानी गयी है। सबसे अधिक प्रकोप चामुण्डा का होता है। इसके दाने आँखों के भीतर तथा जिह्वा पर उभर आते हैं। वैष्णवी का प्रकोप भी कम होता है। माहेश्वरी का प्रकोप अधिक होता है। वराही भी कुपित होने पर कष्टदायी हो जाती हैं। शीतला माता की पूजा महिलाएँ सबसे प्रथम करती हैं। विवाह के पूर्व भी शीतला पूजी जाती हैं। माता के पूजन के समय तथा रातीजगा में गीत गाये जाते हैं-

### शीतला माता एक बालुड़ो दे

जाचक भरी रे चंगेड़ली वउ तम सिद चाल्या आज  
आज शीतला माता आसन बेठायो मड़ पूजण जोग  
माता म्हारी एक बालुड़ो दे।

एक बालुड़ो रे कारणे म्हारा सुसराजी बोले बोल  
माता म्हारी एक बालुड़ो दे।

एक बालुड़ो के कारणे म्हारा जेठजी बोले बोल  
माता म्हारी एक बालुड़ो दे।

एक बालुड़ो के कारणे म्हारी सासुजी बोले बोल  
माता म्हारी एक बालुड़ो दे।

एक बालुड़ो के कारणे म्हारी जेठाणी बोले बोल  
माता म्हारी एक बालुड़ो दे।

पीपल बाँदूँ पालणो म्हारे आँगण  
रेसम लाम्बी डोर माता म्हारी

हिरता ने फिरता हुलरावती म्हारो हियो रे

हिलोलाँ लेय माता म्हारी एक बालुड़ो दे।  
 एक बालुड़ा रे कारणे म्हारा रायचंद लावे लोड़ी सोक  
 माता म्हारी एक बालुड़ो दे।  
 कंकु भरीरे चंगेड़ली हल्दी भरी पहन चंगेड़ली तम सिद चाल्या आज  
 आज सीतला माता आसन बेठा, यो मड़ पूजण जोग  
 माता म्हारी एक बालुड़ो दे।  
 एक बालुड़ा रे कारणे म्हारो देवर बोले बोल  
 एक बालुड़ा रे कारणे म्हारा सायब लावे लोड़ी सोक  
 माता म्हारी एक बालुड़ो दे।  
 पीपल बाँदूँ पालणो म्हारे आँगण रेसम डोर  
 माता म्हारी एक बालुड़ो दे।  
 हिरता-फिरता हुलरावती म्हारो हियो रे हिलोला लेय  
 माता म्हारी एक बालुड़ो दे।

(परिवार के सदस्यों के नाम से गीत लम्बा हो जाता है।)

### सीतला माता झूलता घर आव

माथा ने भँवर घड़ावजो ए माय  
 टीको रतन जड़ाव सिली सीतला ए माय  
 नरमल बोदरी ए माय सीधवड़ झूलता घर आव  
 सीला बालम सीली गोरड़ी ए माय  
 सीली बालुड़ा री माय सीली सीतला ए माय  
 नरमल बोदरी ए माय सिदवड़ झूलता घर आव ॥ 1 ॥  
 काना ने झाल घड़ावजो ए माय झूमणा रतन जड़ाव,  
 सीली सीतला ए माय नरमल बोदरी ए माय,  
 सिदवड़ झूलता घर आव ॥ 2 ॥  
 हिवड़ा ने हंस घड़ावजो ए माय माला पाट पोवाव  
 सीली सीतला ए माय रनमल

बोदरी ए माय सिदवड़ झूलता घर आव ॥ 3 ॥  
 सीला बालम सीली गोरड़ी ए माय  
 सीली बालुड़ा की माय सीली सीतला ए माय  
 नरमल बोदरी ए माय सिदवड़ झूलता घर आव ॥ 4 ॥

(इसी तरह जेवर के नाम से गीत लम्बा हो जाता है।)

### दशा माता

दशा का अर्थ होता है स्थिति-हालत। घर में दोरम-सोरम। दशा माता घर की दशा सुधार कर सभी दोरम-सोरम दूर करती है। धन समृद्धि देती है। होली के अगले दिन एकम् से दसम् तक का समय माताओं का समय माना जाता है। इसे 'अगता' कहते हैं। इन दिनों खाँड़ना, पीसना, कातना, सीना, बुनना आदि कार्य नहीं किये जाते। कहीं-कहीं साबुन लगाकर नहाना भी वर्जित माना जाता है। कच्चे सूत की 'कूकड़ी' होली में से निकाली जाती है। ज्वाला में जलने से बचाने की सावधानी रखी जाती है। इसे मामा-भाणेज निकालते हैं। इस सूत को हल्दी के रंग में रंगकर बेलें बनायी जाती हैं। एक बेल में दस गाँठें डाली जाती हैं।

दशा माता का थानक पीपली वृक्ष होता है। कंकू, गुलाब, घी-गुड़ से पीपली माता की पूजा की जाती है। वहाँ बैठी बैरागन अथवा ब्राह्मणी 'वेल' देती है। वेल गले में ली जाती है। हल्दी मिले आटे से अनेक आभूषण बनाये जाते हैं एवं उन्हें दशा माता को समर्पित कर खरे सोने के गहने देने की याचना की जाती है। यह माता दरिद्रता दूर करने वाली व सुख-समृद्धि देने वाली माता के रूप में पूज्य है। अनेक पौराणिक तथा अन्य कहानियाँ सुनायी जाती हैं। इन कथाओं में नल-दमयन्ती की कथा, आस माता, दशा माता की कथा। सुलछमी-कुलछमी की कथा। गणपत की कथा तथा अनेक लोककथाएँ प्रमुख होती हैं। इसी समय डाड़ा बावजी भी पूजे जाते हैं। डाड़ा बावजी का बुत होली जलने के अगले दिन किया जाता है। दीवार पर दशा माता का अंकन किया जाता है। कहीं-कहीं नल-दमयन्ती अंकित किये जाते हैं।

गृहणियाँ दशा माता से अन्न-धन, दूध-पूत, पूतों का परिवार, साईंजी का राज, लक्ष्मीजी का वासा, इन्द्र-सा पिता, गंगा-सी माता, गोपा-सी बेन, कृष्ण-सा भाई, गरजते नगाड़े, रींगते पाड़े, हँसते हाथी, घूमते घोड़े, लाडू भरी थाल, बहू का राँधा, बहन-माँ का परोसा, राम-लक्ष्मण का खाँद, सीताजी का चाल चलावा, सागर-सा पीहर, दशरथ-सा ससुरा, कौशल्या-सी सासु, सहोदरा-सी नणद, लछमण-सा देवर, रामचन्द्र-सा भरतार, पाँव में पायल, पहनने को पीताम्बर, ओढ़ने को चीर, जीमने में लड्डू, रहने के लिए झरोखेदार महल माँगकर मानो सुख-समृद्धि के सभी साधन माँग लेती हैं।

*पीपल पूजे पनोती, भर-भर मोत्याँ थाल।  
दुख दोरम ने रंडापो, तीनी दीसाँ टाल ॥*

### पथवारी माता

*वाट वटोइयों की रक्षक माँ, भूल्याँ ने राह वतावे।  
भटक्याँ ने मंजिल तक पोँचावे, पथ की रखवाली अने घणियाणी।*

यह पथवारी माता पथ की जागृत रक्षिका माता है। एक समय था जब यात्राएँ पैदल होती थीं। राह अनजाने और संकटों भरे होते थे। विशेष रूप से तीर्थ यात्री संग लेकर चलते थे। ये तीर्थ यात्री 'संगाती भाई' कहलाते थे। तीर्थ पर विदा करने के दिन से ही 'पथवारी माता' की पूजा प्रारम्भ हो जाती है। आज साधन सहज हैं। चारों तीर्थ की यात्रा भी सहज है। पहले कठिन थी। अधिकतर लोग गंगाजी जाते थे। पितरों का अस्थि विर्सजन करते थे। गंगा का पुण्य स्नान करते थे और वापस लौट आते थे। सारी यात्रा पाँव-पैदल। लुटेरे, ठग, रोग, थकान, वनैले पशुओं का भय। इन सबसे माँ पथवारी रक्षा करती है।

यात्रियों के लौटने के कुछ दिन पूर्व परिवार के लोग जवारे बोते हैं। उन्हें दूध-दही से सींचा जाता है। गंगा माता के गीत गवाये जाते हैं-

*गंगा जी रे गेले वाया जवारा  
किण रखवाली मेलूँ ए मात, जै बोलो।*

पथवारी सभी जातियों की सर्वमान्य लोकमाता है। यह गंगा की प्रतीक माता है। इसका स्थान गाँव के बाहर बना होता है, जहाँ 2 × 4 फीट (चौड़ी × ऊँची) सुन्दर कँगूरेदार क्यारी बनायी जाती है। यही पथवारी कहलाती है। अलग-अलग जातियों की पथवारी अलग-अलग होती है। ये पथवारियाँ अत्यन्त कलात्मक ढंग से पक्की बनायी जाती हैं। सुन्दर रंग पुतवाकर चित्रमय की जाती है।

विवाह आदि अवसरों पर भी इसकी पूजा की जाती है। दशामाता-दियाड़ी के दिन भी पथवारी की पूजा होती है। दशामाता-दियाड़ी की पूजा के लिए पथ से पाँच कंकड़ एकत्र कर उन्हें स्नान करवाकर कंकू लच्छे से सिंगगारा जाकर उनकी पूजा की जाती है। कार्तिक महिने में 'काती हाँपड़वा वारी' तपस्विनी (व्रतधारी) महिलाओं (तपस्विनियों) द्वारा भी इसी प्रकार पथवारी पूजी जाती है। पथवारी पूजा के समय गाये जाने वाले अनेक गीतों में-

*उठो राणी रुकमण, पूजा पथवारी  
पथवारी माता पथ कि धिराणी  
भूल्याँ ने वाट, बिछड़ियाँ ने मेलो  
पथवारी पूज्याँ काँई फल होसी?  
अन्न होसी धन्न होसी, पूताँ को परवार होसी  
दूधाँ को दुवार होसी, साँई जी को राज होसी  
उठो राणी रुकमण पूजो पथवारी ॥ 1 ॥*

*सोना की पथवारी ए माता रूपा का जवारा।  
रूपा का जवारा ए माता हरिया जवारा।  
अणी ने पथवारी ए माता हरिया जवारा।  
हाथ में गंगा जल लोठ्यो काँधे जो कावड़,  
अब घर आया म्हारा तीरथवासी ॥ 2 ॥*

कुछ लोग पथवारी का निर्माण अपने आँगन में ही करवा लेते हैं। उसमें तुलसी बो देते हैं। इससे प्रतिदिन जल सिंचन और दीप-अगरबत्ती से

पूजा होती है। जब गंगा का संग पथवारी धोकने जाता है, तब गीताचार के साथ तीर्थ से लौटे यात्रियों को धोकाने ले जाया जाता है। ढोल-ढमाके, गीताचार से वातावरण आनन्दमय और आह्लादमय हो उठता है।

*पथवारी फूलाँ छई रई।*

*सीस का चीरा सवा लाख का, कानां का मोती सवा लाख का।*

*पोंचा को अदक सरूप गंगा को संग आयो रे पंथवारी।*

*पंथवारी फूलाँ छई रई।*

*चरण चड़ावाँ वो पंथवारी फूलड़ा*

*सीस चड़ावाँ नागर वेल गंगा को संग आयो*

*पंथवारी फूलाँ छई रई।*

*खाँदा की कावड़ वो म्हारी गंगा माता*

*अदवाणी लकड़ीरो अदक सरूप।*

*गंगा को संग आयो वो पंथवारी फूलाँ छई री।*

*पूजापो चड़ावाँ वो पंथवारी माता चोंतरे,*

*चूरमा नारेलाँ को भोग गंगा को संग आयो रे,*

*पंथवारी फूलाँ छई री।*

*संगनी तो चाले उतावला,*

*गंगा माई को मारग खांडा धार रे*

*गंगा को संग आयो, पंथवारी फूला छई री।*

इस प्रकार के अनेक गीत समवेत स्वर में गाती भाव रमती। नाचती-झूमती महिलाएँ तीर्थ यात्रीगणों को पथवारी ले जाती हैं। धोक दिलवाकर पूजन करती हैं। पंथवारी उनके परिजनों को सुरक्षित परिवार में जो लौटा लाई है। सारी पथ की बाधाएँ हारिणी माता पथवारी धन्य है।

### तुलसा माता

तुलसी माता का क्यारा या चौरा घर-घर बनाया जाता है। यह महासती वृन्दा का अवतार मानी जाती है। महाऔषधि के रूप में भी तुलसी आयुर्वेदशास्त्र में मान्य है। इसे पंचमूल औषधियों में बखान कर सबसे

श्रेष्ठतम् स्थान दिया गया है। प्रातः तुलसी स्नान व सिंचन पुण्यदायी माना गया है। संध्या समय तुलसी क्यारे में दीप जलाकर समस्त शुभ की कामना की जाती है। कार्तिक मास में पूरे माह तुलसी की पूजा की जाती है। कुमारिकाएँ व सुहागिनें इस स्नान से वांछित वर की कामना करती हैं। तुलसी के क्यारे में स्वयं विष्णु भगवान शालिग्राम के रूप में विराजित रहते हैं तथा तुलसी (वृन्दा) के साथ पूजे जाते हैं।

कार्तिक सुदी ग्यारस को तुलसी-शालिग्राम का विवाह करवाया जाता है। वर-वधू के समस्त कार्य सम्पन्न करवाये जाते हैं। प्रीतिभोज प्रसाद होता है। गीताचार एवं मंत्रोच्चार के मध्य विवाह सम्पन्न होता है। जिनकी कन्या नहीं हो, वे लोग भी तुलसी को कन्या रूप मानकर उसका विवाह बड़ी धूमधाम से शालिग्राम से रचाते हैं। तुलसी पूजा के समय अनेक गीत गाये जाते हैं।

### हावड़ ( सावल ) माता

सावल का ही लोक रूप है हावड़। सावल अर्थात् हरियाली। इस प्रकार सावल माता का अर्थ हुआ 'हरियाली माता'। इसे अन्नपूर्णा के रूप में भी पूजा जाता है। अन्नपूर्णा की मूर्तियाँ दशपुर अंचल में अनेक स्थानों पर हैं।

बरसात के पश्चात् मक्की पक जाने पर सावल माता की पूजा की जाती है। मूर्ति के रूप में बिना छिलके का सूखा भुट्टा रखा जाता है। वह मक्या की सावल (हावड़) या अन्नपूर्णा का प्रतीक है। ढेर में से सफेद, पीला, बैंगनी एवं लाल दानों वाला मक्या खोजा जाता है। इस माता को चार रंगों वाली माता माना जाता है। मक्का के उस चार रंगे भुट्टे के साथ गणपति थेपे जाते हैं। इस भुट्टे को खलिहान में स्थापित कर पूजा करते हैं। फिर समस्त कर्मियों को तथा बहन-बेटियों, ब्राह्मण-पितरों के नाम से दान निकाला जाता है। दान निकालते समय भाव प्रकट किये जाते हैं। बाद में वह भुट्टा भण्डार में/कोठी में रख दिया जाता है। यह भण्डार को भरे रखता है। माता सावल (हावड़) अन्नपूर्णा की कृपा बनी रहती है। भील समुदाय की यह परम्परा अन्य कृषक वर्ग में भी मानी जाती रही है। अब धीरे-धीरे इसे बिसारा जा

रहा है। किसी न किसी रूप में आज भी यह परम्परा देखने में आती है। भले ही इस परम्परा को उस आस्था से निर्वाहित न किया जा रहा हो, लेकिन उपरोक्त समस्त दान खलिहान से निकाले जाते हैं। मुद्रा के चलन के कारण अन्न का दान कम हो गया है। कृषि माता खेतरमाता की मूर्ति शंखोद्धार तीर्थ पर मिली थी, जिसे भील समुदाय पूरी आस्था से पूजता था। यह स्थान अब गांधीसागर विस्तार में विलीन हो गया है।

### भराड़ी माता

भराड़ी अर्थात् भरी-पूरी। भील समुदाय में भराड़ी माता पूजने की परम्परा है। भील कन्या के विवाह के समय भीत (दीवार) पर भराड़ी माँड़ी जाती है। भराड़ी माता कन्या के गृहस्थ जीवन को भरा-पूरा करने का आशीर्वाद देने वाली लोकमाता है। चावल को पीसकर उस आटे में भांत-भांत के रंग मिलाकर अलग-अलग रंग तैयार किये जाते हैं। हल्दी रंग से मन्दिर का परकोटा, आजू-बाजू चिड़ा-चिड़ी, भराड़ी के शीष पर ध्वजा, कलश, मोर या उड़ती चिड़िया माँड़ी जाती है। छाछ बिलोते, लाड़ा-लाड़ी, उलटे लटके ब्याई-ब्याण, ब्याह करते वर-वधू जैसी चित्रावण भराड़ी के आसपास भीत पर की जाती है।

कन्या का चाक नोतने और गणपत के नीचे फर्श पर महुए की शराब का मटका और चावल रखे जाते हैं। जितने दिन का माडपा होता है, लच्छे में उतनी गाँठें लगाकर लच्छा रखा जाता है। प्रतिदिन कन्या द्वारा एक गाँठ खोली जाती है। लग्न के पहले दिन वहाँ केकड़ी छोड़ी जाती है। वह चावलों पर घूमती है। यदि उसने चावल का पूरा दाना उठाया, तो जोड़ा दीर्घायु वाला, वैवाहिक जीवन सुदीर्घ तथा सफल होगा। यदि खण्डित दाना उठाया तो इसके विपरीत फल। मुकलावे के दिन जँवाई भराड़ी माता को बकरी का बच्चा व चूरमा चढ़ाता है। शराब भी चढ़ाता है। कुछ गोत्रों में बकरी के बच्चे के बदले नारियल, चूरमा और शराब चढ़ती है। शादी के पश्चात् वर-वधू को भराड़ी की शरण में सुलाया जाता है। बाहर औरतें भराड़ी माता से गीतों के माध्यम से वर-वधू के लिए मंगल की कामना करती हैं। भराड़ी पूर्व दिशा

वाली भीत पर बनायी जाती है। इसी भराड़ी को देराड़ी माता कहकर भी भील समुदाय पूजता है। इसमें रंग साम्य और कलात्मकता विशेष रूप से दर्शनीय होती है।

### परी माता

परी माता के थानक गाँव-गाँव में पाये जाते हैं। धीरे-धीरे लोकजीवन से परी माता के थानक अनदेखे होते जा रहे हैं। यह लोकमाता वात रोगों, स्त्रावयिक रोगों, मानसिक रोगों और विशेषकर प्रसूतिवात से उत्पन्न पीड़ा का निवारण करने वाली माता है। इसी कारण यह माता महिलाओं द्वारा विशेष पूज्य माता है। प्रसूतिवात में प्रसूता का मानसिक सन्तुलन बिगड़ जाता है। वैसी स्थिति में परी माता उसकी भी रक्षा करती है तथा उसके शिशु की भी रक्षा करती है। माँ के स्वस्थ होने तक परी माँ शिशु और उसकी माँ की सेवा व सुरक्षा एक कुशल दाई के समान सँभालती है। परी माता के सम्मान में अनेक लोकगीत लोकजीवन में प्रचलित हैं। उनमें से यह गीत दृष्टव्य है-

### राती जोगो सती

म्हारी परीबई ने रमता देख्या सुतार्या का मड़ में  
 म्हारी परीबई ने रमता देख्या कुमार्या का मड़ में  
 थाने बाजोठ्यो घड़ावाँ म्हारी परीबई आसन तो बतई दो  
 थाने कलश मँगावा म्हारी परीबई थानक तो बतई दो  
 थारा आसन की बलिहारी म्हारी परीबई पालनो बंदई दो  
 थारा थानक की बलिहारी म्हारी परीबई बंस बड़ई दो।  
 म्हारी परीबई ने रमता देख्या कंठल्या का मड़ में  
 म्हारी परीबई ने रमता देख्या बजाजी कामड़ में  
 थाने पुजापो मँगावाँ म्हारी परीबई मंदरियो बतई दो  
 थाने सालुड़ा ओड़ावाँ म्हारी परीबई आसन तो बतई दो  
 थारा आसन की बलिहारी म्हारी परीबई पालनियो बंदई दो  
 थारा मंदर की बलिहारी म्हारी परीबई बंस बड़ई दो।

म्हारी परीबई ने रमता देख्या सोनीड़ा का मड़ में  
म्हारी परीबई ने रमता देख्या मालीड़ा का मड़ में  
थाने गेणला घड़ावाँ म्हारी परीबई मंदरीयो बतई दो  
थाने गजरा पेरावाँ म्हारी परीबई आसन तो बतई दो  
थारा आसन की बलिहारी म्हारी परीबई पालनियो बंदई दो  
थारा थानक की बलिहारी म्हारी परीबई बंस बढई दो।

### रातीजोगो परीबाई

परीबई सीसका भमर अदेवण्या परीबई कानां  
झुमणा अदवण्या परीबई टीका को अदक सरुप  
हो परी माता अमर बँदावो म्हारे पालणो  
माता झालज को अदक सरुप वो परी माता  
अमर बँदावो झरणी पालणो  
माता ढोल गोरावो वाँजा वाँजणी माता बाट बुवारे  
बालुड़ा की मायं वो परी माता अमर बँदावो म्हारे पालणो...  
माता पूरन जी आवे थाँकी जातरा  
माता उमेश जी आवे थाँकी जातरा  
माता दिनेश जी आवे थाँकी जातरा  
माता लाड़ी ववु लागे थारे पाँय वो  
परी माता अमर बदावो माता पालणो

अरी परीबाई! सिर का भँवर, कान के झुमके अधबने हैं, पर टीके का स्वरूप अधिक है। अरी परी माता! मेरा पलना सदा के लिए बँधा दो। अरी! सदा आशीर्वाद देने वाली माता बँधा दो पलना। माता ढोल बज रहा है, बाजे बज रहे हैं। बच्चे की माता तुम्हारा मार्ग बुहार रही है। पूरन जी, दिनेश जी तुम्हारी यात्रा में आते हैं। अरी माता! बहू तुम्हारे पैरों पड़ती है। अरी परी माता! अमर पलना बँधवा दो।

### खेजड़ी माता

खेजड़ी वृक्ष शमी अथवा जाँटी या जंडी। यह पेड़ गणपति रूप में भी पूज्य है। इस वृक्ष की काष्ठ से समिधाएँ देना मान्य है। शमी को माता भगवती के रूप में भी पूजा जाता है। कई जगह माता के थानक पर मूर्ति के स्थान पर खेजड़ी या शमी वृक्ष लगाया जाता है। उसे ही माता का स्वरूप मानकर पूजा जाता है। दशहरे के दिन रावण दहन के पश्चात् शमी वृक्ष की पत्तियाँ परस्पर भेंट करने की परम्परा भी प्रचलित है।

विवाह के अवसर पर गाँव की सीमा पार करने से पूर्व खेजड़ी की पूजा की जाती है। ऐसी मान्यता है कि खेजड़ी माता सारे विघ्न दूर कर विवाह समारोह सानन्द सम्पन्न करवायेगी। खेजड़ा भी उसी का रूप है। आश्विन सुदी दसम को शमी वृक्ष एवं शस्त्रों की पूजा की परम्परा आज भी पूर्वानुसार प्रचलित है। अज्ञातवास में पाण्डवों ने अपने अस्त्र-शस्त्र शमी वृक्ष पर सुरक्षित रखे थे। सभी अस्त्र-शस्त्र सर्प रूप में शमी पर निवास करते रहे। इस कारण शमी वृक्ष को नागदेवता का वास स्थान मानकर उसे पूजा जाता है। गोगा, तेजा, केसरिया कुँवर, देवनारायण आदि नागदेवताओं के स्वरूप में शमी या खेजड़ी को पूजा जाता है। उनके थानक पर खेजड़ी अवश्य लगायी जाती है।

एक लोककथा के अनुसार बाछल व काछल दो बहनें थीं। बाछल गुरु गोरखनाथ की सेवा करती थीं। उसे पुत्र प्राप्ति की कामना थी। उसकी हमशक्ल काछल ने धोखे से गुरु गोरखनाथ से पुत्र प्राप्ति का आशीर्वाद ले लिया। जब बाछल आशीर्वाद लेने पहुँची तो गुरु ने दोबारा आशीर्वाद देने में असमर्थता जताई। जब बाछल ने सारी घटना बताई, तब गुरु गोरखनाथ ने शिवजी की सहायता से बासकराज का पुत्र चुराकर उसे दे दिया। बासक पत्नी पद्मण को जब पता चला तो वह पीछे-पीछे दौड़ी। बाछली ने बासक पुत्र को गूगल बनाकर खेजड़ी पर चिपका दिया। पद्मा बाछल की तलाशी लेकर लौट गई। पद्मा के लौट जाने पर जब बाछल ने गूगल उठाना चाहा तो शमी ने मना कर दिया। बाछल ने फिर गुरु गोरखनाथ को पुकारा। गोरखनाथ वहाँ आये, उन्होंने खेजड़ी को वरदान दिया कि 'तुम आज से बड़, पीपल



और पलाश की तरह पूज्य माने जाओगे। तुम्हारी पूजा बासक के रूप में होगी।' तब खेजड़ी ने गूगल बाछल को दे दी। इसी गूगल से गोगा पीर का जन्म होना लोकजीवन में मान्य है।

इस प्रकार खेजड़ी माता की पूजा लोकमान्य हुई। खेजड़ी की एक और विशेषता यह भी है कि यह जेठ-वैशाख में हरिया कर छाया देती है। इसकी पत्तियों से पशुओं का भरण-पोषण होता है। इस प्रकार खेजड़ी/खेजड़ा संकट के समय अभाव को सभाव बनाता है।

### सती माता

सतियाँ उसी प्रकार पूज्य होती हैं, जिस प्रकार अन्य लोकदेवियाँ। वस्तुतः सतियाँ कुलदेवियाँ के रूप में पूज्य होती हैं। अनेक लोकदेवियाँ भी सतियाँ ही हैं। किसी ने अपने सत की रक्षा के लिए अथवा किसी ने किसी अन्य स्त्री के सत के लिए प्राणोत्सर्ग किया। गाँव-गाँव में सतियों के स्तम्भ लगे हुए हैं। वे सब स्तम्भ किसी न किसी कुल/वंश की सती के ही प्रतीक चिह्न हैं। किसी भी कुल का मूल स्थान खोजने के लिए यह ज्ञात करना आवश्यक होता है कि उस कुल की सती तथा भैरव कहाँ है?

विवाह आदि मांगलिक अवसरों पर अपने-अपने कुल की सतीस्थल पर जाकर रातीजगा दिया जाता है। मन्नत-मनौती दी जाती है। जोड़े धोकाये जाते हैं। जड़ूलिये बड़े किये जाते हैं। कभी-कभी परिवार पर आपत्ति आने पर भी सती की पूजा की जाती है। ये सतियाँ कुल की किसी महिला के शरीर में भाव रूप से भी आती है।

सती की पूजा के लिए अनेक गीत गाये जाते हैं। उन गीतों में यह गीत दृष्टव्य है-

### पितराणियाँ

पितराणियाँ भी कुल सतियों के अनुसार कुलदेवियाँ होती हैं। पितर और पितराणियाँ, जिन्हें पूर्वज देवता या पूर्वज देवियाँ भी कहा जाता है। प्रत्येक कुल-वंश की श्रद्धा देवियाँ व देवता होते हैं। पितर-पितराणियों की

सन्तुष्टि के लिए उनकी प्रत्येक मांगलिक कार्य तथा पर्व-त्यौहार पर पूजा की जाती है। उनका रातीजगा दिया जाता है। धूप ध्यान किया जाता है तथा चौतरे पर धूप ध्यान एवं भोजन का भोग लगाया जाता है। यह भोग जाति व वंश के मान से लगता है। कहीं लड्डू-बाटी-चूरमा, तो कहीं जीव बलि (बकरा-मुर्गा) व शराब की धार। ये पितराणियाँ भाव रूप में किसी महिला के शरीर में आकर अपना दुख-सुख कहती है। माँग करती है। परिजनों का दुख निवारण करती है। इनके रिझाने के लिए अनेक गीत गाये जाते हैं। पितरों व पितराणियों के गीत भिन्न-भिन्न होते हैं। यथा-

*बड़ी तो आया जी ल्होड़ी के प्यारा पावणाँ।  
घेवर तलाँ जी बड़ी जी, थाँ ने टोकड़ा।  
पापड़ तलाँ ए पच्चास। आदि।*

पितराणियों को अधिकतर सात्विक भोजन ही लगता है।

### रातीजोगो सती

*वो सती माता माथा ने भँवर घड़ावजो  
वो सती माता कानाँ में झाला घड़ावजो  
वो सती माता टीका की लागी झगा जोत  
वो मोटारी जाई सत वो कर्यो वो भरतार ने  
वो सती माता पूरनमाल जी आवे थाँकी जातरा  
वो सती माता चंपालालजी आवे थाँकी जातरा  
वो सती माता लाड़ी वउ लागे थाँके पाँय  
वो मोटा की जाइ सत वो कर्यो भरतार ने  
वो सती माता हाड़ बळे वो जेसा दिवा बळे  
वो सती माता केस बळे वो हरिया के बाँस  
मोटाकी जाई सत वो कर्यो वो भरतार ने  
वो सती माता हिवड़ा हंस घड़ावजो  
वो सती माता बैयाँ ने बाजूबंद घड़ावजो*

सती माता गजराकी लागी झगा जोत  
 वो मोटाकी जाई सत वो कर्यो भरतार ने  
 सती माता भागीरथ जी आवे थाँकी जातरा  
 वो सती माता मूलचंद जी आवे थाँकी जातरा  
 वो सती माता राजल वउ लागे थारे पाँय  
 वो मोटाकी जाई सत कर्यो भरतार ने  
 वो सती माता हाड़ बळे वो जैसा दिवा बळे  
 केस बळे वो हरीया बाँस  
 वो मोटाकी जाई सत वो कर्यो भरतार ने

अरी! सती के सिर के लिए भँवर बना दो। कान के लिए झाल बनवा देना। टीके की ज्योति झमक रही है। बड़े की बेटी! तुम अपने पति के साथ सती हो गई। आपकी यात्रा में पूरनलालजी व चंपालालजी आते हैं। बहू तुम्हारे पैर लगती है। बड़े घर की बेटी भरतार के लिए सत किया। अरी सती! तुम्हारी हड्डियाँ दीपक के समान जलती हैं। केश ऐसे जलते हैं जैसे (वन के) हरे बाँस (का जंगल)। अरे! बड़े घर की बेटी अपने पति के लिए सती हो गयी। सती माता गले का हंस घड़ाना। भुजाओं के लिए बाजूबन्द घड़ाना। गजरे की ज्योति चमक रही है। आपकी यात्रा में भागीरथजी व मूलचन्दजी आते हैं। अच्छी रसोई करने वाली बहू तुम्हारे पाँव पड़ती है। आप सती हो गयी।

### साजन को डोलो चंदन नीचे उबो

अपनी सती बई ने भँवर सोवे  
 अपनी सबई ने टीको बी सोवे  
 तो झुमणा की लागी झगा जोत हो वीराजी  
 साजन को डोलो चंदन नीचे उबो।  
 चंदन नीचे उबो बगीचा में उबो... चंदन  
 केसरिया से छेटी मती पाड़ो हो वीराजी... साजन...  
 अपनी सती बई ने माला बी सोवे

अपनी सती बई ने हंसज सोवे  
 तो चुनड़ चुड़ला पेरावो हो वीराजी... साजन...  
 तो केसरिया कोर लगावो हो वीराजी... साजन...  
 चंदन नीचे उबो बगीचा में उबो... चंदन...  
 केसरिया से छेटी मती पाड़ो हो वीरा जी... साजन...  
 अपनी सती बई ने गजरा सोवे  
 अपनी सती बई ने बाजूबंद सोवे  
 तो पायल घूघरा लगावो हो वीराजी

(आभूषण के नाम से गीत लम्बा हो जाता है।)

अपनी सती बहिन के सिर पर भँवर सुहाता है। टीका सुहाता है। झुमकी की ज्योति चमक रही है। प्रियतम का डोला चन्दन के नीचे रुका है। बगीचा में खड़ा है। अरे भाई! प्रियवर से मुझे दूर मत करो। माला, हंस अच्छा लगता है सती को। चूनड़ी व चूड़ा पहनाओ। केसरिया कोर लगाओ। गजरे सुहाते हैं। बाजूबन्द सुहाते हैं। पायल में घुँघरू लगाओ। (पर यह सब तैयारी करने में मुझे अपने प्रियतम से दूर मत करो।)

### रातीजोगो पूरवज

पूरबज थाँका सीस का ई चीरा  
 पेचाँ प्यारी लागे ओ म्हारा साँचा पूरबज  
 झूटे झगड़े अड़ी रया  
 पूरबज थाँका बेटा तो सेवारामजी  
 पूरबज थाँका बेटा तो कनय्यालालजी  
 आरती उतारे ओ म्हारा साँचा पूरबज  
 झूटे झगड़े अड़ी रया  
 पूरबज थाँकी बेन्या तो बाई गंगा  
 पूरबज थाँकी तो बेन्या बाई जमना

आरती सँजोवे हो म्हारा साँचा पूरबज  
झूटे झगड़े अड़ी रया  
पूरबज आपका अंग री या अंगी  
पूरबज आपका गला री या कंठी  
चोसर प्यारी लागे हो म्हारा साँचा पूरबज  
झूटे झगड़े अड़ी रया।

(आभूषण के नाम से गीत लम्बा हो जाता है।)

ओ मेरे सच्चे सक्षम पूर्वज! आपके सिर की पगड़ी बाँधने के पेंच के कारण प्यारी लगती है। झूठे ही झगड़े अड़ रहे हैं। ओ पूर्वज! आपके बेटे सेवारामजी, कन्हैयालालजी आपकी आरती उतारते हैं। आपकी कुलवधू सीता और मैना आपका मार्ग बुहारें। ओ पूर्वज! आपकी बहन गंगा और यमुना आरती सँजोती हैं। ओ पूर्वज! आपके शरीर की यह अंगरखी, आपके गले की यह कण्ठी और चोसर बड़े अच्छे लगते हैं। मेरे सच्चे (सक्षम) पूर्वज! झूठे झगड़े में अड़ गये।

### छींक माता

अघट का भय मनुष्य को सदा बना रहता है। इसलिए हम शुभ-अशुभ का विचार करने में सदा सचेत रहते हैं। इसी शुभाशुभ विचार में छींक का भी महत्त्व लोकजीवन में माना जाता है। आगे की छींक, पीछे की छींक, दायें की छींक, बायें की छींक, बाज़ार की छींक, हुँकारे की छींक, नकारे की छींक। लोकजीवन में छींक विचार पर जितनी धारणाएँ प्रचलित हैं - यदि उनका अध्ययन किया जाये तो एक पृथक से 'छींक विचार ग्रन्थ' बन जाये। लोक ने छींक को सन्तुष्ट रखने और सदा शुभकर रहने के लिए उसे भी लोकमाता के रूप में स्वीकार किया है। एक लोकोक्ति है-

छींकत खावे, छींकत पीवै, छींकत रहवे सोय।  
छींकत पर घर परत न जावे, भली कदी ना होय।

कहीं-कहीं महिलाएँ छींक माता की सन्तुष्टि का उपाय के रूप में अपने गले में 'छींक माता की पावड़ी (फूल)' भी पहनती हैं। माघ सुदी सप्तमी को छींक माता की पूजा की जाती है।

'छींक माता भलो विचार। तथा सुभ-सुभ होवे, घर परवार।' 'छींक माता धारजे, आया संकट टारजे' आदि निवेदन करके छींक माता की विनती करती हैं। एक कहावत यह भी है कि 'बाज़ार की छींक और नाता की लुगाई को कई विचार?' ऐसी ही अनेक उक्तियाँ लोक प्रचलित हैं। छींक माता की पूजा के समय गाये जाने वाले गीतों में यह गीत दृष्टव्य है-

### रातीजोगो छींक

हो जी छींक भवानी ने भँवर सोवे, टीका की छब न्यारी  
हो जी छींक भवानी झालज सोवे झुमका की छब न्यारी  
हो जी छींक भवानी को साँचो पड़छो झट जनम्या ने पट छींक्या  
हो जी जुग-जुग जीवो म्हारा छींकण वाला  
झट जनम्या ने पट छींक्या  
हो जी छींक भवानी हंसज सोवे माला की छब न्यारी  
हो जी छींक भवानी चुड़लो सोवे चूनड़ की छब न्यारी  
हो जी छींक भवानी को साँचो पड़छो  
झट जनम्या ने पट छींक्या  
हो जी जुग-जुग जीवो म्हारा छींकण वाला  
झट जनम्या ने पट छींक्या

(आगे जेवर और परिवार के नाम से गीत बढ़ता है।)

### लोकमाता गणगौर

गणगौर मूलतः आदिवासी समाजों का आदि पर्व है। गौराँ लोकजीवन में गवरौँ अथवा गोरजा कही जाती है। गोरजा आदिवासी समुदायों की आस्था देवी हैं। अनेक मिथकथाओं में गोरजा अथवा गौराँ को मातृदेवी या लोकमाता

के रूप में बखाना गया है। आदिवासी समुदायों का सम्बन्ध गौराँ से जन्मभूमि का है। दोनों का मातृ-स्थान गिरिकानन है। इसी कारण समस्त आदिवासी या वनवासी गवराँ के मायके से सम्बन्ध रखने के कारण उसके भाई-भतीजे होकर आत्मीय हैं। गवरी पूजा तथा गवरी पर्व आदिवासी समुदायों का ही विस्तार है। गणगौर, गण और गौर (गौराँ) का संयुक्त योग होते हुए भी गोरजा का ही सम्बोधन है। गौराँ जब गण अर्थात् शिव सहित होती हैं, तब गणगौर कहलाती हैं। जिस प्रकार शिव-गौराँ सहित अर्द्धनारीश्वर कहलाते हैं, उसी प्रकार गौराँ-शिव सहित होने पर गणगौर कहलाती हैं। इसी कारण वनवासी समुदाय अपनी लोकमाता को शिव सहित पूजते हैं। लोक संस्कृति और लोकाचार भी तो यही व्यवस्था देते हैं। बहन को पूजें और बहनों की उपेक्षा करें, तो यह तो उचित नहीं है। मायके वाले बहन से भी अधिक सम्मान बहनों को देते हैं। जँवाई की उपेक्षा करने का कटु और त्रासदायी फल दक्ष प्रजापति को जैसा भोगना पड़ा, वह तो त्रिलोक को ज्ञात है।

शिव स्वयं ही गिरिकानन वासी हैं। गिरि का सम्बन्ध जितना गिरिजा और वनवासियों से है, उतना ही शिव से भी है। यही कारण है कि मालवा-मेवाड़ के लगभग सभी तीर्थ आदिवासी-वनवासी समुदायों के आस्था तीर्थ हैं। वह ओंकारेश्वर हो अथवा बाणेश्वर, गौतमेश्वर हो अथवा तिलस्मेश्वर, शंखोद्धार हो या सुखानन्द, कोटेश्वर हो या केतकेश्वर। इन समस्त शिव तीर्थों पर श्रावण मास में मेले लगते हैं। आदिवासी समुदाय अपने इन आस्था तीर्थों पर आकर भगवान शिव की पूजा अर्चना तथा मिलन समारोह मनाते हैं। आज ये समस्त तीर्थ लोकतीर्थ के रूप में सम्पूज्य हैं। आदिवासियों का वर्चस्व कम होता दिख रहा है। ये मेले बहुआयामी होते थे। इन्हीं मेलों में भगवान शिव की सत्ता साक्षी में पूरे वर्ष के सामाजिक एवं पारिवारिक विवादों का निराकरण किया जाता था। नये सम्पर्क-सम्बन्ध तय होते थे। मेल-मुलाकातें होती थीं। ढोल-ढमाकों, चंग, थाली बजती थी। नाच-गान होता था। मान-मनवारेँ होती थीं। अपने पीहर वालों के उन समस्त जीवन्त प्रसंगों का आयोजन स्वयं गौरजा करवाती थी। गौरजा माता स्वयं वहाँ आती थीं और सबका स्वागत-सत्कार करती थीं। अन्नपूर्णा गौरजा के घर उनके

पीहर वाले आये और आशुतोष शिवशंकर अपनी उदारता का भण्डारा खुला न रखें, यह भला कैसे सम्भव होता? उन दिनों ऐसा लगता था कि प्रत्येक नारी में स्वयं गौरा भाव रूप में विराजित हैं तथा प्रत्येक नर में भगवान शिव विराजमान हैं। बड़ा आनन्द और उल्लासमय वातावरण होता था। धीरे-धीरे आदिवासी जनों की सत्ता समाप्त होती चली गयी और इसी के साथ ही समाप्त होता चला गया इन शिव-गोरजा तीर्थों का रस भीना रंग-बिरंगा आदिवासी पर्वो-तीर्थों और मेलों का आनन्द। सब कुछ अनौपचारिक और उमंग विहीन होता चला गया।

गणगौर शब्द के साथ-साथ गौराँ के स्वामी महादेव या गणदेव का संयोग-सम्बन्ध अभिन्न रूप से जुड़ा है। वस्तुतः गणगौर पूजा में शिव-गौरी की पूजा ही प्रमुख है। यह संयोग उसी प्रकार अभिन्न है, जिस प्रकार राधाकृष्ण, सीताराम, लक्ष्मीनारायण अथवा अन्य युगल देवी-देवगण।

समय एवं संस्कृति की गतिशीलता के कारण आदिवासी और गिरिकाननवासी समुदायों की लोकमाता गणगौर सर्वपूज्य माता हो गई और अलग-अलग अंचलों में एवं वर्गों में अपने-अपने तौर-तरीकों एवं मान्यताओं के आधार पर गणगौर की पूजा की जाने लगी।

फाल्गुन मास भारतीय विक्रम संवत् के मान से वर्ष का अन्तिम मास है और चैत्र अगले वर्ष का प्रथम मास। फाल्गुन उमंग और उल्लास का महिना होता है। अन्नपूर्णा माता किसानों के भण्डार भरेगी, यही आशा सबकी होती है। खेतों में लहलहाती कचपची फसलों की सुगन्ध और किसान के पसीने की महक मिलकर एक मादक वातावरण का सृजन करती है। इसी के कारण लगातार तेरह दिनों तक मदीलापन बना रहता है। गली-गली, मोहल्ले-मोहल्ले, चौराहों-चौपालों पर फाग की मस्ती। नववर्ष के चैत्र मास को उमंग और उल्लास से सराबोर कर देती है। इसी रसभीने वर्ष सम्मिलन में बसन्त बगर उठता है। सारी प्रकृति अंकुराने लगती है। पूरी कायनात बसन्ती मौज में रसरिक्त होकर थिरक उठती है। होलिका दहन के साथ एक वर्ष की विदाई और दूसरे वर्ष का स्वागत लोकसमाज करता है। इसी समारोह का शुभ प्रसंग है गणगौर स्थापना और पूजा। इस प्रकार गणगौर

उमंग और उल्लास का पर्व है। फाल्गुन और चैत्र मास का संधि प्रसंग सर्वत्र उत्साह और आशा का संचार कर देता है। होलिका दहन से चैत्र सुदी तीज तक, बल्कि रामनवमी तक उमंग-उल्लास, हुड़दंग और सात्त्विक वातावरण का विचित्र वातावरण रहता है। इसी अवधि में तेरह दिन होली की उमंग, फिर चैती नवरात्रि का सात्त्विक एवं उल्लासपूर्ण वातावरण और इसी के मध्य गणगौर पर्व। इतना लम्बा और उल्लास-उमंग का कोई भी दूसरा पर्व भारत में नहीं है। यह प्रकृति और पुरुष के मिलन का पर्व है।

गणगौर स्थापना की अनेक परम्पराओं में एक नगरीय परम्परा के अनुसार होली की राख की सात मुठियाँ या पिण्डियाँ बनाकर चैत्र सुदी एकम को स्थापित की जाती हैं। इसी को गणगौर स्थापना कहा जाता है। कहीं-कहीं होली दहन-स्थल से सात कंकर बीनकर भी गणगौर की स्थापना की जाती है। ये पिण्डियाँ शिव और गौरों की प्रतीक होती हैं। जवारे बोये जाते हैं। कहीं-कहीं द्वादश से भी पूजा आरम्भ की जाती है। गणगौर की पूजा कुमारिकाएँ एवं सुहागिनें दोनों ही करती हैं। यह पूजा निरन्तर सोलह दिनों तक चलती रहती है। इन्हीं दिनों किशोरियाँ सेवरे लेकर गीताचार करती हुई बागों में जाती हैं। वहाँ रनुबाई उनके साथ नाचने-खेलने आती हैं। रनुबाई और कोई नहीं, स्वयं गौरों ही हैं। रनुबाई गौरों का लोक प्रचलित लाड़ का नाम है। इसे हम गौरों का बाल रूप मान सकते हैं। इसीलिए तो वह अपनी समवयस्क कन्याओं के साथ बाग में नाचती-खेलती है। रनुबाई उनकी प्रिय सखी है। इसी बाग-रमण को फूल-पत्ती लाना भी कहा जाता है। कुमारिकाएँ छोटे-छोटे कलश हाथ में लेकर गीताचार करती हुई बाग में जाती हैं। वहाँ से फूल-पत्तियाँ संग्रह कर अपने कलश से सजाती हैं। सिर पर चूमरी धारण कर उस पर फूल दस्तों और गज्रों से सजे-सँवरे कलसे रखकर कभी वृत्ताकार, कभी आमने-सामने कतारबद्ध होकर नाचती-गाती हैं। कभी फूँदी-फटाका नृत्य करती हैं। यहीं अदृश्य रूप से गणगौर माता रनुबाई के रूप में उनके साथ 'रमती' है। नाच-गाकर, खेल-कूदकर सब कुमारिकाएँ सेवरे गीत गाती हुई अपने घर लौट आती हैं। सिर पर रंग-बिरंगे कलश धरे, रंग-बिरंगी छोटी-छोटी बालिकाओं की टोलियाँ गीत गाती हैं-

झुक जा रे कन्हैया सेवरो  
नम जा रे कन्हैया सेवरो  
म्हारा दादो सा घड़ायो सेवरो  
म्हारे काको सा घड़ाई चूमरी  
झुक जा रे कन्हैया सेवरो  
नम जा रे कन्हैया सेवरो

गीत गाती हुए जब गली-मोहल्लों से गुजरती हैं, तब ऐसा लगता है कि मानो सभी बगीचों की तितलियाँ मोहल्लों में आ गयी हों। फूल-पाती लाने की उमंग और रनुबाई के साथ बागों में खेलने-नाचने के आनन्द के कारण तो नवपरणी ससुराल नहीं जाना चाहती। वह पिता से कहती है- इस बार तो 'आणा' वापस लौटा दो। इस बार तो उन्मुक्त भाव से गणगौर खेल लेने दो।

दा 'जी अबको आणो तो पाछो फेर दो।  
म्हने खेलण देओ गणगौर।  
दा 'जी म्हने रमवा देओ फूल-पाती सेवरा।  
बागाँ जावाँ फूल-पाती लावाँ।  
संग सेल्य्याँ संग गीतड़ा गावाँ।  
नाचण देओ घुम्मर घेर।  
दा 'जी गावा दो म्हने सेवरा।  
दा 'जी अबको आणो तो पाछो फेर दो।

पिता के बार-बार समझाने पर भी वह नहीं मानती। अपनी हठ नहीं छोड़ती। उसे तो संग-सहेलियों के साथ फूल-पाती लेने और सखी रनुबाई के साथ फूँदी-फटाका, घुम्मर और अनेक नृत्य रमना है। सेवरा गीतों में संगत करना है। वह अपने दा'जी से साफ-साफ मना कर देती है और रनुबाई गणगौर के स्वागत में जुट जाना चाहती है।

मूँ तो आँगणियो लिपाणू, रंगरच माँडवा मँडाणू।  
म्हारे आँगणे पधारे गणगौर।  
नी जाऊँ सासरिये, दा 'जी अबको तो आणो फेर दो।  
म्हने रमवा देओ गणगौर।

वह कैसे चली जाए सासरे? उसे तो गणगौर की सारी तैयारियाँ करनी हैं। अपना आँगन लीपना है, सजाना है। रंग-बिरंगे माँडनों से चितराना है। उसके आँगन में स्वयं गणगौर जो पधारने वाली हैं।

घर में या ओवरी में गणगौर स्थापित की जाती है। गणगौर के प्रतीक रूप में पारम्परिक वेशभूषा से सजी-सँवरी गणगौर की मूर्तियों की स्थापना की जाती है। गणगौर की नियमित पूजा होती है। आँगन में नृत्य-गीताचार के आयोजन होते हैं। इन समारोहों की इतनी तल्लीनता की रात कब अधला जाये, पता ही नहीं चलता। ऐसे ही एक गणगौर समारोह से देर रात घर लौटी लाड़ी बहू को अपने परण्ये की कोपभाजन बनना पड़ता है। लाड़ी बहू सफाई देती है-

*अरे साहिबा, अबोलो क्यों लियो जी?*

*मैं तो खेलणगई जी गणगौर।*

सास-ससुर, जेठ-जेठानी और सबसे ऊपर साहिबा। लाड़ी बहू की सफाई और मासूमियत देखकर 'परण्या' रूठते-रूठते 'मन' जाता है। जब लाड़ी बहू समझ जाती है कि शंकाजन्य क्रोध के बादल छँट गये हैं, तब वह अपने परण्ये को छत पर ले जाती है। ऐसी शीतल चाँदनी तथा एकान्त और कहाँ मिल सकता है। छत पर जाकर वह अपने परण्ये की छाती पर सिर रखकर सम्पूर्ण समर्पण भाव से निहारती है। वह अपने परण्ये से पूरा आश्वासन ले लेना चाहती है कि कल गणगौर खेलने जाने के लिए मना नहीं करेंगे। जब वह पूरी तरह आश्वस्त हो जाती है, तब अत्यन्त सुमधुर भाव से कहती है-

*शुक्र को तारो जो ऊग्यो जो साहिबा*

*जणकी म्हारे टिकली घड़ाव दो चमकण चांनणी।*

*म्हाने रमवा जावा दो जो गणगौर।*

*धुव को तारो जो ऊगी रहयो साहिबा धराउणे*

*म्हारी माँग जड़वा दो जी मोतियाँ लालडी।*

*म्हारे तारा तो टकवा दो झलकण चूनडी।*

*मैं तो रमवा जावाँ जी गणगौर।*

*नोसर हार तो गठवा जो हीरा रतनजी,*  
*नवलख तारणा जड़वाजो आँखाँ करमरे।*

*मैं तो रमवा जावाँ जी गणगौर।*

*चाँद-सूरज तो साहिबा म्हारी रखड़ी जड़वाजो।*

*जड़वाओ जी ऐरे मेरे रोहणी।*

*वासक तो गुंथवाओ वेणी लेहरणी।*

*मैं तो रमवा जावाँ जी गणगौर।*

*साहिबा जी म्हारी नथड़ी जड़वाजो।*

*मणिका वासग नाग की।*

*म्हारी पाजप जड़वाजो चमकण बीजरी।*

*मैं तो रमवा जावाँ जी गणगौर।*

*बीछिया तो साहिबा एसा थे लाजो।*

*मौलाजो तो जेपर का हाट ती।*

*कम्मर कंदोरा साहिबा झणकण झेला।*

*गेहणा तो मोलाजो पूरा चावती।*

*संग सेलियाँ साहिबा आँखाँ करमावे।*

*जस तो बखाणूँ साहिबा आपको।*

*मैं तो खेलन जावाँ जी गणगौर।*

*म्हारा लाखीणा साहिबा।*

*मैं तो रमवा जावाँ जी गणगौर।*

नवपरणी यौवना अपने साहिबा से वह सब कुछ माँग लेती है, जो उसकी किसी भी सखी के पास न तो आज है, न कल और कभी। वह संग-सेलियों में सबसे अलग दिखे। संग-सेलियों की आँखें चौंधिया जायें और वे पूछने लगे- कहाँ से लाई? किसने दिलवाये ऐसे अद्भुत गहने? तब वह अपने परण्ये का यश बखान कर स्वयं को धन्य कर सके।

रमणी की तो एक ही अभिलाषा है कि गणगौर केवल उसके साथ ही रहे। आसमान से तारे तोड़कर लाने वाली उक्ति ऐसी रसीली-सजीली रमणियों की माँग पर ही बनी होगी। बेचारा परण्या साहिबा हतप्रभ हो जाता



है। अपनी परणी की उस अद्भुत अभिलाषा की पूर्ति कैसे करे? वह अपने आनन्द में विघ्न भी नहीं आने देना चाहता। इसलिए वह अपनी परणी से लाड़-लड़ाते हुए उसे आश्वस्त कर देना चाहता है-

*लावाँ जी लावाँ तारा आगास का।*

*सिंणगाराँ जी गौरी थाने पूरा चाव ती।*

*थें तो रमवा जाजो जी गणगौर।*

गौरी अपने परण्ये का आश्वासन पाकर धन्य हो जाती है। वह भाव-विभोर होकर अपने में लीन हो जाती है। उसे गहनों से भी बड़ा आश्वासन मिल गया है- 'थें तो रमवा जाजो जी गणगौर'। इस प्रकार गौरजा का यह मनभावन पर्व स्नेह-सौहार्द्र और संगम की सम्भावनाओं का चहेता पर्व है। कुमारिकाओं को गौर माता मनवांछित 'वर' प्रदान करवाती हैं, तो सुहागनों को सुख-समृद्धियुक्त अटल अहिवात का आशीर्वाद देती हैं।

गणगौर रमते समय जो गीताचार होती है, उसमें गौरी और शिव के अतिरिक्त रमा-रमापति, ब्रह्मा-सरस्वती, शची-इन्द्र तथा रनुबाई-धणियर के गीत भी खूब गाये जाते हैं। धणियर को सूर्य के रूप में माना जाता है। अपनी-अपनी आस्थाओं और लोक विश्वासों के आधार पर लोकमाता गणगौर की पूजा-अर्चना की जाती है।

रनुबाई और धणियर भी गौराँ और गण होकर गणगौर ही हैं। धणियर और कोई नहीं गौराँ का धणी शिव ही है। धणी का लोकभाषा में अर्थ पति ही होता है। रनुबाई तो गौरजाँ का बचपन का रूप है। गौरी जब कन्याओं के साथ रमती हैं तो 'रनुबाई' होती हैं और जब सुहागिनों द्वारा सुहाग-चिह्नों से विभूषित होकर विराजती हैं, तब से गौरी और गण सहित स्थापित होकर गणगौर कहलाती हैं।

गणगौर के रूप अनेक तो नाम भी अनेक। उन्हें चाहे कोई किसी भी रूप में पूजे, वे हैं तो गण सहित गौराँ ही। वे गणगौर हों या रनुधणियर अथवा किसी और रूप नाम वाली लोकदेवी। वे सोरठ देस से आई हों या राजस्थान से। वह निमाड़ से आई हों अथवा मालवा से। वे पूजी जाती हैं तो गणगौर के रूप में ही पूजी जाती हैं। गणगौर भारतीय नारी की संस्कारवान आदर्श हैं। वे

अनिद्य सुन्दरी हैं। वे कन्या हैं। युवती हैं। वृद्धा हैं। वे बेटे-बहू और माँ हैं। वे गौरी हैं। गोरजा हैं। वे रनुबाई हैं। आदिवासी आस्था की मूलदेवी हैं। पंजाब में यही गणगौर 'दाई डबोधर' हो गई हैं। दाई अर्थात् दाती। दाती ही गोरजा हैं। डबोधर-डमरूधर अर्थात् शिव हैं।

राजस्थान में गणगौर रनुबाई 'रूड़ी' अर्थात् सुन्दर हैं, तो निमाड़ में अतिसुन्दर। मालवा में तो वे अनुपम हैं। गोरजाँ गुजरात और सौराष्ट्र में अद्भुत। अनिर्वचनीय सौन्दर्य देवी। उन्हें बखानना शब्द शक्तियों के परे है। इसीलिए लोक कवि कहता है- 'थारो कई-कई रूप बखाणू रनुबाई?' तब वह भावुक होकर कह उठता है- 'थारो रूप तो अपर-अपार ओ रनुबाई।'

भले ही भिन्न-भिन्न अंचलों में गणगौर को विभिन्न रूपों में बखाना जाता हो। भले ही भिन्न-भिन्न समुदाय उन्हें भिन्न-भिन्न तरह से पूजते हैं, किन्तु गणगौर तो लोकमाता है तथा सबको सुख-समृद्धि और सुमंगल का आशीर्वाद देती हैं। इसमें कहीं भी मतभेद नहीं है।

चैत्र सुदी तीज को बड़ी धूमधाम से मिट्टी से बनी गणगौर की मूर्तियों को समस्त सुहाग शृंगारों से सजाकर समारोहपूर्वक निकट के जलाशय तक ले जाया जाता है और बहुत ही भारी मन से 'सिरा' दिया जाता है। जलाशय में सिराने या ठण्डा करने की परम्परा ठीक वैसी ही है, जैसी अनन्त चतुर्दशी पर गणपति की प्रतिमाओं को सिराने की होती है। जिस प्रकार दशामाता परिवारों की कुदशा को सुदशा में बदलकर सुख-समृद्धि और सुमंगल प्रदान करती हैं। जिस प्रकार हरतालिका माता सुख-सौभाग्य तथा हरे-भरे परिवार का आशीर्वाद प्रदान करती है, उसी प्रकार गोरजा माता भी गणगौर के रूप में पूजित होकर समस्त मनोकामनाओं को पूर्ण करती हैं।

मालवा में विशेष रूप से आदिवासी और बणजारा समुदाय आज भी अपनी आदि परम्परा के अनुसार ही अपनी राजल पामणी गौरजाँ या गवरी माई का स्वागत-सत्कार पूरे आस्था भाव से करते चले जा रहे हैं। रजवाड़ों और ठिकानों पर गणगौर की स्थापना वहाँ के राजा और ज़ागीरदारों द्वारा की जाती थी। आगे चलकर गणगौर स्थापना रजवाड़ों के लिए प्रतिष्ठा का प्रसंग बन गयी। गणगौर लूटने के किस्से इतिहास और लोककथाओं में आज भी

दर्ज हैं। रजवाड़ों में भले ही गणगौर स्थापना की परम्परा खण्डित हुई हो, किन्तु लोकजीवन में तो लोकमाता गणगौर आज भी पारम्परिक आस्था और उमंग-उल्लास के साथ सम्पूज्य हैं।

आज भी लोक आस्था की लोकदेवी गणगौर पूरे श्रद्धा भाव से पूज्य हैं। आज भी उनका अपर-अपार सुमंगल स्वरूप कुमारिकाओं और सुहागिनों के लिए शुभदायी और सौभाग्यदायी है। आज भी हमारी आस्था देवी गणगौर, हमारी रनुबाई, हमारी लोकमाता, हमारी सखी-सहेली की तरह हमारे परिवार में 'पामणी' बनकर पधारती हैं तथा लोक सखी संझा की तरह परिवारों में सुख-सौभाग्य का आशीर्वाद देकर विदा हो जाती हैं। गणगौर माता के प्रति आस्था का यह भाव पुरातन और चिरातन है। यही भाव सदा-सदा नित नवीन भाव से सदा बना रहेगा। नयी उमंग और उल्लास आस्था के साथ गणगौर तीज का सौभाग्य पर्व मनाया जाता रहेगा।

### अहोई माता

अहोई संतान की देने वाली लोकदेवी है। नवरात्रों में जब नव दुर्गाओं की पूजा लोक में हो चुकी होती है, उसके पश्चात् कार्तिक चौथ के दिन सुहाग रक्षा का 'करवा चौथ' व्रत किया जाता है। कार्तिक की अष्टमी को अर्थात् चौथे दिन अहोई माता पूजी जाती हैं। अलग-अलग स्थान और अंचल में इसी पूजा का विधान अलग-अलग है। अलग-अलग पूजा विधान होने के बावजूद भी यह माता सर्वत्र एक रूप में ही मान्य है। वह है संतान की दात्री और संतान की रक्षक माँ। अहोई का अर्थ ही है- 'अहोनी को होनी बनाने वाली माता'।

अष्ट कोष्ठक वाली पुतली में रंग भरे जाते हैं। अहोई माता का चित्र घर की दीवार पर बनाया जाता है। अष्ट कोणी पुतली के भीतर सात भाई तथा सात बहनें बनायी जाती हैं। पुतली के दो कोनों पर कैलाश, सूर्य-चन्द्र, मध्य में बढ़ते-घटते क्रम से सात, पाँच, तीन और एक वर्ग, आखिरी वर्ग पर पुतली और छत्र। पुतली के दाहिने भाग में पंखा, आभूषण श्रृंगार सामग्री, काँच, कंधा, कंकु की डिबियाँ, समग्र सुहाग सामग्री, बायीं ओर खजूर

अथवा केला, चाँद-तारा, गंगा झारी से जल सींचती सुहागिन, सीढ़ी, चौपड़ सातिया, नीचे की ओर मालिन, चाक पर बर्तन बनाते कुम्हार-कुम्हारिन, सात कर्वे, कलम-दवात, सात तोते, मोर, शेर, हाथी, पलंग आदि बनाये जाते हैं। बच्चों के खिलौने भी बनाये जाते हैं।

इतनी साज-सज्जा के साथ होती है अहोई माता की चित्रावण। पूजा के समय पृथ्वी को गौ-गोबर से लीपकर उस पर जल का लोटा रखा जाता है। चाँदी की अहोई पेडल में पिरोकर उसमें चाँदी के दो मोती भी डाले जाते हैं। पूजकर वह पेडल गले में धारण किया जाता है। अहोई की कहानी सुनी जाती है। हलुवा बनाकर अहोई को भोग लगाया जाता है। दीप-धूप से आरती उतारकर माता को नमन कर उसकी कृपाओं के प्रति आभार माना जाता है। यह पाट/पूजा सुहागिनें करती हैं। पंजाब में एक कमरे में किसी कन्या को अहोई मानकर बिठाया जाता है। बाहर से अहोई को आवाज़ लगाकर उसे पुकारा जाता है। उसका सार यों है-

'होई!' बाहर से महिला बोलती है।

'जी होई।' भीतर से अहोई बोलती है।

'ले अपना टिकड़ा और डोई।'

'मैंने दिया तुझे दूध-पूत। ला मेरा टिकड़ा और डोई।'

इस प्रकार सभी महिलाएँ पूजती हैं और भोजन परोसती हैं। बाद में सारी टिकियाँ और दूसरा प्रसाद कन्याओं को बाँटा जाता है। अहोई माता पूरे उत्तर भारत और ठेठ लेंहदी (पंजाब) क्षेत्र तक पूजी जाती है।

अहोई माता को पुत्रदायी (संतान दाती) देवी के रूप में पूजा जाता है। इस क्षेत्र में लगभग सभी गाँवों में अलग-अलग नामों से इस माता को पूजते हैं। पंजाब में इसे होई माता कहा जाता है। इसके थापे भी सब जगह अलग-अलग होते हैं। सूर्य-चन्द्र तो सभी थापों में माँड़े जाते हैं। इसमें आठ कोष्ठक वाली एक पुतली, स्याहू, सात पुत्र, कुम्हारिन, चन्द्रमा को अर्घ्य देती महिला माँड़ी जाती है। किसी-किसी थापे में गाय-बछड़ा तथा अहोई माता का कंधा भी थापा जाता है। थापे के नीचे गोहली देकर कलश स्थापित किया जाता है। पुराणों में इसे 'अशोकाष्टमी' कहा गया है। इसका सबसे पहला

थापा निम्नानुसार है, डॉ. महेन्द्र भानावत, उदयपुर ने अपने ग्रन्थ 'राजस्थान के थापे' में इसका उल्लेख किया है -

एक लोककथा के अनुसार एक महिला घर में लीपने के लिए तालाब से मिट्टी खोदने गई। मिट्टी खोदते समय उसकी कुदाल से स्याहू के बच्चों में से एक बच्चा मर गया। उस महिला के सात पुत्र थे। स्याही के रुदन से जो हाथ निकली, उसके फलस्वरूप उस महिला के सातों पुत्र मर गये। एक-एक कर मरते बच्चों का दुःख वह बर्दाश्त नहीं कर सकी और मरणासन्न हो गई। विक्षिप्त भी हो गई। एक वृद्धा ने उसे कहा कि तुम भगवती अहोई की मूर्ति बनाओ। उसके चारों ओर स्याहू तथा बच्चों के चित्र बनाओ, व्रत-पूजा से उसे प्रसन्न करो। अहोई पुत्रदात्री है। वह तुम्हें सात पुत्र लौटा देगी। महिला ने यही किया। अहोई प्रसन्न हुई। उन्होंने उस महिला को एक-एक कर सात पुत्र दिये। माँ पुत्रवती हुई और प्रतिवर्ष अहोई माता की पूजा करने लगी। कथा के अन्त में कहा कि- 'हे भगवती देवी! जैसा दुःख तूने उस औरत को दिया, वैसा किसी को मत देना और बाद में टूटमान होकर जैसा सुख उसे दिया, वैसा सबको देना।'

### मंछा माता

मंछा माता ही साहित्य में मंसा माता के नाम से सर्वज्ञात है। साहित्य में भले ही इसे मंसा कहा जाता हो, किन्तु लोक मानस में तो यह मंछा माता कहलाती है। इस माता के अन्य अनेक नामों में नागमाता, सुरसा, मैन्शिल और मनसा देवी भी ख्यात हैं। (देखें, हिन्दी शब्द सागर, पंचम भाग, पृ.-2565; नालन्दा विश्व शब्दकोश, पृ.-684; अमर कोश, पृ.-274 एवं भारतीय संस्कृति कोश, खण्ड-17, पृ.-729)।

मंछा नाग माता है। यह विषहरा या विषहारिणी माता के रूप में पूज्य है। पौराणिक आधार पर इसे महादेव की पुत्री स्वीकारा गया है। इसी कारण अनेक शिव मन्दिर 'मंसापूर्ण महादेव' नाम से स्थापित हैं। मंसापूर्ण हनुमान के मन्दिर भी स्थापित हैं। इसका भी कारण हनुमान का शिव अवतारी होना है। श्री रांगेय राघव ने अपने 'अँधेरा रास्ता' पृ.-939 में मनसा देवी नागमाता

का उल्लेख किया है। वे लिखते हैं कि- 'वैराट प्रजा रसोई में नागमाता तथा आठ नागों की पूजा करते थे'। इस प्रकार 'नागिनी की कन्या' कहानी में श्री ताराचन्द वंछोपाध्याय ने मनसा देवी के सन्दर्भ में विस्तृत वर्णन किया है। इसका आसन अजगर है। कहीं-कहीं कमल भी इसका आसान दिखाया गया है। पटियाला में मंसा माता का एक भव्य मन्दिर है। यह माता पटियाला राजवंश की कुलदेवी मानी जाती है। मंछा (मंसा) देवी सर्वांग नागों के गहनों से विभूषित दिखती है।

लोक मान्यता के अनुसार मंछा माता की पूजा करने से सर्प भय से मुक्ति मिलती है। इस माता की आन से सर्पदंश से रक्षा होती है। घर में सदा खुशहाली रहती है। गायों की रक्षा होती है व उनके दूध में वृद्धि होती है। इस माता के पृथक से मन्दिर इस क्षेत्र में कहीं नहीं मिलते। भगवान शिव के साथ ही मंसा या मंछा माता की पूजा होती है। प्रत्येक रविवार को मंछा माता को धूप-ध्यान करने का भी चलन है। इसे आनन्दी देवी अर्थात् आनन्द देने वाली देवी माना जाता है। मंछा माता के अनेक गीत लोकजीवन में प्रचलित हैं। यहाँ मंछा माता का एक लोकगीत दिया जा रहा है-

### रातीजोगो मंछा माता

मंछा देवी का घोड़िला जद काँकड़ आया  
मंछा देवी का घोड़िया गोया में आया  
तो काँकड़ करसाण्या लुभाणा वो आनन्दी देवी  
जावा नी दउँगा, जवा नी दउँगा आड़ी ऊबी रउँगा  
तो पकड़ी पोचों ने पड़छो लउँगा आनन्दी देवी जावा नी दउँगा  
पाना में राखूँ वो माता फूलाँ में राखूँ तो अंतर में राखूँ  
झबझोल वो आनन्दी देवी जावा नी दउँगा  
मंछा देवी का घोड़िला सेर्या में आया  
मंछा देवी का घोड़िला आँगणा आया  
तो सेर्या में सहेल्या लुभाणी वो आनन्दी देवी जावा नी दउँगा  
तो पनघट पणीयारण लुभाणी वो जावा नी दउँगा

माता आड़ी उबी रउँगा तो पोचों पकड़ी ने पड़छो लउँ वो  
आनंदी देवी जावा नी दउँगा  
पानाँ में राखूँ वो माता फूलाँ में राखूँ तो अन्तर में राखूँ  
झबझोल वो आनंदी देवी जावा नी दउँगा।

### डेड़की माता

‘भारत देश महान’ यह उद्घोष जिसने भी दिया, वह स्वयं में ही महान रहा होगा। भारत ने प्रकृति को पूजा। पीपल, बड़, आँवला, आम, खेजड़ा-खेजड़ी लगभग सभी पेड़ किसी न किसी स्तर पर पूज्य हैं। मालवा-मेवाड़ के बंजारा समाज के प्रत्येक गोत्र का एक पेड़ भी पितरों की तरह पूज्य होता है। सम्बन्धित गोत्र अपने पूज्य प्रतीक पेड़ पर कुल्हाड़ी नहीं चलाता। उसे जलाता भी नहीं। दाह संस्कार में भी गोत्र पेड़ की लकड़ी वर्जित मानी जाती है। थलचर, जलचर सबकी पूजा हम करते हैं। हमारे तो अवतार ही ऐसे कई हैं। ऐसे विचित्र देश में मेंढक (डेड़की) की पूजा यदि होती है, तो इसमें क्या आश्चर्य? डेड़की को जल का आह्वान करने वाला जीव माना जाता है। यह टर्रा-टर्रा कर बादलों को बुलाती है।

आर्द्रा नक्षत्र में बादलों का आवागमन और गर्जन प्रारम्भ हो जाता है। ऐसे अवसर पर मोर भी आनन्द विभोर होकर नाच उठता है, तो डेड़की भी टर्रा-टर्रा कर बादलों का स्वागत करती है। बालक-बालिकाएँ भी नाच-नाचकर, झूम-झूमकर घोष करने लगते हैं- ‘पाणी बाबा पाणी दे, पाणी दे गुड़धानी दे’ और ‘पाणी बाबा आजे, ककड़ी भुट्टा लाजे’। परन्तु जब इतने उत्साह के बावजूद भी इन्द्रदेवता जल नहीं बरसाते, तब याद आती है- डेड़की माता। बालक-बालिकाएँ, ताल-सरोवर-नदी-घाट पर जाकर ‘डेड़की माता’ की गुँजार करते हैं-

डेंडक माता पाणी ला।  
घोबो-घोबो धान गला।  
खाराँ नाराँ पूर चला।  
नेवरिया भरपूर चला।

डेंडक माता पाणी ला।  
डेंडक माता पाणी दे।  
पाणी की परवाल दे।  
म्हारा माता को वाड़ सूखे, आड़ सूखे।  
गद्दो भूके, गदरी भूके भों-भों भट्  
डेंडक माता पाणी दे।

सब बच्चे टीन के डिब्बे अथवा खपरैल को किसी लड़की या लड़के के सिर पर रखकर उस पर मिट्टी-गोबर का पिण्ड (लौंदा) रखकर उसमें नीम की हरी टहनी रोप देते हैं। फिर घर-घर, द्वार-द्वार जाकर टोली बनाकर यह गीत गाते हैं। डेड़क माता बालकों की पुकार सुनकर इन्द्रदेवता को पुकार लगाती हैं। ‘इन्द्र देवता’ डेड़की माता की पुकार सुनकर प्रसन्न होते हैं और वर्षा करते हैं।

### इयाँ माता

यह वनदेवी के रूप में पूज्य है। विशेष रूप से इसे भील समुदाय पूजता है। इस लोकमाता का स्थान बाँस में होता है। इसे दस वर्ष की बालिका के रूप में पूजा जाता है। यह भूलों को राह दिखाती है। वन में हिंसक पशुओं से राहगीरों की रक्षा करती है। प्यास लगने पर जल सरोवर तक पहुँचाती है। अनेक बार स्वयं मटकी भरकर ठण्डा पानी पिलाने आती है। मान्यता है कि जिस वर्ष बाँसों में फूल आते हैं। उस वर्ष प्राकृतिक प्रकोप होते हैं। अतिवृष्टि, भूकम्प, तूफान, अकाल जैसी प्राकृतिक आपदाओं के अतिरिक्त रोग-शोक का साल होता है। बाँसों की रगड़ से वन में आग लग जाती है। मरी अर्थात् महामारी फैल जाती है। यह ‘इयाँ लोकमाता’ इन सब आपदाओं से रक्षा करती है और सुख-शान्ति देती है।

### शाकंबरी

महामाया गोरजाँ का एक स्वरूप। तांत्रिकों द्वारा विशेष रूप से पूज्य लोकदेवी।

### फुरकी माता

अंग में शुभ-अशुभ या शकुन विचार को सिद्ध करने वाली माता। अंगों के स्फुरन से शकुन विचार की विद्या पारम्परिक रूप से प्रचलित है। फुरकी माता इसी विद्या की लोकदेवी है।

### तरतरी माता

त्रिपुर सुन्दरी का लोक प्रचलित नाम। यह तांत्रिकों की तथा गुप्त विद्या की लोकमाता है। जादू-टोना, टोटका, मूठ आदि की सिद्धि इसी माता को साधकर करते हैं।

### इडाणा माता

इस लोकमाता का स्वरूप दराँती का है। जिस प्रकार वीर पुरुष युद्ध में जाने से पूर्व अथवा पर्व-त्यौहार पर तलवार की पूजा करते हैं, उसी प्रकार कृषक दराँती की। इसी लोकमाता को इडाणी भी कहा जाता है। इसके थानक भी हैं। पत्थर पर अंकोरी दराँती के पत्थर की जगह मिल जाते हैं। ईडाणी झालरदार चूमरी को भी कहा जाता है, किन्तु वह इस अर्थ में नहीं है।

### वराई माता

वराई माता अर्थात् वर्षा देवी। इस देवी को धन-धान्य की देवी माना जाता है। वर्षा के सुकाल की धाती-विधाती देवी है। इसकी पूजा लगते आषाढ़ में की जाती है। पूजा की परम्परा भिन्न-भिन्न समुदायों की प्रथानुसार है। विशेष रूप से भील समुदाय इस देवी को पूजता है। भील समुदाय बलि और दारू धार से वराई माता की पूजा करता है। इसका विशेष प्रभाव संवत् 1856 के महाकाल के समय प्रकटाया। इस देवी के थानक के निकट मामादेव का थानक भी होता है। दोनों की एक साथ व एक समान पूजा होती है। सात्त्विक पूजा चूरमा बाटी के धूप-ध्यान से होती है।

### रोड़ी माता

कृषि प्रधान देश में रोड़ी (घूरे) का महत्त्व बहुत माना जाता है। रोड़ी अर्थात् पशु गोबर खाद का थानक। यहीं यह माता पूजी जाती है। विवाह से पूर्व रोड़ी पूजना अनिवार्य होता है। इसे कृषि वृद्धि और खुशहाली की देवी माना जाता है। रोड़ी पूजने के अनेक गीत हैं—

*अणी रोड़ी ने पूजताँ म्हाने मल्यो तुतड़ला की जोड़।*

*अणी रोड़ी ने पूजताँ म्हाने लादो बडुवा झूमको।*

*अणी रोड़ी ने पूजताँ म्हाने मल्यो धीवाड़िया री जोड़।*

*अणी रोड़ी ने पूजताँ म्हाने लादो जमाइयाँ रो झूमको।*

इस प्रकार पारिवारिक सुख-समृद्धि और खुशहाली की दाती रोड़ी माता सर्वत्र सम्पूज्य है। उर्वरता प्रदान करने वाली देवी की सात्त्विक पूजा होती है।

### कल्लाजी

जोधपुर के राठौड़ वंशधर कल्लाजी का मूल नाम केसरसिंह राठौड़ था। चित्तौड़ के एक (अकबर) युद्ध में वीरगति को प्राप्त हुए। इन्हें देवी का इष्ट था। ये वीर कल्लाजी के नाम से मालवा-मेवाड़ में पूज्य हैं। देवी के वरदान से इन्हें पाँच फण, दो आँख, दो नाक एवं एक मुँह प्रदान हुआ। ये बिना सिर के भी युद्ध करते रहे थे। देवी ने इन्हें नया शीष उपरोक्त प्रकार से दिया। इन्हें संतानदाता, भूत भयहरण करने वाले तथा लकवा आदि रोगों को ठीक करने वाले देवता के रूप में पूजते हैं। इनका भाव भी आता है।

### सगस

सगस एक प्रकार का भैरव स्वरूप देवता है। यह बहुत आकरा देव होता है। तलवारधारी इस देवता की पूजा गाँजा, तम्बाकू और दारू से होती है। यह देवता युद्ध में वीरगति प्राप्त करने वाली जुझारू आत्मा होती है।

## मामादेव

यह भूमिपाल देवता है। देवी के निकट इसका थानक होता है। प्रत्येक माह की कृष्ण पक्ष की छठ या चौथ, इसकी पूजा तिथियाँ हैं। इन्हें मिठाई, अमल, चूरमा-बाटी, कच्चा दूध, भूँगड़े तथा दारू पसन्द है।

## केसरिया कुँवर

गोगाजी के सुपुत्र थे। इनका निवास शमी वृक्ष के नीचे होता है। भील समुदाय इन्हें पाबू, तेजा, गोगा, देवनारायण की तरह अपना लोकदेवता मानकर पूजता है। भील समुदाय में इन्हें बहुत माना जाता है। जैन समुदाय के चौबीस तीर्थंकर, जिनका मन्दिर उदयपुर से उनतालीस किलोमीटर दक्षिण में स्थित है, वे भी केसरियाजी या केसरिया कुँवर कहलाते हैं। उनका अभिषेक केसर से होता है। भील समुदाय इन्हें 'कालाजी' नाम से पूजता है।

## लज्जा गौरी

लज्जा गौरी नाम देवी भगवती गौरों के लिए भले ही विचित्र लगे, किन्तु इस नाम का महत्त्व लोकजीवन में बहुत है। देवी सम्बन्धी प्रतिष्ठित ग्रन्थों में यह नाम कहीं भी नहीं आता। यह लोकमाता है। ठीक वैसी ही अवस्था जैसा रतिकाल में स्त्रियों की होती है। कहीं ऊकडू (उत्तान पाद) नग्न रूपा घुटने मोड़कर तथा घुटनों को फैलाकर योनी भाग को विशेष रूप से उभारा गया है। कहीं-कहीं यह केवल नाभि तक की मूर्ति रूप में है तथा कहीं-कहीं स्कन्ध तक। जो मूर्तियाँ कन्धे तक हैं, उनके स्तनों को भी विशेष रूप से उभारा गया है। ऐसी मूर्तियों की बाँहें इस प्रकार फैली हुई दिखायी गयी हैं, मानो अपने साथ संभोगरत नर को आलिंगनबद्ध करना चाहती हों, अथवा संभोग हेतु आमंत्रण दे रही हों। यह माता मस्तकविहीन होती है। कुछ लोग ऐसा मानते हैं कि यह मूर्ति खण्डित की गयी है, जबकि लज्जा गौरी की मूर्ति का शिल्प ही ऐसा है। कुछ लोगों ने इस देवी को उत्तान पद देखकर वेदों में वर्णित विश्वमाता अदिति का अनुमान भी लगाया है। यह

लज्जा गौरी सृजन क्रिया से सम्बद्ध प्रतीक रूपा सृष्टि माता है। यह देवी संतान दात्री मानी जाती है। स्त्रियाँ देवी की योनी तथा स्तन पर मक्खन एवं सिन्दूर लगाकर इसकी पूजा करती हैं। कहीं-कहीं स्त्रियाँ अपनी योनी इस मूर्ति से छुआकर कोख को फलवती करने का टोटका भी करती हैं। यही परम्परा लोकजीवन में 'इलाजी' के नग्न कृत्रिम लिंग को अपनी योनी से छुआकर निपूता स्त्रियाँ अपनी कोख को सृजनशील एवं फलवती होने का टोटका भी करती हैं। यह संतान देने वाली और संतान की रक्षा करने वाली, निपूतियों को सपूती बनाने वाली लोकमाता है। गौरी नाम से शिव पत्नी गौरी का आभास सहज ही हो जाता है। लोकजीवन में इसे 'लंजिका' कहा जाता है। लंजिका का अर्थ नग्न अथवा निर्लज्जा होता है। लज्जा, लंजिका और लज्जा गौरी नाम की यह लोकमाता कुमारी मानी जाती है। इस कारण इसे गौरी रूप से पूजा जाता है। यह जगत जननी, जगत माता गौरजाँ है। लज्जा गौरी के लिए अनेक दंतकथाएँ पूरे देश में प्रचलित हैं।

मन्दसौर जिले (दशपुर जनपद) में ऐसी कई प्रतिमाएँ हैं। जीरन की नग्न मूर्ति, जिसे 'स्खलित वासना' कहा गया है, वस्तुतः लज्जा गौरी ही है। लघु पत्थरों पर उत्कीर्ण शीर्षविहीन मूर्तियाँ पूरे दशपुर में उपेक्षित पड़ी हैं। उन्हें खण्डित मानकर उसकी पूजा नहीं की जाती। ऐसी ही मूर्ति विष्णु वाकणकर भारतीय कला मन्दिर, उज्जैन में भी सुरक्षित है। यह मूर्ति दशपुर जनपद (मन्दसौर) से प्राप्त की गई है।

## मातंगी माता

मातंगी भी लोकमाता के रूप में ही पूज्य है। इस लोकमाता के अनेक नाम हैं। इसे कर्नाटक में मातंग या मादिग जाति की आस्था देवी माना जाता है। इसी को 'लक्ष्मी अम्मा' या 'मरिअम्मा' भी कहा जाता है। यह देवी भू-देवी के नाम से भी पूज्य है। महाराष्ट्र में इसी लोकमाता को 'माय रानी' भी कहा जाता है। इसकी पूजा आदिवासी समुदाय विशेष रूप से करता है। यह महामारी की देवी है। मालवा में मातंगी या मरी माता अथवा कौड़ी माय रानी की पूजा का प्रचलन मालवा पर महाराष्ट्रियन राजाओं के



प्रभाव के कारण हुआ। मरी माता का उल्लेख पृथक से भी किया गया है।

कर्नाटक में मातंगी एक जीवित ग्राम कन्या होती है। उसका चुनाव माता मातंगी की आज्ञा से होता है। माता भाव रूप से ग्रामीण को अपनी प्रतिनिधि देवी चुनने की प्रेरणा देती है। पूरे क्षेत्र के ग्रामवासियों के समक्ष ग्राम की समस्त कुमारिकाओं को एकत्र किया जाता है तथा उनमें से जिसे माता का भाव आ जाता है, वह 'मातंगी' मानी जाती है। मुख्य गाँव में एक देववृक्ष या वृक्षदेवता होता है। उस वृक्ष से उस कन्या का विवाह रचाया जाता है। सात फेरों के पश्चात् वह देवकन्या अपनी नग्न योनी उस वृक्ष पति से छुआकर उस वृक्ष से ही संभोग करवाती है। इस प्रकार वह ग्रामदेवता की ब्याहता, किन्तु कुमारी मानी जाती है। इसके पश्चात् वह स्वेच्छापूर्वक चाहे जिस पुरुष से संभोग आह्वान कर सकती है। उसकी इच्छा तृप्ति सबका कर्तव्य होता है। इसके विपरीत कोई भी पुरुष उसे संभोग के लिए नहीं कह सकता। ऐसा आह्वान पाप होता है।

सम्भवतः स्वेच्छाचारिणी होने के कारण भी उसे 'मातंगी' कहा गया है। यही मातंगी कन्या हमारे यहाँ देवदासी, जोगिन अथवा भगतन के समान ही होती है, किन्तु मातंगी गौरी या मातंगी कन्या का आदर किया जाता है। उसका देह भाग उसकी काम याचना के बिना वर्जित एवं पाप कर्म माना जाता है। मातंगी ग्राम क्षेत्र में पूज्य होती है। उससे आशीर्वाद तथा शकुन लिये जाते हैं। मातंगी माता वर्षा की देवी होती है। उसे धरती का प्रतीक भी माना जाता है। दुष्काल एवं महामारी को दूर करने वाली यही देवी मालवा में 'मरी माता' रूप में पूज्य है, किन्तु यहाँ किसी कन्या को प्रतिनिधि बनाने की प्रथा नहीं है। मरी माता के स्थान मालवा में बहुत हैं। इन्दौर तथा अन्य महानगरों में भी मरी माता के मन्दिर हैं। अनेक गाँवों में मरी माता के चबूतरे हैं। दशपुर जनपद में जावद में मरी माता का चबूतरा है।

### कौड़ी माता

कौड़ी को योनी रूप में पूजा जाता है। कौड़ियों को धारण करना आदिवासी समुदाय के लिए शुभ माना जाता है। एक आदिवासी लोकगीत

का आशय इस प्रकार है- 'कौड़ी की माला से हल्दी निकाली। अपराधी के शरीर पर फेंकी। अपराधी की देह जलने लगी'। कौड़ी के योनी सादृश्य आकार के कारण देवी उपासना में इसका बहुत महत्त्व होता है। तांत्रिक सिद्धियों में भी कौड़ी का महत्त्व माना गया है।

राजस्थान में तथा मालवा में भी आदिवासी वर-वधू के मुकुटों पर कौड़ियों की लड़ियाँ लटकायी जाती हैं। कंकण-डोरडे में तो सम्भ्रान्त घरों में भी कौड़ी बाँधी जाती है। कौड़ी आभूषणों के लिए भी उपयोग में लायी जाती है। कौड़ी को जीवन दात्री, संतान दात्री तथा सौभाग्य दात्री माना जाता है। आदिवासी समुदाय में वर-वधू की मुट्टी में कौड़ी रखी जाती है, जिसे वे बारी-बारी से खोलते हैं। मुट्टी से प्राप्त कौड़ी को शुभ मानकर वे अपने पास रखते हैं। सुहागरात में वे कौड़ी बदलते हैं। यह कौड़ी बदलना एक दूसरे के प्रति समर्पण एवं दैहिक सम्पर्क की सहमति माना जाता है। चौपड़ खेलने में कौड़ी का महत्त्व सर्वज्ञात है। एक समय कौड़ी मुद्रा के रूप में चलन में थी। इसीलिए से लक्ष्मी रूप में पूजा जाता है।

### मावलियाँ ( सप्त चरण देवियाँ )

बाड़मेर जिले की धोरीमना तहसील के चालकनूँ ग्राम में मामड़ नाम का एक चारण रहता था। साहबा शाखा का यह चारण परिवार आई हिंगलाज का परमभक्त था। मामड़ ने हिंगलाज माता के दर्शन के लिए सात बार हिंगुलालय की गुफा की यात्रा की। प्रत्येक बार एक ही प्रार्थना की- 'माँ मुझ निपूते को सपूता करो'। सातवीं बार माँ ने परचा दिया और वचन दिया कि 'मूँ खुद आइस' (मैं स्वयं आऊँगी)। मामड़ की पत्नी महाड़ शाखा की चारण मोहब्बती की कोख से स्वयं आई हिंगलाज ने विक्रम संवत् 808 की चैत्र शुक्ल नवमी के दिन जन्म लिया। वे इस अवतार रूप में 'आवड़' कहलायीं। इन्हें आवड़ ममड़ाई के नाम से ख्याति मिली। आवड़ जी सात बहनें थीं-

*आवड़ गुल रूपाँ आछी, लाँगी छाछी होल।*

*गढ़वी मामड़िये धएँ, साताँ बैन सतो ल।।*

आवड़, आछी, छेछी, गहली, हुली, रूपाँ और लाँगदे- ये सप्त बहनें 'सप्त मातृका' कहलार्यीं। ये सप्त मातृकाएँ पौराणिक सप्त मातृकाओं से भिन्न हैं। पौराणिक सप्त मातृकाएँ- 'वाराही चैव कौमारी चामुण्डी भैरवी तथा माहेन्द्री वैष्णवी चैव ब्राह्मणी सप्तमातृका' मानी जाती हैं। ये मातृकाएँ सात मनोभावों का स्वरूप हैं। इसका वर्णन इसी ग्रन्थ में 'अछरा माई' के प्रसंग में विस्तार से किया गया है।

सातों चारण देवियाँ एवं पौराणिक देवियों को समान रूप से लोक में पूजा जाता है। दोनों सप्त मातृकाओं को 'अछरा' कहकर मान दिया जाता है। सातों चारण कन्याएँ ब्रह्मचारिणी हैं। इनमें सबसे छोटी 'लांगदे' जैसलमेर में 'खोड़ियारजी' कहलार्यीं। इनकी विशेष मान्यता सौराष्ट्र और गुजरात में है। केवल अहमदाबाद में ही खोड़ियारजी के अट्टाईस मन्दिर हैं। ये सातों बहनें मायाँ (बावल्याँ) के रूप में भी पूज्य हैं। नवजात बच्चों को 'मायाँ' धोकाई जाती है। इन्हें बायाँ/मायाँ नाम से पूजा जाता है। विवाह के पूर्व वधू को 'मायाँ' में बैठाया जाता है। उस काल में ये मायाँ माता वधू कन्या की बुरी आत्माओं से रक्षा करतीं। अखण्ड दीपक जलाकर वधू कन्या मायाँ के संरक्षण में सुरक्षित रहती है। बायाँ, मायाँ, महामायाँ, मावलियाँ (मालव्याँ), चालकनेचियाँ, डूगरेचियाँ और बीजासणियाँ के नाम से महिलाएँ अपने गले में इनकी मूर्ति पहनती हैं। इसे 'पातड़ी' कहा जाता है। दशपुर अंचल के चारण परिवारों में इन माताओं के देवरे हैं। वे इन्हें अपनी कुलदेवियों के रूप में पूजते हैं। इनकी स्तुति में 'चरजावाँ' गायी जाती है। चरजावाँ के दो स्वरूप होते हैं- सिगाऊ और घड़ाऊ। घड़ाऊ चरजावाँ तब गाई जाती है। जब भक्त पर विपत्ति होती है। सुख के मंगल कार्यों में घड़ाऊ चरजावाँ नहीं गायी जाती। सिगाऊ चरजावाँ देवी के चरित्र की प्रशंसा में रची जाती है।

### संतोषी माता

संतोषी माता का पुराणों में कुछ उल्लेख नहीं मिलता। लोक मान्यता के अनुसार गणपति की दोनों पत्नियों ऋद्धि-सिद्धि और दोनों पुत्रों लाभ-शुभ के गुण सन्तोषी माता में समाहित हैं। सन्तोषी माता गणपति की मानस पुत्री

मान्य हैं। यह कह पाना कठिन है कि वह ऋद्धि पुत्री हैं या सिद्धि पुत्री। इसीलिए उसे गणपतिजी की मानस पुत्री कहा गया है।

इसकी पूजा करने पर घर-परिवार में सुख-शान्ति का वास होता है। कुमारिकाओं को मनवांछित वर तथा सुहागिनों को अटल अहिवात की प्राप्ति होती है। संतोषी माता खटाई से अप्रसन्न होती है। खटाई अर्थात् वैमनस्य, क्लेश, ईर्ष्या, मनमुटाव। यह लोकमाता गुड़ से अघाती हैं। चना भी यदि हो तो फिर लापसी में घी जैसा आनन्द मिलता है। इसकी पूजा-व्रत का दिन शुक्रवार माना गया है।

### दिवाकण माता

इस माता का यह नाम कैसे पड़ा, यह समझ पाना मेरे लिए कठिन है। वस्तुतः यह चोरों की आस्था देवी है। भील एवं मीणा समुदाय इस माता को पूजता है। भीलों से भी अधिक इन्हें मीणा एवं भील मीणा पूजते हैं। इस अंचल में दिवाकण माता के स्थान कई जगह हैं। मनासा की चोर बरडी माता मुख्य रूपेण मीणों द्वारा ही पूजी जाती रही। पारदी समुदाय भी उन्हें पूजता रहा। बाद में यह माता मीणों व पारदियों की आस्था देवी हुई। भानुपरा के गोलांबा नाला माता तथा अन्य कई स्थान दिवाकण माता के हैं। बाद में लोकाचारवश माता का नाम गुप्त कर दिया गया। इन स्थलों पर खुले रूप से बलि व मदिरा चढ़ती है। राजस्थान के गौतमेश्वर तीर्थ पर दिवाकण माता का प्रसिद्ध स्थान (मन्दिर) है। वहाँ इन्हें 'दिवाक' माता कहा जाता है।

### वरेकण माता

यह माता औलाद दाती होती है। दशपुर जनपद में वरेकण माता के कई देवरे मिलते हैं। इसकी कोई आकृति नहीं होती। पिण्डी की पूजा होती है। बहुधा क्षेत्र की मान्य देवियों के साथ ही वरेकण माता की स्थापना भी कर दी जाती है। संतान प्राप्ति के पश्चात् माता के स्थान पर बालक/बालिका के झड़ूलिये उतारे जाते हैं। पालना बाँधा जाता है और चढ़ावा चढ़ाया जाता है। कुछ जातियाँ बलि का भोग भी चढ़ाती हैं।

## शकोतरी या शंकोतरी माता

यह माता एक प्रकार की पितराणी होती है। यह माता भाव रूप से किसी जानकार के शरीर में आती है। यह माता घर-परिवार के लोगों को, विशेषकर बच्चों और बहुओं को परेशान करती है। घर में नारियल पर लाल चूंदरी ओढ़ाकर इसकी स्थापना की जाती है। इसे ही शिकोतरी कहते हैं। यह भाव रूप में प्रकट होकर अपना अभीष्ट माँगती हैं। उसे पूरा कर देने व नियमित अथवा मंगल अवसरों पर पूजा करने पर परिवार को शुभ फल भी देती हैं।

माता व भैरव के भोषों पर इसका प्रभाव नहीं होता। यह परिवार की किसी महिला या जानकार के शरीर में प्रकट होकर दुःख-सुख सुनकर समाधान करती है। भूल-चूक से अवगत भी करवाती है। स्त्रियाँ अपने गले में शंकोतरी माता का गोल भी पहनती हैं। इसकी पवित्रता का बहुत ध्यान रखा जाता है। लोकजीवन में एकाधिक शंकोतरियों को वश में करने वाले सिद्ध को भी शकोतरी महाराज कहा जाता है।

## छठी माता

छठी माता अर्थात् 'विधाती' ऐसी मान्यता है कि भले ही बालक का भाग्य जन्म लेते ही तय हो जाता हो, किन्तु अशौच के कारण विधना उसका भाग्य तत्काल लिपिबद्ध नहीं करती। अशौच तो छठ के दिन भी रहता है, किन्तु उस दिन जच्चा को नहला-धुलाकर स्वच्छ वस्त्र पहनाकर तैयार किया जाता है। एक बड़े पाट पर एक पुतली माँडी जाती है। यही छठी माता कहलाती है। कलम-दवात से कोरे कागज़ पर बालक की कुण्डली बनवायी जाती है। कुल पुरोहित छठी माता की हल्दी-कुमकुम तथा अक्षत् से पूजा करवाकर कुण्डली बनाता है। औरतें गीताचार द्वारा छठी माता से प्रार्थना करती हैं कि वह इस बालक के भाग्य में सुख-समृद्धि लिखें तथा उसका दीर्घायु योग बनायें।

## जलवाय माता

जलवाय अर्थात् जलमाता। जच्चा द्वारा सूरज नहाने के बाद बालक को जल चखाया जाता है। गाँव-नगर के सात कुँओं का जल एकत्र किया जाता है। परेंडी (पानी के घड़े रखने का स्थान) की पूजा की जाती है। इसी स्थान को घर में सबसे पवित्र स्थान माना जाता है। एक तरह से यह गंगा आदि पवित्र नदियों एवं सप्त तीर्थों, सागरों की पूजा है। पानी परेंडे के नीचे गोबर से लीपकर स्वस्तिक माँडा जाता है। सात दीपक, सात पान, सुपारी, सिक्का, गुड़, गेहूँ एवं ऋतुफल चढ़ाकर जलमाता अर्थात् परेंडी माता की पूजा की जाती है। पूजा के पश्चात् नगर के सात कुँओं, सरोवरों आदि का एकत्र जल परिवार की वृद्धा के द्वारा चम्मच से बालक को पिलाया जाता है। इस प्रकार जच्चा-बच्चा को पवित्र किया जाना भी अभीष्ट होता है। जच्चा के मायके से भेंट में वस्त्र-गहने आते हैं।

## छालर माता

छालर वस्तुतः गाय माता है। छालर एक सुलखणी गाय है। इसे कपिला की तरह 'देव गऊ' मान सकते हैं। जिस बाड़े में यह गाय होती है, उस बाड़े की गायों का दूध दुगुना हो जाता है। उस बाड़े की गायों में कोई रोग नहीं आ सकता। छालर गाय एक गरीब भील की गाय थी। उस भील परिवार के पोषण का एकमात्र सहारा थी। उसे गायों का चोर एक मीणा चुरा लाया। मीणे के बाड़े में दस हजार गायें थीं। सब चोरी की गायें। छालर के बाड़े में आने पर सब गायों ने दूध देना बन्द कर दिया। मीणा क्रोध से भर उठा। उसने अपनी पराणी से सब गायों को खूब पीटा। गायों ने दूध नहीं दिया। तृण नहीं खाया। जल भी नहीं पिया। बछड़े भूखे। मीणे ने समझ लिया, यह सब छालर के कारण हुआ है। यह सुलखणी नहीं कुलखणी है। उसने छालर को भी पीटा। गायों का क्रोध उमड़ पड़ा। उन्होंने खूँटे उखाड़ दिये। बाँधनिया तोड़ दी। बाड़े की बागड़ भी तोड़ दी। मीणों पर आक्रमण करके उन्हें घायल कर दिया। सब गायों ने छालर को अपने सुरक्षा घेरे में ले लिया। मीणा घबरा गया। छालर ने कहा- मुझे वापस भील के घर पहुँचा दो।

तुम आज से गायों की चोरी बन्द कर दो। अपनी गायें पालो। मैं जहाँ भी रहूँगी, तुम्हारी गायों की रक्षा करूँगी। मेरे नाम की पूजा करके जो भी व्यक्ति गाय के गले में ताँत डालेगा, उसकी गाय निरोग हो जायेगी। यह मेरा वचन है। मीणे ने छालर की पूजा की। क्षमा माँगी और उसे वापस भील के घर पहुँचा आया। गाँवों में जितने भी छालर के देवरे हैं, वस्तुतः ये देवरे छालर माता के ही हैं। लेकिन कई जगह इन्हें पुरुष देवता अथवा नागदेवता के रूप में भी पूजा जाता है।

एक अन्य लोक धारणा के अनुसार वह गाय देवनारायण भगवान की थी। देवनारायणजी ने एक भील की सेवा से प्रसन्न होकर वह गाय उसे भेंट में दी थी। स्वयं देवनारायणजी सुबह शाम भील के घर देवरे से उठकर मनुष्य रूप में पधारते थे और छालर गाय की सेवा करते थे, उसे श्रृंगारते थे, फिर वापस देवरे पर देव रूप में विराज जाते थे। भील सुबह-शाम देवनारायणजी को छालर गाय का दूध पिलाता था। छालर माता की ताँत किसी भी पशु के गले में बाँधने से सर्प विष का प्रभाव समाप्त हो जाता है।

### अछरा माई

अछरा माई अर्थात् सप्तमातृकाएँ। सप्तमातृकाओं के अंकन एक ही शिलापट्ट पर उकेरने का चलन कब प्रारम्भ हुआ, यह कहना कठिन है। गुप्तोत्तर काल में सप्तमातृकाओं का उल्लेख इधर मिलता है। इन सप्तमातृकाओं में ब्राह्मी, माहेश्वरी, कौमारी, वैष्णवी, वराही, इन्द्राणी एवं चामुण्डा हैं। दोनों ओर क्रमशः वीरभद्र तथा नृत्यरत गणेश प्रतिमा उकेरी जाती है।

लोकजीवन में उनकी पूजा का बहुत महत्त्व माना गया है। इन सप्तमातृकायुक्त शिलापट्ट को एक रूप मानकर इसे लोकमाता 'अछरा माई' कहा जाता है। अछरा का अर्थ होता है, जिसका कभी क्षरण नहीं हो सकता, जो सदा जीवन्त एवं जाग्रत रहकर शक्तिमान रहती है, ऐसी माता। यह ठीक भी है। इस 'अछरा माई' के शिलापट्ट पर जो माताएँ उकेरी जाती हैं, वे सभी अखण्ड शक्तियाँ होकर 'अछरा' हैं। एक साथ नौ देवी-देवताओं की पूजा का योग है। सात माताएँ व वीरभद्र सहित श्री गणेश की पूजा करने से सारे

संकट दूर हो जाते हैं एवं समस्त मनोरथ पूर्ण हो जाते हैं। ये सब माताएँ अपराजिता मानी गयी हैं। ये अछरा माई के शिलापट्ट इस जनपद में अनेक हैं। लगभग सभी खण्डित हैं व सब देवियाँ भिन्न-भिन्न स्वरूपों में पूजी जाती हैं। ये सप्तमातृकाएँ सात मनोभावों की प्रतीकात्मक शक्तियाँ मानी गयी हैं। इनका उल्लेख अनेक ग्रन्थों में मिलता है। माहेश्वरी-काम भावना की। वैष्णवी-लोभ भावना की। ब्रह्माणी-मद भावना की। कौमारी-मोह भावना की। इन्द्राणी-इन्द्रियों पर अंकुश की। चामुण्डा-यज्ञ शक्ति की तथा वराही-असूया या ईर्ष्या भाव की प्रतीकात्मक शक्ति माता मानी जाती हैं। इन माताओं के वाहन भी निर्धारित हैं।

*प्रेत संस्था तु चामुंडा, वराही महिषासना।*

*ऐन्द्रीगज समारूढा, वैष्णवी गरुडासना ॥*

*माहेश्वरी वृषारूढा, कौमारी शिखिवाहना।*

*ब्राह्मी हंसमारूढा, सर्वाभरण भूषिता ॥*

सप्तमातृकाओं (अछरा माई) के शिलापट्ट पर इस जनपद में हिंगलाजगढ़, इन्द्रगढ़, अनसर क्षेत्र, मोड़ी, घसोई, भानपुरा, धर्मराजेश्वर, पिलोद, ढाबला-महेश, पंचदेवल, रामनाथ, उगराण, ग्वालदेव्यास पीठ, कोठड़ी, जीरन आदि स्थानों पर प्राप्त हुए हैं। कहीं-कहीं माताओं के क्रम में परिवर्तन मिलता है तथा कहीं-कहीं संख्या में भी घट-बढ़ दिखलायी देती है। दोनों ओर शिव-शक्ति के वरदायी देवता वीरभद्र एवं पार्वती पुत्र गणपति जो रिद्धि-सिद्धि दाता हैं, उत्कीर्ण मिलते हैं। ढाबला महेश में वीरभद्र के स्थान पर वेणु गोपाल उत्कीर्ण हैं।

### कल्पवृक्ष

इस अंचल में दो कल्पवृक्षों का होना मात्र संयोग नहीं है। इनकी अपनी एक कथा भी है। किसी समय दो बहनें थीं। एक चपलाना (तहसील-मनासा, जिला-नीमच) की तथा दूसरी परलाई (तहसील-जावद, जिला-नीमच) की। दोनों की संतानें नहीं थीं। किसी समय दोनों बहनें आपस में मिलीं। दोनों ने अपना-अपना दुखड़ा रोया। दोनों आदिवासी समाज की थीं।

दोनों को भय था कि यदि संतान नहीं हुई तो उनके पति होकड़ी ले आयेंगे। इस दुःख के निवारण के लिए भगवती गौराँ की आराधना करने लगीं। गौराँ ने दोनों को परचा दिया और कहा कि- तुम दोनों अपने-अपने क्षेत्र की माताओं की आराधना करो। तब पहली ने आँतरी माता की तथा दूसरी ने आम्बा (तहसील-जावद) की बीस भुजी माता की आराधना की। उनकी आराधना से खुश होकर दोनों माताओं ने उन्हें एक-एक जोड़ा कल्पवृक्ष दिया और कहा कि- इन पौधों को अपने गाँव की सीमा में लगाओ और पोषण करो। जिस दिन इसमें नयी कोपल फूटेगी, उस दिन तुम जान जाना कि तुम्हारी कोख फल गयी है। दोनों बहनों ने माताजी की आज्ञा का पालन किया। समय परवाणे माता का आशीर्वाद फला। दोनों बहनें सपूती हुई। उस दिन से दोनों गाँवों में कल्पवृक्ष पूज्य हो गये। चपलाना का कल्पवृक्ष बड़ा है। दोनों पेड़ एक हो गये हैं। अब उन्हें अलग-अलग नहीं पहचाना जा सकता। इसमें एक विशेषता है- जिस डाल में पाँच पत्तियाँ हैं, उस पूरी डाल में पाँच पत्तियों वाली टहनियाँ होती हैं। जिसमें सात पत्तियाँ हैं, उस पूरी डाल में सात पत्तियों वाली टहनियाँ होती हैं। इससे उन दो वृक्षों का अस्तित्व परखा जाता है। आँतरी माता का आशीर्वाद और आदिवासी सुहागिन की तपस्या का प्रतिफल यह कल्पवृक्ष आज भी पूरे मालवा में सम्पूज्य है। सच्चे मन से कामना करने वाले आस्तिक जनों को यह कल्पवृक्ष मनोवांछित फल प्रदान करता है।

इसी प्रकार परलाई वाला कल्पवृक्ष युगल आज भी पृथक-पृथक रूप से पहचाना जा सकता है। यहाँ लोकदेवता हनुमानजी का मन्दिर है। यहाँ राजस्थान तक के यात्री लोकदेवता हनुमानजी और देववृक्ष 'कल्पतरू' की पूजा करने और मनौती मानने आते हैं। सबकी मनोकामना पूरी होती है। लोकमाताओं के प्रसाद रूप में स्थापित ये कल्पवृक्ष बहुत ही विशालकाय हैं। ये दोनों ही आदिवासी आस्था के प्रतीक हैं। दशपुर जनपद दो-दो कल्पवृक्षों को पाकर स्वयं पर गर्व कर सकता है।

### गौराँ माता का गण 'घास भेरू'

भगवान ने सृष्टि की रचना कर दी। त्रिदेवों को सृष्टि के सृजन-पालन और क्षरण का भार सौंपा गया। त्रिदेवों ने समस्त देवताओं को अलग-अलग उत्तरदायित्व सौंप दिये। यथा सूर्य को ऊर्जा और प्रकाश, चन्द्र को जीवनदायी औषधियों का रक्षण व शीतलता, वायु को प्राण रक्षण, इसी प्रकार अग्नि, वरुण आदि सबको अपने-अपने प्रभार देकर सुचारू रूप से काम करने का निर्देश दे दिया गया। कुछ विभाग त्रिदेवों ने अपने पास ही रखे। विष्णु ने पालन-पोषण, ब्रह्मा ने सृजन और शिव ने क्षरण का काम अपने पास रखा।

माता गौरी का एक गण रूठ गया- माता! मुझे तो कोई काम नहीं मिला। मुझे भी काम मिलना चाहिए। माता ने उसे खूब समझाया कि- तुम आलसी हो, तुमसे कुछ काम होगा नहीं। तुम तो भरपेट भोजन करो और नींद निकालो। गण हठ पर उतर आया। माता का लाड़ला था। माता गौराँ ने शिव से निवेदन किया- 'इसे भी कुछ काम मिले।'

शिव ने कहा- 'मेरे पास तो कुछ काम बचा नहीं। जो है, वह मैं किसी को दे नहीं सकता।' शिव ने ब्रह्माजी से निवेदन किया। ब्रह्माजी ने कहा कि- 'भगवान! मेरे पास तो सृजन का काम है।' भगवान विष्णु से कहें।'

भगवान विष्णु से शिव ने कहा- 'भगवान! गौराँ का यह गण बहुत हठी है। इसे कुछ काम सौंपे।' भगवान विष्णु ने कहा- 'गौराँ माता का सम्मान तो करना ही पड़ेगा।' उन्होंने गण को 'घास' की सुरक्षा का काम सौंप दिया। गण को यह काम बहुत ही छोटा लगा। उसे लगा भगवान ने मुझे टालने के लिए यह निम्न दर्जे का काम सौंपा है। यह तो मेरा अपमान है। उसने 'घास' की कोई परवाह नहीं की। वह विशालकाय गण दिन भर जंगल के फल खाता और गुफा में सो जाता।

किसी कारण से घास में रोग लग गया। घास सूखने लगी। घास जहाँ पशुओं का पालन करती है, वहीं वह सूर्य की तेज किरणों से धरती के जल की भी रक्षा करती है। घास सूखने से पृथ्वी के भीतर का जल सूख गया। जल सूखने से वृक्ष सूख गये। वृक्ष सूखने से वनों की हरियाली सूख गयी।

वनों की हरियाली नष्ट हो जाने से बादलों को स्वागतपूर्वक कौन रोकता? बादल नहीं रुके, तो पानी नहीं बरसा। पानी नहीं बरसा, तो नदियाँ-सरोवर सूख गये। खेतों में फसलें नहीं उगीं। सृष्टि में त्राहि-त्राहि मच गयी। सब लोग दौड़कर भगवान विष्णु की शरण में पहुँचे- 'भगवान! आप पालनहार हैं। पृथ्वी पर हाहाकार मच रहा है। अन्न-जल के बिना प्राणी मर रहे हैं।'

भगवान ने कहा कि- 'ऐसे कैसे हो गया?' भगवान! पानी नहीं बरसा। इस कारण अन्न नहीं उपजा। नदियाँ सरोवर सूख गये। भगवान ने वरुण देवता को बुलवाया। वरुण देवता ने कहा- भगवान! मैंने तो बादल भेजे थे। वनों ने उन्हें आमंत्रित ही नहीं किया। वे जल बरसाये बिना ही वापस लौट आये। भगवान ने वनदेवी को बुलाया- वनदेवी! वनों ने ऐसा क्यों किया? बादलों को निमंत्रित क्यों नहीं किया? भगवन्! वन सूख गये हैं। उन्हें पानी नहीं मिलता है। धरती के भीतर का सारा रस सूख गया है। वन तो प्राणहीन हो रहे हैं, वे बादलों को निमंत्रण नहीं दे पाये। धरती के रस की रक्षा तो गौराँ माता के गण के पास थी। गण को बुलवाओ। दूत दौड़े गये और गण को ढूँढ़ लाये। वह गुफा में सो रहा था।

भगवान ने गण से पूछा- तुमने घास की रक्षा नहीं की। इससे पृथ्वी के भीतर का रस सूख गया। पृथ्वी का रस सूखने से वन सूख गये। वन के सूखने से बादलों को निमंत्रण नहीं मिला। वे बिना बरसे ही लौट गये। बादलों के नहीं बरसने से अकाल पड़ गया। तुम्हारी थोड़ी-सी लापरवाही से इतना बड़ा अनर्थ हुआ। गण को अपनी गलती समझ में आ गयी। उसने भगवान से क्षमा माँगी और भविष्य में ऐसी भूल नहीं करने का वचन दिया। भगवान ने गौराँ से कहा- देवी! यह आलसी है। यह फिर सो जायेगा। आप ऐसा कुछ करें कि यह चेतमान बना रहे। गौराँ ने उस घास देवता की स्थापना गाँव-गाँव कर दी।

कन्याओं से कहा- तुम मेरा स्वरूप हो। प्रतिदिन प्रातः इस देवता पर जल चढ़ाना, इससे यह जागता रहेगा। तब से प्रत्येक गाँव की कन्याएँ गाँव के घास देवता पर जल चढ़ाने लगीं। घास देवता एक विशाल पत्थर के रूप में गाँव के प्रवेश पर स्थापित होता है। सिन्दूर लगाकर उसकी पूजा की जाती

है। जल नहीं बरसने पर घास देवता को लकड़ी के एक जीवे या फाँकड़ी पर रखकर बैलों द्वारा खींचकर गाँव में घुमाया जाता है। इससे वह जाग जाता है। वर्षा होती है। अकाल सुकाल हो जाता है। यही घास देवता 'घास भैरू' भी कहे जाते हैं।